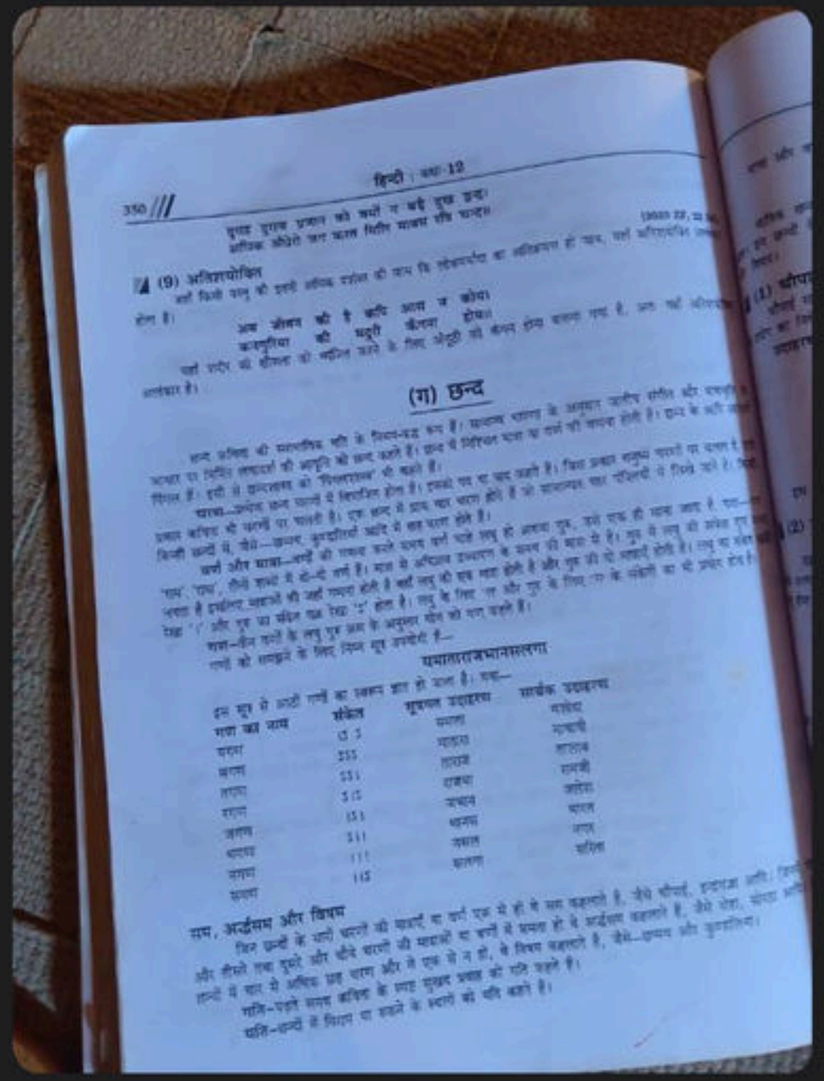
unacademy

▲ 1 • Asked by Nootan

Please help me with doubt



(9) अतिशयोक्ति

(ग) छन्द

यमाताराजभानसलगा

गण का नाम	संकेत	सूत्रगत उदाहरण	सार्थक उदाहरण
यगण	।ऽऽ	यमाता	यशोदा
मगण	ऽऽऽ	मातारा	मायावी
तगण	ऽऽ।	ताराज	तालाब
रगण	ऽ।ऽ	राजभा	राजीव
जगण	।ऽ।	जभान	जोरेश
भगण	ऽ।।	भानस	भगत
नगण	।।।	नसल	नगर
सगण	।।ऽ	सलगा	सरिता

सम, अर्द्धसम और विषम

unacademy

आधुनिक काव्य

unacademy

भारतेन्दु युग (हिन्दी पुनर्जागरण काल)

1

रेनेशा- प्रथम प्रयोग 'मिशेसेट'

2

रमविलास शर्मा -

- भक्तिकाल -लोकजागरण
- भारतेन्दु- नवजागरण

3

मैनेजर पाण्डेय -'रामविलास शर्मा हिन्दी नवजागरण का प्रामाणिक विवेचन करने वाले प्रथम व्यक्ति थे।"

4

रामस्वरूप चतुर्वेदी - पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट की उपज।

unacademy

भारतेंदु पूर्व काव्य धारा- (1843-1867)

- रीवां नरेश रघुराज सिंह- राम स्वयंवर, रुक्मिणी परिणय, रामअष्टयाम

भारतेंदु युग का समय

- मिश्रबन्धु- वर्तमानकाल- 1869-1888
- शुक्ल- नई धारा:प्रथम उत्थान- 68-93
- रामकुमार वर्मा- आधुनिक काल- 70-1900
- रामविलास शर्मा- नवजागरण- 1857-1900
- सामन्यतः- 1850-1900

unacademy

भारतेंदु-1850-85,

1. गुरु - सितारे हिन्द, काशी, गोपालचंद, रसा
   - रचनाएँ- इनकी समस्त राचना-175, काव्यसंग्रह-70
   - विजयिनी विजय वैजयंती- मिश्र में भारतीय सेना की विजय, निबंध काव्य
   - नारद भक्ति सूत्र- अनु.तदीय सर्वस्व
   - सान्दिल्या भक्ति सूत्र- भक्तिसूत्र वैजंती
   - बंदर सभा- पैरोडी
   - उर्दू का स्यापा- स्यापा
   - समधिन मधुमास- गाली
   - नए जमाने की मुकरी- मुकरी
   - प्रातः सुमिरन- पयार
   - वर्षा विनोद- लावनी
   - रानी छदम लीला, तन्मय लीला, देवी छन्दम लीला- प्रबंध गीत
   - हिंदी भाषा- निबन्ध काव्य
   - फूलों का गुच्छा- खड़ी बोली

unacademy

प्रेमघन- 1855-1923

- अब्र, विदेश में नौरोजी को कला कहे जाने पर क्षोभ्पूर्ण कविताएँ लिखीं,
- मयंक महिमा खडी बोली में
- संकलन-प्रेमघन-सर्वस्व

प्रताप नारायण मिश्र- 56-94

- संकलन- प्रताप लहरी
- हरगंगा, बुढ़ापा, हिंदी की हिमायत

ठाकुर जगमोहन सिंह- 57- 99

- प्राकृत-सौन्दर्यपरक रचनाएं की, विन्ध्य क्षेत्र
- ऋतूसंहार और मेघदूत का ब्रजभाषा अनुवाद

unacademy

अम्बिका दत्त व्यास- 58-1900

- पूरी अमिय की कटोरिया सी चिरंजीवी रहू विक्टोरिया रानी, की समस्या पूर्ती से किया क्वितावार्धिनी सभा में, सुकवि की उपाधि
- खड़ी बोली में कंस वध-अपूर्ण
- फारसी छंद में खड़ी बोली में 'दशरथ विलाप'

राधाकृष्ण दास- 65-1907

- भारतेंदु के फुफेरे भाई
- रहीम के दोहों पर कुण्डलिया लिखी

अन्य- राधाचरण गोस्वामी- नव भक्तमाल

1888- खड़ी बोली आन्दोलन पुस्तक के प्रकाशन से- मुजफ्फरपुर निवासी अयोध्या प्रसाद खत्री नें काव्य में खड़ी बोली का सूत्रपात किया

unacademy

भारतेन्दु युगीन काव्यधारा

unacademy

भारतेन्दु युग (हिन्दी पुनर्जागरण काल)

1

रेनेशा- प्रथम प्रयोग 'मिशेसेट'

2

रमविलास शर्मा –

- भक्तिकाल – लोकजागरण
- भारतेन्दु- नवजागरण

3

मैनेजर पाण्डेय – "रामविलास शर्मा हिन्दी नवजागरण का प्रामाणिक विवेचन करने वाले प्रथम व्यक्ति थे।"

4

रामस्वरूप चतुर्वेदी – पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा।

unacademy

भारतेंदु पूर्व काव्य धारा- (1843-1867)

- रीवां नरेश रघुराज सिंह- राम स्वयंवर, रुक्मिणी परिणय, रामअष्टयाम

भारतेंदु युग का समय

- मिश्रबन्धु- वर्तमानकाल- 1869-1888
- शुक्ल- नई धारा:प्रथम उत्थान- 68-93
- रामकुमार वर्मा- आधुनिक काल- 70-1900
- रामविलास शर्मा- नवजागरण- 1857-1900
- सामन्यतः- 1850-1900

unacademy

भारतेंदु-1850-85,

1. गुरु - सितारे हिन्द, काशी, गोपालचंद, रसा
   - रचनाएँ- इनकी समस्त राचना-175, काव्यसंग्रह-70
   - विजयिनी विजय वैजयंती- मिश्र में भारतीय सेना की विजय, निबंध काव्य
   - नारद भक्ति सूत्र- अनु.तदीय सर्वस्व
   - सान्दिल्या भक्ति सूत्र- भक्तिसूत्र वैजंती
   - बंदर सभा- पैरोडी
   - उर्दू का स्यापा- स्यापा
   - समधिन मधुमास- गाली
   - नए जमाने की मुकरी- मुकरी
   - प्रातः सुमिरन- पयार
   - वर्षा विनोद- लावनी
   - रानी छद्म लीला, तन्मय लीला, देवी छन्दम लीला- प्रबंध गीत
   - हिंदी भाषा- निबन्ध काव्य
   - फूलों का गुच्छा- खड़ी बोली

unacademy

प्रेमघन- 1855-1923

- अब्र, विदेश में नौरोजी को कला कहे जाने पर क्षोभ्पूर्ण कविताएँ लिखीं,
- मयंक महिमा खडी बोली में
- संकलन-प्रेमघन-सर्वस्व

प्रताप नारायण मिश्र- 56-94

- संकलन- प्रताप लहरी
- हरगंगा, बुढ़ापा, हिंदी की हिमायत

ठाकुर जगमोहन सिंह- 57- 99

- प्राकृत-सौन्दर्यपरक रचनाएं की, विन्ध्य क्षेत्र
- ऋतूसंहार और मेघदूत का ब्रजभाषा अनुवाद

unacademy

अम्बिका दत्त व्यास- 58-1900

- पूरी अमिय की कटोरिया सी चिरंजीवी रहू विक्टोरिया रानी, की समस्या पूर्ती से किया क्वितावार्धिनी सभा में, सुकवि की उपाधि
- खड़ी बोली में कंस वध-अपूर्'

राधाकृष्ण दास- 65-1907

- भारतेंदु के फुफेरे भाई
- रहीम के दोहों पर कुण्डलिया लिखी

अन्य- राधाचरण गोस्वामी- नव भक्तमाल

1888- खड़ी बोली आन्दोलन पुस्तक के प्रकाशन से- मुजफ्फरपुर निवासी अयोध्या प्रसाद खत्री नें काव्य में खड़ी बोली का सूत्रपात किया

unacademy

भारतेन्दु की प्रमुख पंक्तियाँ

भारतेन्दुयुगीन कवियों की महत्त्वपूर्ण काव्य पंक्तियाँ

(क) भारतेन्दु हरिश्चन्द

(1) सहसन बरसन सो सुन्यो जो सपने नहिंकान, सो जय आरज शब्द।

(2) फरकि उठीं सबकी भुजा, खरकि उठी तरवार।
क्यों आपुहिं ऊँचे भए आर्य मोछ के बार॥

(3) हाय! वहै भारत-भुव भारी। सब ही विधि सों भई दुखारी॥
हाय चित्तौर! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी॥

(4) निज भाषा उन्नत अहै, सब उन्नति कै मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान कै मिटै न हिय कै सूल॥

(5) कहाँ करुणानिधि केशव सोए?
जागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए॥

(6) मेरे तो साधन एक ही है, जग नन्द लला वृषभानु दुलारी॥

(7) पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।

(8) सिसुताई अजौ न गई तन ते, तऊ जोबन जोति बहोरे लगी।

(9) आजु लौं न मिले तो कहा हम तो तुमरे सब भाँति कहावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा की समैं सब कण्ठ लगावैं॥

(10) मुँह जब लागै, तब नहिं छूटे, जाति मान धन सब कुछ लूटे।
पागल करि मोहिं करे खराब, क्यों सखि सज्जन नहीं सराब॥

(11) हैं हैं उर्दू हाय हाय! कहाँ सिधारी हाय! हाय!

(12) सभा में दोस्तों बंदर की आमाद है,
गधे और फूलों के अफसर की आमाद आमाद है॥

(13) भीतर-भीतर सब रस चूसे, हँस हँस कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज॥

(14) 'रसा' महवे फसाहत दोस्त क्या दुश्मन भी हैं सारे।
जमाने में तेरे तर्जे-सुखन की यादगारी है।

(15) श्री राधा माधव युगल चरण रस का अपने को मस्त बना।
पी प्याला भर भरकर कुछ इस मैं का भी देख मजा॥

(16) रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

(17) रहै क्यों एक म्यान असि दोय।
जिन नैनन में हरि-रस छायो तेहि क्यौं भावै कोय॥

(18) सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के।

unacademy

प्रेमघन की प्रमुख पंक्तियाँ

(1) निरधन दिन दिन होत है, भारत भुव सब भाँति।
ताहिं बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुधि बल काँति॥

(2) अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे।
तासों कारे 'करि' शब्दहु पर हैं वारे॥

(3) भयो भूमि भारत में महा भयंकर भारत।
भए बीरबल सकल सुभट एकहिं सँग गारत॥

(4) आजु लौं रही अनेक भाँति धीर धारि कै।
पै न भाव मोहिं बैठनो सु मौन मारि कै॥

(5) बगियान बसन्त बसेरो कियो, बसिए तेहि त्यागि तपाइए ना।
दिन काम कुतूहल के जो बने, तिन बीच वियोग बुलाइए ना॥
'घन प्रेम' बढ़ाय के प्रेम, अहो! बिथा बारि वृथा बरसाइए ना॥
चित चैत की चाँदनी चाह भरी, चरचा चलिबे की चलाइए ना॥

(6) धन्यभूमि भारत सब रतननि की उपजावनि।

unacademy

प्रतापनारायण मिश्र की प्रमुख पंक्तियाँ

(1) चह हु साँचहु निज कल्यान, तौ सब मिलि भारत संतान।
जपो निरन्तर एक जबान, हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान।

(2) तबहि लख्यौ जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत।
तहं चौथाई जन रूखी रोटिहुँ को तरसत।

(3) पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे देश कलेस।
जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे विदेश॥

(4) जग जानै इंगलिश हमैं वाणी वस्त्रहि जोय।
मिटै बदन कर श्याम रंग जन्म सुफल तब होय॥

(5) नौन तेल लकरी घासहु पर टिक्स लगे जहं।
चना चिरौंजी मोल मिलैं जहं दीन प्रजा कहं॥

(6) अभी देखिए क्या दशा देश की हो।
बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे!

(7) कौन करे जो नहिं कसकत सुनि विपति बाल बिधवन की।

(8) विधवा विलपैं नित धेनु कटें कोउ लागत हाय गोहार नहीं॥

unacademy

जगमोहन सिंह की प्रमुख पंक्तियाँ

(1) अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाउं गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भांति अनेकन औ मिलि की जियरी रस की बतियाँ॥
हम हारि अरी करि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियां।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिना कैसे कटे दुःख की रतियाँ॥

(2) पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम।
निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिरि जात उतंगता ऊपर झूम॥

(3) कुलकानि तजी गुरु लोगन में बसिकै सब बैन कुबैन सहा।
सब छोडि तुम्हैं हम पायो अहो तुम छोड़ि हमै कहो पायो कहा॥

unacademy

द्विवेदी युग- 1900-18

- नगेन्द्र- जागरण सुधार कल'- 1900-18
- शुक्ल- नई धारा:द्वितीय उत्थान- सं 1950- 1975(सन् 1893-1918)

श्रीधर पाठक-1859-1928

- खड़ी बोली के प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि
- एकांतवासी योगी- हरमिट- गोल्डस्मिथ- खड़ी बोली-1886- लावनी(इनकी प्रथम पुस्तक)
- उजड़ ग्राम- डेसर्ट विलेज- गोल्ड स्मिथ-ब्रजभाषा-1889
- श्रांत पथिक- ट्रेवेलर- गोल्ड स्मिथ- खड़ी बोली-1902- रोला छंद
- ऋतू संहार- कालिदास- ब्रजभाषा

काव्य संकलन

वनाश्तक, देहरादून, भारतगीत, जगत सचाई सार,स्वर्गीय वीणा, धनविजय, सांध्य अटन, गुनवंत हेमंत(इनकी खड़ी बोली की प्रथम कविता)

unacademy

हरिऔध- 1865-1947

- गणपति चन्द्र गुप्त- आधुनिक सूरदास
- कवि सम्राट

प्रबंध-

- प्रियप्रवास-1914, 17 सर्ग, कृष्ण के बाल्यकाल से मथुरा जाने तक- खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य, प्रारम्भिक नाम ब्रजांगना विलाप, मंगला प्रसाद पारितोषिक
- पारिजात- 1937- 15 सर्ग- आध्यात्मिक
- वैदेही वनवास- 1941-18- सीता का निर्वासन

काव्य संकलन- कृष्णशतक, प्रेमाम्बूवारिधि, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल पद्म प्रसून, रस कलस

रस कलस-1931, ब्रजभाषा रीति ग्रन्थ

चोखे चौपदे, चुभते चौपदे मुहावरेदार भाषा

unacademy

रामचरित उपाध्याय-1872-1938- विचित्र विहावाह, राष्ट्रभारती, भारत भक्ति, देवी द्रौपदी

मैथिलि शरण गुप्त-1886-1964, चिरगाँव झांसी, रामशरणदास, गुरु-महावीर प्रसाद द्विवेदी..गुप्त शुक्ल-सामंजस्यवादी कवि, गणपति चन्द्र गुप्त इन्हें आधुनिक तुलसी कहते हैं. स्वयं को कौटुम्बिक कवि

मैथिलशरण गुप्त

प्रथम कविता 'हेमंत(1905)', संग्रह- रंग में भंग(1909)

काव्य संग्रह- रंग में भंग(1909), जयद्रथ वध(1910),

भारत-भारती(1912, इसके लिए गांधी- राष्ट्रकवि- प्रेरणा मुदस्स ए हाली और ब्रजमोहन दत्तात्रेय की 'भारत दर्पण'

किसान(1917), पंचवटी(1925) विकट भट(1929), झंकार(1929),

साकेत(1931)- 'कविता की उर्मिला विषयक उदासीनता 1909' सरस्वती से प्रभावित(द्विवेदी नें छद्म नाम भुजंग भूषन भट्टाचार्य नाम से लिखा).. साकेत पालि का शब्द है, 12 सर्ग, नगेन्द्र नें 'जनवादी काव्य' कहा.

यशोधरा(1932), द्वापर(1936), जय भारत(1952), विष्णु प्रिया(1957)

बांग्ला कवि माइकेल मधुसुदन दत्त की कविताओं का अनुवाद 'मधुप' उपनाम से किया

मार्क्स की पुत्री जैनी के लिए जयिनी नामक काव्य लिखा

अनुदित- प्लासी का युद्ध, मेघनाथ वध, वृत्त संहार

द्विवेदी मंडल के बाहर के कवि

- नाथूराम शर्मा शंकर
  - उपाधियाँ- 'कविता-कामिनी-कान्त', 'भारतेंदु प्रज्ञा', 'साहित्य सुधाकर'
  - रचना- गर्भरंदारहस्य विधवाओं की स्थिति
- बालमुकुन्द गुप्त- स्फुट कविता
- लाला भगवानदीन
- राय देवीप्रसाद पूर्ण- धाराधर धावन, स्वदेशी कुण्डल
- कामता प्रसाद गुरु
- गया प्रसाद शुक्ल सनेही- प्रेम पचीसी, राष्ट्रीय वीणा
- राम नरेश त्रिपाठी 1889-1962 ŚṢ
  - मिलन(1917), पथिक(1920)
- , मानसी(1927), स्वप्न(1929), कविता कौमुदी()
- मुकुटधर पाण्डेय-

❑छायावाद-1918-36

❑**मुकुटधर पाण्डेय- 1920 'हिंदी में छायावाद' नामक निबन्ध लिखा... 'छायावाद' शब्द के प्रथम प्रयोक्ता.**

❑प्रथम प्रयोक्ता-

1. शुक्ल- मुकुटधर पाण्डेय
2. नन्ददुलारे वाजपेयी- पंत
3. प्रभाकर माचवे- माखन लाल चतुर्वेदी
4. इलाचंद्र जोशी व् अन्य- प्रसाद

1. **कवि चतुष्टय- प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी**
2. **वृहद्त्रयी-** प्रसाद, निराला, पंत
3. **लघु त्रयी-** महादेवी, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा

❑**रामस्वरूप चतुर्वेदी-** शक्ति काव्य एवं पुनर्जागरण चेतना का व्यापक और सूक्ष्म रूप.

❑**नन्ददुलारे वाजपेयी-** आध्यात्मिक छाया का भान

❑**डॉ.नागेन्द्र**-स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह

❑**रामविलास शर्मा-** स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं बल्कि, थोथी नैतिकता, रूढ़ीवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह.

❑**महादेवी-** प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीत

❑**प्रसाद-** वेदना की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति

unacademy

- शुक्ल- छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए. एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ इसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से है अर्थात जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बना कर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है... दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है.

unacademy

❑प्रसाद- 1889-37, झारखंडी या कलाधर

- ❑प्रथम कविता- सावन-पंचक- 1906, भारतेंदु पत्रिका(राधाचरण गोस्वामी,१८८४,वृन्दावन) में कलाधर उपनाम से
- ❑प्रथम छायावादी कविता- प्रथम प्रभात, 1918, झरना
- ❑उर्वशी- 1909, चम्पुकाव्य
- ❑प्रथम संग्रह- कानन कुसुम- 1913
- ❑झरना-1918 छायावाद की प्रथम प्रयोगशाला
- ❑आँसू-1925, विरह प्रधान, हिंदी का मेघदूत
- ❑चित्रधारा-1918, ब्रजभाषा काव्य
- ❑प्रेम पथिक- 1909 में ब्रज भाषा में, 1914 खड़ीबोली अनुवाद

unacademy

❑कामायनी-1935

- महाकाव्य
- सर्ग-15 चिंता, आशा श्रद्धा काम वासना लज्जा कर्म ईर्ष्या, इडा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनंद
- अंगी रस- शांत
- दर्शन- प्रतिभिज्ञा, समरसता, आनंदवाद
- छंद- ताटंक
- मनु-मन, श्रद्धा- ह्रदय, इडा-बुद्धि, कुमार- मानव

- शांतिप्रिय द्विवेदी- छायावाद का उपनिषद
- प्रसाद प्रेम और सौंन्दर्य के कवि

❑निराला-1899-1961-

❑ओज,औदात्त व् विद्रोह का कवि, महिषादल,मेदिनीपुर

- प्रथम कविता- जूही की कली १९१६,
- अंतिम- प्त्रोत्क्रिन्थित जीवन का विष बुझा हुआ है
- प्रथम संग्रह- अनामिका 1923
- अंतिम- सांध्यकाकली-1969
- अनामिका- सरोज स्मृति 1932, राम की शक्तिपूजा-36, तोड़ती पत्थर
- परिमल 1930-जूही की, बादल राग, विधवा, भिक्षुक, सांध्य सुंदरी, पंचवटी प्रसंग
- हिंदी मुक्त छंद के प्रवर्तक
- कवित्त को हिंदी का जातीय छंद
- 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है'- परिमल की भूमिका
- सरोज स्मृति- हिंदी का प्रतम व् सर्वश्रेष्ट शोकगीत
- राम की शक्ति पूजा- बांग्ला कृत्वास रामायण
- बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभावान-शुक्ल

❑पन्त-1900-1977-

❑कौसानी अल्मोड़ा, गुंसाई दत्त-

❑प्रथम कविता- गिरजे का घंटा

1. छायावादी- उच्छ्वास(1920), ग्रंथि(1920), वीणा(१९२७), पल्लव(१९२८), गुंजन(१९३२)
2. प्रगतिवादी- युगांत(१९३६), युगवाणी(१९३९), ग्राम्या(१९४०)
3. अन्ताश्चेतान्वादी- स्वर्णकिरण(१९४७),स्वर्णधूलि(१९४७), युगपथ(१९४९)
4. नव्मानावातावाती- उत्तर(१९४९), कला और बूढ़ा चाँद(१९५९), अतिमा(१९५५), लोकायतन(१९६४)

- लोकायतन महाकाव्य- गांधी
- चिदम्बरा- ज्ञानपीठ
- पल्लव की भूमिका- छायावाद का मेनिफेस्टो
- पन्त- सम्वेदनशील इन्द्रीयबोध के कवि
- अरविन्द दर्शन

unacademy

- महादेवी वर्मा-1907-87-फरुख्बाद, इलाहाबाद,
- आधुनिक मीरा
  - हिंदी के विशाल मन्दिर की वीणा पाणी
  - 'यामा' ज्ञानपीठ, यामा निहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत के महत्वपूर्ण गीतों का संग्रह
  - सप्तपर्ण-1960-ऋग्वेद के मन्त्रों का हिंदी काव्यानुवाद
  - प्रथम निहार-1930, इसकी भूमिका हरिऔध ने लिखी
  - प्रथम आयाम-84, ब्रजभाषा और आरम्भिक खड़ी बोली
  - प्रिय प्रतीक- दीपक बादल

unacademy

छायावाद के हास्य कवि-

- कामताप्रसाद पाण्डेय 'चोंच'- चोंच चालीसा, पानी पाण्डेय
- चतुर्भुज चतुरेश- हंसी का फव्वारा

ब्रजभाषा-

- रामचन्द्र शुक्ल- बुद्धचरित(1922, एडविन अर्नाल्ड के लाइट ऑफ़ एशिया का अनुवाद)

unacademy

- राष्ट्रवादीधारा
- माखनलाल चतुर्वेदी- 1889-1968- एक भारतीय आत्मा
  - हिम्किरीतिनी, हिम्तारंगिनी, माता, समर्पण
  - कविता- कैदी और कोकिल, पुष्प की अभिलाषा
- सियारामशरण गुप्त- 1895- 63, मैथिलि के अनुज
  - मौर्य विजय, आर्द्रा, म्रिन्यमायी, बापू
- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'- 1897-60
  - प्रथम-कुमकुम, हम विषपायी जनम के
- सुभद्रा कुमारी चौहान-1905-48
  - त्रिधारा, मुकुल
  - झांसी की रानी, झंडे की इज्ज़त, जलियावाला बाग़, स्वदेश के प्रति

unacademy

❑प्रेम और मस्ती के कवि

- ➢भगवती चरण वर्मा-1903-1981
- ➢ह्रदय नारायण ह्रदयेश-1905
- ➢बच्चन-1907-23- हालावाद के प्रवर्तक, हिंदी का बायरन- मधुशाला(1935), मधुबाला(36) मधुकलश(37), निशा निमंत्रण(1938), हलाहल(46)खादी के फूल(48)
- ➢हरिकृष्ण प्रेमी-1908- आँख में, अनन्त के पथ पर, अग्निनाग
- ➢नरेंद्र शर्मा-1913-91- प्रभात फेरी, प्रवासी के गीत, पलाश वन
- ➢रामेश्वर शुक्ल अंचल 1915-96- मान्सलवाद का प्रवर्तक, मधुलिका, करील, लाल चूनर

प्रगतिवाद- 1936- 1942

प्रयोगवाद- 1943

नई कविता- 1954

प्रपद्य या नकेनवाद-1956

❑प्रगतिवाद:-

- 1934- सोवियत लेखक संघ- गोर्की
  अध्यक्ष- विश्व का पहला लेखक संगठन
- 1935- मुल्कराज आनंद, सज्जाद जहीर के नेत्रित्व में इंग्लैंड में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की '
- लखनऊ- 1936 प्रलेस की स्थापना-
  अध्यक्ष- प्रेमचन्द्र

❑कार्लमार्क्स के द्वान्दाद्मक भौतिकवाद पर आधारित, कार्ल मार्क्स पहले वैज्ञानिक समाजशास्त्री व् दार्शनिक

❑बच्चन सिंह- पंत की युगवाणी खड़ीबोली प्रथम प्रगतिवादी काव्य

केदारनाथ अग्रवाल

(1911-2000)

- शुरूआती वक्त में 'बालेन्दु' उपनाम
- कई अनुवाद- "देश विदेश के कवि'

➢युग की गंगा- 1947
➢नींद के बादल- 1947
➢फूल नहीं रंग बोलते हैं- 1965
➢आग का आईना- 1970
➢हे मेरी तुम- 1981

❑नागार्जुन

(1911- 1998, वैद्यनाथ मिश्र, यात्री)

- प्रथम खड़ी बोली रचना- 'राम के प्रति' है जो 1935 में लहुरे से प्रकाशित अखबार विश्वबंधु में छपी है.

➢युगधारा- 1953
➢सतरंगे पंखों वाली- 1959
➢प्यासी पथराई आँखें- 1962
➢भस्मांकुर- 1971- खंडकाव्य, बरवै
➢तालाब की मछलियाँ- 1975
➢खिचड़ी विप्लव देखा हमने- 1980
➢तुमने कहा था- 1980
➢हज़ार-हज़ार बाहों वाली- 1981
➢पुरानी जूतियों का कोरस- 1983
➢पत्रहीन नग्नगाछ- मैथिलि काव्य संकलन- साहित्य अकादमी
➢कविता प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है- स्वयं- नागार्जुन साहित्य का मेनिफेस्टो
➢बच्चन सिंह- नुक्कड़ कविता
➢कविताएँ- बादल को घिरते देखा है, पाषाणी, सिन्दूर तिलकित भाल, पाँचपूत भारत माता के, तुम्हारी दन्तुरित मुस्कान, कालिदास, हरिजनगाथा, अकाल और उसके बाद.

❑शिवमंगल सिंह सुमन

(1915- 2000)

➢प्रलय सृजन- 1950
➢मिट्टी की बारात- 1972
➢हम पक्षी उन्मुक्त गगन के

❑त्रिलोचन

(1917- 2007)

- वासुदेव सिंह
- मुक्तिबोध नें इन्हें अवध का किसान कवि कहा
- 'अमोला' अवधी कविताओं का संग्रह 1990
- हिंदी में सॉनेट त्रिलोचन से शुरू

➢ताप के ताए हुए दिन- 1980
➢उस जनपद का कवि हूँ- 1981
➢तुम्हें सौंपता हूँ- 1985

❑रांगेय राघव- 1923-63

- त्र्यंबक वीर राघवाचार्य है
- तीन आख्यान परक.

➢अजेय खंडहर(44)
➢मेधावी(47)
➢पांचाली(55)

- मुक्तक

➢पिघलते पत्थर
➢राह के दीपक

प्रयोगवाद(1943-1954)

- प्रयोगवाद प्रथम प्रयोग- नंददुलारे वाजपेयी- "

❑तार सप्तक(1943)

1. अज्ञेय
2. रामविलास शर्मा
3. मुक्तिबोध
4. प्रभाकर माचवे
5. नेमिचंद्र जैन
6. भारतभूषण अग्रवाल
7. गिरिजा कुमार माथुर

❑ दूसरा सप्तक(1951)

1. शमशेर सिंह
2. भवानी प्रसाद मिश्र
3. शकुन्त माथुर
4. नरेश मेहता
5. धर्मवीर भारती
6. रघुवीर सहाय
7. हरिनारायण घनश्याम व्यास

❑ तीसरा सप्तक(1959)

1. प्रयागनारायण त्रिपाठी
2. मदन मात्स्यायन
3. विजयदेव नारायण साही
4. कुंवर नारायण
5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
6. केदारनाथ सिंह
7. कीर्ति चौधरी

❑चौथा सप्तक(1979)

1. अवधेश कुमार
2. राजकुमार कुम्भज
3. स्वदेश भारती
4. नन्द किशोर आचार्य
5. सुमन राजे
6. श्री राम वर्मा
7. राजेन्द्र किशोर

छायावाद(1918-1936)

❑जयशंकर प्रसाद

(1889-1937, उपनाम- कलाधर, झारखंडी)

- ➢उर्वशी- 1909
- ➢अयोध्या का उद्धार- 1910
- ➢शोकोच्छवास-1910
- ➢वभ्रुवाहन-1911
- ➢कानन कुसुम- 1913
- ➢प्रेम पथिक- 1914
- ➢महाराणा का महत्त्व- 1914
- ➢चित्रधारा- 1918
- ➢झरना- 1918
- ➢आँसू- 1925
- ➢लहर- 1933
- ➢कामायनी- 1935

❖कामायनी-

- ✓ 15 सर्ग, अंगिरस- शांत, दर्शन- आनंदवाद, मुख्य छंद- ताटंक छंद
- ✓मनु = मन, श्रद्धा = हृदय, इड़ा = बुद्धि

❑ सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

(1899-1961, मेदिनीपुर,बंगाल)

- ➢अनामिका- 1923
- ➢परिमल- 1930
- ➢गीतिका- 1936
- ➢तुलसीदास- 1938
- ➢कुकुरमुत्ता- 1942
- ➢नये पत्ते- 1946
- ➢अर्चना- 1950
- ➢आराधना- 1953
- ➢सांध्यकाली- 1969
- ➢सरोज स्मृति, राम की शक्तिपूजा, तोड़ती पत्थर- अनामिका द्वितीय संस्करण- 1938

❑सुमित्रानंदन पन्त

(1900-1977)

छायावादी

- उच्छावास- 1920
- ग्रंथि- 1920
- वीणा- 1927
- पल्लव- 1928
- गुंजन - 1932

प्रगतिवादी

- युगांत-1936
- युगवाणी- 1939
- ग्राम्य- 1940

अन्तश्चेतनवादी

- स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि- 1947
- युगपथ- 1949

नवमानवतावादी

- उत्तर- 1949
- चिदंबरा- 1958,
- कला और बूढ़ा चाँद- 1959
- लोकायतन- 1964

❑महादेवी वर्मा

(1907- 1987, आधुनिक मीरा)

- निहार- 1930
- रश्मि-1932
- नीरजा- 1935
- सांध्यगीत- 1936
- यामा- 1940
- दीपशिखा- 1942
- सप्तपर्णा- 1960

प्रगतिवाद(1936-1943)

❑केदारनाथ अग्रवाल

(1911-2000)

- युग की गंगा- 1947
- नींद के बादल- 1947
- फूल नहीं रंग बोलते हैं- 1965
- आग का आईना- 1970
- हे मेरी तुम- 1981

❑नागार्जुन

(1911- 1998, वैद्यनाथ मिश्र, यात्री)

- युगधारा- 1953
- सतरंगे पंखों वाली- 1959
- प्यासी पथराई आँखें- 1962
- भस्मांकुर- 1971
- तालाब की मछलियाँ- 1975
- खिचड़ी विप्लव देखा हमने- 1980
- तुमने कहा था- 1980
- हज़ार-हज़ार बाहों वाली- 1981
- पुरानी जूतियों का कोरस- 1983

❑ शिवमंगल सिंह सुमन

(1915- 2000)

- प्रलय सृजन- 1950
- मिट्टी की बारात- 1972
- हम पक्षी उन्मुक्त गगन के

❑त्रिलोचन

(1917- 2007)

- ताप के ताए हुए दिन- 1980
- उस जनपद का कवि हूँ- 1981
- तुम्हें सौंपता हूँ- 1985

प्रयोगवाद(1943-1954)

❑तार सप्तक(1943)

1. अज्ञेय
2. रामविलास शर्मा
3. मुक्तिबोध
4. प्रभाकर माचवे
5. नेमिचंद्र जैन
6. भारतभूषण अग्रवाल
7. गिरिजा कुमार माथुर

❑दूसरा सप्तक(1951)

1. शमशेर सिंह
2. भवानी प्रसाद मिश्र
3. शकुन्त माथुर
4. नरेश मेहता
5. धर्मवीर भारती
6. रघुवीर सहाय
7. हरिनारायण घनश्याम व्यास

❑ तीसरा सप्तक(1959)

1. प्रयागनारायण त्रिपाठी
2. मदन मात्स्यायन
3. विजयदेव नारायण साही
4. कुंवर नारायण
5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
6. केदारनाथ सिंह
7. कीर्ति चौधरी

❑चौथा सप्तक(1979)

1. अवधेश कुमार
2. राजकुमार कुम्भज
3. स्वदेश भारती
4. नन्द किशोर आचार्य
5. सुमन राजे
6. श्री राम वर्मा
7. राजेन्द्र किशोर

❑अज्ञेय (1911-1987)

1. भग्नदूत (1933)
2. चिंता (1942)
3. इत्यलम (1946)
4. हरी घास पर क्षण भर (1949)
5. बावरा अहेरी (1954)
6. आंगन के पार द्वार (1961)

• प्रमुख कविताएँ

1. असाध्यवीणा
2. कलगी बाजरे की
3. नदी के द्वीप
4. सांप
5. यह द्विप अकेला
6. जितना तुम्हारा सच है

❑ मुक्तिबोध

1. चाँद का मुंह टेढ़ा है(1964)
2. भूरी-भूरी खाख धुल(1980)

• प्रमुख कविताएँ

1. अँधेरे में
2. ब्रह्म राक्षस
3. भूल गलती
4. अन्तःकरण का आयतन

❑शमशेर

1. कुछ कविताएँ(1959)
2. कुछ और कविताएँ(1961)
3. चुका भी हूँ नहीं मैं(1975)
4. बात बोलेगी(1981)
5. काल तुझसे होड़ है मेरी(1988)
6. सुकून की तलाश(1998)

❑भवानी प्रसाद मिश्र

1. गीत फरोश
2. बुनी हुई रस्सी
3. खुशबू के शिलालेख
4. त्रिकाल संध्या
5. सम्प्रति
6. अंतर्गत
7. कालजयी

❑नरेश मेहता

1. वनपाखी सुनो
2. मेरा समर्पित एकांत
3. बोलने दो चीड़ को
4. समय देवता

- प्रबंध काव्य-

1. संशय की एक रात
2. महाप्रस्थान
3. शबरी

❑ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

1. काठ की घंटियाँ
2. बांस के पुल
3. कुआनों नदी
4. जंगल का दर्द
5. खूंटियों पर टंगे लोग

❑केदारनाथ सिंह

1. अभी बिकुल अभी
2. जमीन पक रही है
3. अकाल में सारस
4. उत्तर कबीर और अन्य कवितायें
5. बाघ
6. टॉलस्टॉय और साइकिल

❑प्रभाकर माचवे

1. मेपल
2. स्वप्न भंग

❑गिरिजा कुमार माथुर

1. मंजीर
2. धुप के धान
3. शिलापंख चमकीले
4. साक्षी रहे वर्तमान

unacademy

अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ एवं रचनाकार

- दुष्यंत कुमार - साए में धुप
- भारत भूषण अग्रवाल- ओ अप्रस्तुत मन
- धर्मवीर भारती-ठंडा लोहा, अंधा युग,कनुप्रिया,सात गीत वर्ष
- श्री कान्त वर्मा-मगध
- धूमिल-संसद से सड़क तक,कल सुनना मुझे
- राज कमल चौधरी-मुक्ति प्रसंग, स्वर गंधा
- चन्द्रकांत देवताले- लकड़ बग्घा हस रहा है,हड्डियों में छिपा ज्वर , पत्थर फेक रहा हूँ
- अशोक वाजपेयी- शहर अब भी सम्भावना है,तत्पुरुष
- कैलास वाजपेयी- हवा में हस्ताक्षर
- राजेश जोशी- समरगाथा, दो पक्तियों के बीच
- मंगलेश डबराल-पहाड़ पर लालटेन,हम जो देखते हैं
- उदय प्रकाश-सुनो कारीगर,अबुतर कबूतर
- आलोक धन्वा- दुनिया रोज बनती है
- कात्यायनी-सात भाइयों के बिच चम्पा,पौरुषपूर्ण समय में
- अनामिका-कविता में औरत,अनुष्टुप,खुरदुरी हथेलियां
- ओमप्रकाश बाल्मीकि- सदियों का संताप,अब और नही

❑ रघुवीर सहाय

1. सीढियों पर धुप में
2. आत्महत्या के विरुद्ध
3. हसो हसो जल्दी हसो
4. कुछ पते कुछ चिट्ठियां
5. लोग भूल गये

❑ विजय देव नारायण साही

1. साखी
2. मछलीघर
3. संवाद तुमसे

❑ कुवर नारायण

1. चक्रव्युव
2. परिवेश: हम तुम
3. कोई दूसरा नही
4. इन दिनों

○ प्रबंध काव्य

1. आत्मजयी
2. वाजश्रवा के बहाने

कविता आन्दोलन और प्रवर्तक

अस्वीकृत कविता- श्री राम शुक्ल

युयुत्सावादी कविता- शलभ श्री राम

नव प्रगतिशील- नवल किशोर

वाम कविता- परमानंद श्रीवास्तव

आज की कविता -हरीश मदानी

सहज कविता- रवीन्द्र भ्रमर

ताज़ी कविता- लक्ष्मीकांत वर्मा

unacademy

नागार्जुन: सामान्य परिचय

- समय- 1911-1998
- स्थान- तरउनी, दरभंगा, बिहार
- मूल नाम- वैद्यनाथ मिश्र
- उपनाम- यात्री(मैथिली, संस्कृत), नागार्जुन(खड़ी बोली)
- काव्य संग्रह-
  1. युगधारा(53)
  2. सतरंगे पांखों वाली(59)
  3. प्यासी पथराई आँखें(62)
  4. पत्रहीन नग्नगाछ(मैथिली कविताओं का संग्रह, 68 में साहित्य अकादमी)
  5. भस्मांकुर(71)- खंडकाव्य
  6. तालाब की मछलियाँ(75)
  7. खिचड़ी विप्लव देखा हमने(80)
  8. तुमने कहा था(80)
  9. हजार-हजार बाहों वाली(81)
  10. पुरानी जूतियों का कोरस(83)

➢ प्रथम रचना 'राम के प्रति' 1935 में विश्वबंधु(लाहौर) में प्रकाशित हुई

unacademy

प्रमुख पंक्तियाँ

- मैं दरिद्र हूँ, पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता/ कटहल के छिलके जैसी खुरदरी जीभ से मेरा लहू चाटती आई...
- बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के...
- याद आता वह मुझे अपना तरउनी ग्राम/ याद आती लीचियाँ, वे आम...
- सुनोगी तो उठेगी हुक/ रहूँगा मैं सामने पर मूक...
- निकलेंगे झोपड़ों से होकर उलंग/ रहेगा जामुन का-सा देह का रंग...

unacademy

प्रमुख पंक्तियाँ

- मैं दरिद्र हूँ, पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता/ कटहल के छिलके जैसी खुरदरी जीभ से मेरा लहू चाटती आई...
- बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के...
- याद आता वह मुझे अपना तरउनी ग्राम/ याद आती लीचियाँ, वे आम...
- सुनोगी तो उठेगी हुक/ रहूँगा मैं सामने पर मूक...
- निकलेंगे झोपड़ों से होकर उलंग/ रहेगा जामुन का-सा देह का रंग...

unacademy

प्रमुख पंक्तियाँ

- मैं दरिद्र हूँ, पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता/ कटहल के छिलके जैसी खुरदरी जीभ से मेरा लहू चाटती आई...
- बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के...
- याद आता वह मुझे अपना तरउनी ग्राम/ याद आती लीचियाँ, वे आम...
- सुनोगी तो उठेगी हुक/ रहूँगा मैं सामने पर मूक...
- निकलेंगे झोपड़ों से होकर उलंग/ रहेगा जामुन का-सा देह का रंग...

unacademy

इकाई पाँच : कविता

- नागार्जुन-
  1. कालीदास - सतरंगे पांखों वाली
  2. बादल को घिरते देखा है- युगधारा
  3. अकाल और उसके बाद - युगधारा
  4. खुरदरे पैर - सतरंगे पांखों वाली
  5. शासन की बंदूक - युगधारा
  6. मनुष्य हूँ - युगधारा

❑अन्य प्रमुख कविताएं- प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है, सिंदूर तिलकित भाल, लालिमा का करुण आख्यान, गंवाई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल

unacademy

ऊर्वशी - तृतीय अंक

रामधारी सिंह दिनकर

unacademy

प्रकाशन वर्ष- 1961

ज्ञानपीठ- 1972

कुल अंक- पाँच

उर्वशी रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित काव्य नाटक है। 1961 ई. में प्रकाशित इस काव्य में दिनकर ने उर्वशी और पुरुरवा के प्राचीन आख्यान को एक नये अर्थ से जोड़ना चाहा है। अन्य रचनाओं से इतर उर्वशी राष्ट्रवाद और वीर रस प्रधान रचना है। इसके लिए १९७२ में उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया।

इस कृति में पुरुरवा और उर्वशी अलग-अलग तरह की प्यास लेकर आये हैं। पुरुरवा धरती पुत्र है और उर्वशी देवलोक से उतरी हुई नारी है। पुरुरवा के भीतर देवत्व की तृष्णा और उर्वशी सहज निश्चित भाव से पृथ्वी का सुख भोगना चाहती है।

उर्वशी प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है। प्रेम और सौन्दर्य की मूल धारा में जीवन दर्शन सम्बन्धी अन्य छोटी-छोटी धाराएँ आकर मिल जाती हैं। प्रेम और सुन्दर का विधान कवि ने बहुत व्यापक धरातल पर किया है। कवि ने प्रेम की छवियों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहचाना है।

दिनकर की भाषा में हमेशा एक प्रत्यक्षता और सादगी दिखी है, परन्तु उर्वशी में भाषा की सादगी अलंकृति और आभिजात्य की चमक पहन कर आयी है-शायद यह इस कृति को वस्तु की माँग रही हो।।

unacademy

पुरुरवा उर्वशी आख्यान

पुरूरवा और उर्वशी की कथा कई रूपों में मिलती है और उसकी व्याख्या भी कई प्रकार से की गयी है।
राजा पुरुरवा सोम-वंश के आदि पुरुष हुए हैं। उनकी राजधानी प्रयाग के पास, प्रतिष्ठानपुर में थी। पुराणों में कहा गया है कि जब मनु और श्रद्धा को सन्तान की इच्छा हुई, उन्होंने वसिष्ठ ऋषि से यज्ञ करवाया। श्रद्धा की मनोकामना थी कि वे कन्या की माता बनें, मनु चाहते थे कि उन्हें पुत्र प्राप्त हो। किन्तु, इस यज्ञ से कन्या ही उत्पन्न हुई। पीछे, मनु की निराशा से द्रवित होकर वसिष्ठ ने उसे पुत्र बना दिया। मनु के इस पुत्र का नाम सुद्युम्न पड़ा।

युवा होने पर सुद्युम्न, एक बार, आखेट करते हुए किसी अभिशप्त वन में जा निकले और शापवश, वे युवा नर से युवती नारी बन गये और उनका नाम इला हो गया। इसी इला का प्रेम चन्द्रमा के नवयुवक पुत्र बुध से हुआ, जिसके फलस्वरूप, पुरूरवा की उत्पत्ति हुई। इसी कारण, पुरूरवा को ऐल भी कहते हैं और उनसे चलनेवाले वंश का नाम चन्द्रवंश है।
उर्वशी की उत्पत्ति के विषय में दो अनुमान हैं। एक तो यह कि जब अमृत-मन्थन के समय समुद्र से अप्सराओं का जन्म हुआ, तब उर्वशी भी उन्हीं के साथ जनमी थी। दूसरा यह कि नारायण ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने के निमित्त जब इन्द्र ने उनके पास अनेक अप्सराएँ भेजीं, तब ऋषि ने अपने ऊरु को ठोंक कर उसमें से एक ऐसी नारी उत्पन्न कर दी, जो उन सभी अप्सराओं से अधिक रूपमती थी।

जटिलता उसके कथ्य की भी जटिलता है। इस दृष्टि से 'कुरुक्षेत्र' 'कामायनी' के स्तर तक नहीं पहुँच पाता।

'उर्वशी' (१९६१) उनका दूसरा विशिष्ट प्रबंध है, जिसे गीतिनाट्य भी कहा गया है। कथा का पाँच अंकों में विभाजन और कथोपकथन की पद्धति के कारण इसे नाट्य की स्थूल संज्ञा दी जा सकती है, पर इसमें नाटकीयता का अभाव है। मूलतः यह प्रबंध काव्य है—आधुनिक प्रबंध परम्परा का काव्य। इसमें घटनात्मक तत्त्व अत्यधिक क्षीण है, पात्रों की संख्या बहुत कम है। प्रतीकों के माध्यम से संपूर्ण कथ्य को भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर ले जाने का प्रयास किया गया है।

दिनकर ने कहीं कहा है कि उनका मन 'रसवन्ती' में बसता है यद्यपि लोकप्रियता उन्हें हुंकार' से मिली। 'उर्वशी' उन्हीं दोनों के तनाव की सृष्टि है। इसमें उर्वशी और पुरूरवा की प्रणय-कथा को वैदिक तथा कालिदासीय स्रोतों से ग्रहण किया गया है। नाट्य प्रबंध के प्रथम अंक में पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर के नन्दनकानन में अप्सराओं का अवतरण और उर्वशी-पुरूरवा में प्रेम का सूत्रपात होता है। द्वितीय अंक में पुरूरवा की राजमहिषी औशीनरी को पुरूरवा की प्रणय-कथा का समाचार मिलता है और वह उद्विग्न हो उठती है। इस नाट्य प्रबंध कल्पना का सबसे महत्वपूर्ण अंश तीसरा अंक है। इसमें प्रणय-लीलाओं की उन्मुक्त विवृति के साथ उससे पार जाने का, जीवन की चरम उपलब्धि का समारोहपूर्ण चित्रण किया गया है। चौथे अंक में उर्वशी अपने नवजात शिशु को च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्या को पालनार्थ सौंप देती है। पाँचवें अंक में सुकन्या उर्वशी-पुरूरवा के पुत्र 'आयु' को लेकर प्रतिष्ठानपुर आती है और भरतमुनि के शाप के फलस्वरूप अदृश्य हो जाती है तथा पुरूरवा संन्यास ले लेता है।

उर्वशी के साथ निर्बाध विलास में डूब

पर इस निर्बाध विलास में पृच्छाएँ उसका साथ नहीं छोड़तीं—'रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।'

X X X

रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं तो और क्या है?
स्नेह का सौन्दर्य को उपहार
रस चुंबन नहीं तो और क्या है?

X X X

'पर जहाँ तक भी उड़ूँ, इस प्रश्न का उत्तर नहीं है।'

ये सारी पृच्छाएँ उस समय जगती हैं जब उर्वशी पुरूरवा के गाढ़ालिंगन में बँधी है। इस स्थिति पर आपत्ति उठाते हुए मुक्तिबोध ने ठीक ही लिखा है—'वैसे तो मैं कल्पना

भी नहीं कर सकता कि रति-सुख की विविध संवेदनाओं की बारीकियाँ और गहराइयाँ नर और नारी के बीच चर्चा का विषय हो सकती हैं। यही क्या, नर भी संभवतः उसे भूल जाता होगा। फिर भी अगर यह मान भी लें कि रति-सुख के स्मरण-चित्र उसके मन में उपस्थित होते हैं तो उसके साथ यह भी जोड़ना होगा कि उन स्मरण-चित्रों में उसे अतीन्द्रिय सत्ता की प्रतीति नहीं हो सकती। वह उन स्मरण-क्षणों में रत रहते हुए विरत नहीं हो सकता कि ऐन्द्रिय सुख के चरम क्षणों के चित्र उपस्थित होते ही उसे अतीन्द्रिय सत्ता की उपलब्धि का मार्ग दिखाई दे। संक्षेप में, न वास्तविक कामोत्कर्ष के क्षणों में न रति-सुख के स्मरण-चित्रों में डूबे होने की अवस्था में, अतीन्द्रिय सत्ता परम तत्व का बोध हो सकता है। यह कहना कि कुछ प्रज्ञावान् योगियों के लिए ऐसा होता है या हो सकता है, कोई मतलब नहीं रखता, क्योंकि सामान्य मनुष्य के लिए आज जो स्थिति अप्राकृतिक है वह संभवतः अस्वस्थ मनोदशा वालों के लिए ही प्राकृतिक हो सकती है।'

कृत्रिम मनोविज्ञान पर आधारित होने के कारण उर्वशी का तृतीय सर्ग, अपने समारोह के बावजूद, एकतान नहीं हो पाता। उर्वशी के कथन अधिक सुसम्बद्ध, भावोत्कर्षपूर्ण और अर्थवान् बिम्बों से संपृक्त हैं। पुरूरवा का अन्तर्द्वन्द्व अपने आप में काफी सशक्त होते हुए भी पूरी स्थितियों से जुड़ जाने पर अपने प्रभाव को कम कर देता है। फिर भी उर्वशी का यह अंक सम्पूर्ण ग्रंथ में अत्यधिक महत्वपूर्ण बन पड़ा है। पुरूरवा द्वंद्वमय सनातन पुरुष और उर्वशी सनातन नारी के प्रतीक भी हैं। पर पुरूरवा का द्वन्द्व काम और मोक्ष के द्वन्द्व तक सीमित होने के कारण 'कामायनी' के 'मनु' के द्वन्द्व की तरह व्यापक और सार्वधिक नहीं बन पाता है। पुरूरवा अपनी सामंतीय तथा मध्ययुगीन सीमाओं का कहीं अतिक्रमण नहीं कर सका है। यह प्रेम न तो सहज है और न सिद्धों-योगियों का युगनद्ध प्रेम। यह एक सशक्त ऐश्वर्य सम्पन्न सामंत का प्रेम है जो एक ही राग में भैरवी और विहाग गा लेता है।

चौथे अंक में च्यवन और सुकन्या का गार्हस्थ्य प्रेम चित्रित किया गया है। वह अपनी उद्वेगहीनता में समतल और प्रशान्त है। पाँचवें अंक में औशीनरी के निष्काम प्रेम की परिणति है—बिना प्रतिदान के सम्पूर्ण समर्पण। तृतीय अंक के ऐश्वर्यपूर्ण शृंगार चेतना के आगे च्यवन-सुकन्या का गार्हस्थ्य प्रेम निष्पन्द लगता है। द्वन्द्व से उतर कर जैसे कवि की लेखनी भी केन्द्रच्युत हो गई है। च्यवन-सुकन्या का प्रेम यदि पुरूरवा-उर्वशी के विरोध में खड़ा किया गया है तो यह विरोध बहुत ही कमजोर है। अगर इसे शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया होता तो उर्वशी-पुरूरवा का द्वन्द्व और भी उत्कर्षपूर्ण बन जाता। औशीनरी भारतीय नारीत्व की प्रतारणा को व्यक्त करती हुई फिर उसी से समझौता कर लेती है। औशीनरी का पछतावा यह है कि अपने भीतर बसी हुई उर्वशी को वह व्रीड़ा के आच्छादन में क्यों लपेटे रही? किन्तु उसे उजागर करके भी क्या वह उर्वशी का मुकाबला कर सकती थी? यदि मुकाबला भी कर लेती तो क्या वह सामंतीय अभिरुचि को बदल सकती थी? अन्त में सुकन्या उसे मध्यकालीन तर्कों में समझा लेती है—'और त्रिया जो अबल, मात्र आँसू, केवल करुणा है'; 'नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा, क्षान्ति, करुणा है।' विश्वमना के अनुसार महाराज के केन्द्र में प्रव्रज्या-योग पड़ा हुआ था, प्राण दशा में शनि का प्रवेश हो

unacademy

पात्र परिचय

- **पुरुष**

पुरुरवा - वेदकालीन, प्रतिष्ठानपुर के विक्रमी ऐल राजा, नायक
महर्षि च्यवन - प्रसिद्द ;भिगुवंशी, वेदकालीन महर्षि
सूत्रधार - नाटक का शास्त्रीय आयोजक, अनिवार्य पात्र
कंचुकी -
सभासद -
प्रतिहारी -
प्रारब्ध आदि
आयु - पुरुरवा-उर्वशी का पुत्र
महामात्य - पुरुरवा के मुख्य सचिव
विश्व्मना - राज ज्योतिषी

- **नारी**

उर्वशी - नायिका
नटी- सूत्रधार की पात्र
अप्सराएँ- सहजन्या, रंभा, मेनका, चित्रलेखा
औशीनरी - पुरुरवा की पत्नी
सुकन्या - च्यवन ऋषी की सहधर्मिणी
अपाला - उर्वशी की सेविका

दलित कविता

- दलित साहित्यकार **'संत रैदास'** को प्रथम दलित कवि स्वीकारते हैं.
- आरंभिक युग के प्रमुख दलित कवियों में **'हीरा डोम'** और **'अछूतानन्द'** का नाम लिया जाता है
- **हीरा डोम-** अछूत की शिकायत, 1914 में सरस्वती में प्रकाशित
- **बिहारीलाल हरित-** अछूतों का पैगम्बर, चमार हूँ मैं.
- **डॉ. धर्मवीर-** हीरामन(1987)
- **ओमप्रकाश वाल्मीकि-** सदियों का संताप(1989), बस्स बहुत हो चूका(1997), अब और नहीं(2009)
- **मलखान सिंह-** सुनो ब्राह्मण
- **जयप्रकाश कर्दम-** गूंगा नहीं था मैं(1997)
- **कर्मशील भारती-** कलम को दर्द कहने दो
- **सुशीला टाकभौरे-** स्वाति बूँद और खारे मौती, तुमने उसे कब पहचाना
- **श्योराज सिंह बेचैन-** नई फसल, क्रौंच हूँ मैं, चमार की चाय
- **कँवल भारती-** तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती
- **एन.सिंह-** दर्द के दस्तावेज, सतह से उठते हुए
- **निर्मला पुतुल-** अपने घर की तलाश(2004)
- **रजनी तिलक-** करोड़ों पदचाप हूँ
- **सूरजपाल चौहान-** प्रयास, क्यों विशवास करूं

unacademy

भारतेन्दु युगीन काव्य

⇒ रेनेसाँ → नवजागरण / पुनर्जागरण → प्रथम प्रयोग फ्रांसीसी इतिहासकार मिशेलेट

⇒ रामविलास शर्मा 'हिन्दी नवजागरण' –
① लोकजागरण — भक्ति काल
② नवजागरण — स्वाधीनता अथवा आधुनिक युग (भारतेन्दु युग)

⇒ भारतेन्दु युग की सामान्य प्रवृत्तियाँ (~~भुस्कन~~ सुरेशचन्द्र गुप्त - डॉ० नगेन्द्र)

① राष्ट्रीयता
② भक्ति भावना
③ सामाजिक चेतना
④ शृंगारिकता
⑤ प्रकृति चित्रण
⑥ हास्य व्यंग्य
⑦ रीति निरूपण
⑧ समस्या पूर्ति
⑨ काव्यानुवाद

राष्ट्रीयता
- राजभक्ति
- देशभक्ति

⇒ काव्यभाषा
↳ मुख्य — ब्रज
↳ गौण — खड़ी बोली

भारतेन्दु युगीन प्रमुख कवि

① भारतेन्दु हरिश्चन्द्र → 1850 - 1885, काशी, पिता - गोपाल चन्द

- गुरु - शिवप्रसाद सितारे हिन्द
- उपनाम - रसा

⇒ 70 काव्य संग्रह माने गए। प्रमुख निम्नलिखित हैं -

प्रेम मालिका, प्रेम सरोवर, गीत गोविन्दानंद, वर्षा विनोद विनय प्रेम पचासा, फूलों का गुच्छा (खड़ी बोली), प्रेम फुलवारी होली बदुम लीला, दान लीला, बंदर सभा, विजय वल्लरी, विजयिनी - विजय वैजयन्ती, नये जमाने की मुकरी, रिपु नाटक, प्रिन्स ऑफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता

⇒ कविताओं के प्रकार -

बंदर सभा — पैरोडी
उर्दू का स्यापा — स्यापा
समाधिन मधुमास — गाली
प्रातः समीरन — पयार
वर्षा विनोद — लावनी

unacademy

भारतेन्दु के लिए आचार्य शुक्ल

- भारतेन्दु ने जिस प्रकार हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार किया, उसी प्रकार काव्य की ब्रज भाषा का भी।
- नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था।
- विजयिनी विजय वैजयंती मिस्र में भारतीय सेना की विजय पर लिखी गई।

महत्वपूर्ण पंक्तियाँ

→ हाय! पंचनद, हा पानीपत। अजहु रहे तुम धरनि विराजत
→ कहाँ करुनानिधि केशव सोए?
→ जेहि नैनन में हरि रस दीयो तेहि कयों भावे कोय॥
→ पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया दुखिया नहीं मानति हैं॥
→ भीतर भीतर सब रस चूसैं, हँसि-हँसि के तन मन धन मूसैं।
→ सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के।
→ हा! हा! भारत दुर्दशा ...
→ इन मुसलमान हरिजनन पे ...
→ पे धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ....

unacademy

② प्रेमघन (1855-1923) - उपनाम — अ क

रचनाएँ - जीर्ण जनपद, आनंद अरुणोदय, हार्दिक हर्षादर्श, मयंक महिमा, अलौकिक, वर्षा बिन्दु।

पंक्तियाँ -
- अचरज होत तुमहुं सम गोरे बाजत कोरे ....
- धन्य भूमि भारत सब रतनन की उपजावनि ...
- भयो भूमि भारत में महा भयंकर भारत ...
- आजु लौं रही अनेक भाँति धीर धारि कै ...

③ प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894)

रचनाएँ - प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, शृंगार गंगा

पंक्तियाँ
- तबहि लखेउ जहँ रहेउ राक दिन कंचन बरसत
  तहँ चौथाई लोग जन रूखी रोटीहुँ को तरसत
- पदि कमार कीन्हो कहा, हरे देश कलेस
  जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे विदेस

④ ठाकुर जगमोहन सिंह : (1857 - 1900)

→ प्राचीन संस्कृत काव्यों का संस्कार रहा इनकी कविता में — प्रकृति चित्रण

रचनाएँ - प्रेम सम्पत्ति लता, श्याम लता, श्यामा सरोजिनी, देवयानी

⑤ अम्बिकादत्त व्यास (1858 - 1900)

रचनाएँ - पावस पचासा, सुकवि सतसई, हो हो होरी

⑤ राधाकृष्ण दास (1865 - 1907) — भारत बारहमासा, देश दशा

क्रम

भारतेन्दु → प्रेमघन → प्रताप ना० मि० → जगमोहन सिं → अंबिकादत्त

Trick - भारत के प्रेम प्रताप से जग की अंबिका राधा प्रसन्न रहीं।

unacademy

भारतेन्दु पूर्व काव्य धारा

① रघुराज सिंह — रामस्वयंवर, रुक्मिणी परिणय, रामाष्टयाम

② रघुनाथ रामसनेही - विश्राम सागर

③ सरदार कवि — रामरत्नाकर, दादूमतु, साहित्य सरसी

④ गोपाल चन्द गिरिधरदास - राधा स्रोत, रामकथामृत, भारती भूषण
छन्दोवर्णन

⑤ चन्द्रशेखर वाजेपयी — हम्मीर हठ

खड़ी बोली आन्दोलन — 1888

⇒ अयोध्या प्रसाद खत्री की पुस्तक 'खड़ी बोली' से प्रारम्भ

unacademy

Book - आधुनिक साहित्य की प्रतिनियां (नामवर सिंह)

① छायावाद का समय — 1918-1936 (उद्भवकाल से युगान्तकाल)

② लेख: "हिन्दी में छायावाद" (मुकुटधर पाण्डेय, श्री शारदा पत्रिका, 1920, जबलपुर

③ लेख: "हिन्दी में छायावाद" (सुशील कुमार, सरस्वती, 1921)

④ "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाला तो सुनते ही समझ जाएगा कि यह शब्द मिस्टिसिज्म से आया है।"
(छायावाद क्या है, का उत्तर देते हुए मुकुटधर पाण्डेय)

⑤ निबंध - 'आजकल के कवि और कविता' - महावीर प्रसाद द्वि॰ (सुकवि किंकर छद्म नाम से)

"छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।"

⑥ काव्य में रहस्यवाद (पुस्तक) — आ॰ शुक्ल, 1918

unacademy

आचार्य शुक्ल — काव्य खण्ड (सं 1975)

प्रकरण - 4

① नए नए छन्दों के व्यवहार और तुक के बंधन के त्याग की सलाह द्विवेदी जी ने बहुत पहले दी थी। उन्होंने कहा था कि तुले हुए शब्दों में कविता करने और तुक अनुप्रास आदि ढूँढने से कवियों के विचार स्वातंत्र्य में बाधा आती है।

② इधर कुछ दिनों से बिना छंद (मीटर) के पद्य भी बिना तुकान्त के होना तो बहुत ध्यान देने की बात नहीं है। निराला जी ऐसे नई उंगत कवियों में देखने में आते हैं। यह अमेरिका के कवि वाल्ट ह्विटमैन की नकल है।

③ पद्यव्यवस्था से युक्त काव्य रचना वास्तव में पाश्चात्य ढंग के गीतकाव्यों के अनुकरण का परिणाम है।

④ द्वितीय उत्थान के समाप्त होने से कुछ पहले ही कई कवि खड़ी बोली काव्य को कल्पना का नया रूप रंग देने और उसे अधिक आत्मभक्ति बनाने में प्रवृत्त हुए। जिनमें मुख्य थे मैथिलीशरण गुप्त, सुकुटधर पाण्डेय और बदरीनाथ भट्ट।

⑤ आचार्य शुक्ल ने इस धारा में 4 कवियों का नाम शामिल किया — गुप्त, सुकुटधर पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट और पदुमलाल, पुन्नालाल बख्शी।

प्रसाद के लिए आचार्य शुक्ल

- **झरना** के प्रथम संस्करण में जो 1918 में आया ऐसी रचनाएँ नहीं थीं जिन्हें छायावादी कहा जाता। इसके दूसरे संस्करण (1927) में जो रचनाएँ आईं उनमें छायावादी रचनाएँ शामिल की गईं।

छायावाद : डॉ. बच्चन सिंह

- बंगाल में किसी प्रकार के काव्य को छायावाद नाम नहीं दिया गया और ना तो हिन्दी का छायावाद ब्रिटेन से सात समंदर पार करता हुआ सीधे बंगाल पहुँच कर हिन्दी आया। यह अपने देश की उस बेचैनी का परिणाम है जो सांस्कृतिक राजनीतिक पुनर्जागरण में चिरवाई पड़ती है, जिसका सीधा संबंध नई मूल्य दृष्टि से है।
- मुक्ति के प्रति आग्रह का तात्पर्य उस लौकिक सत्ता से परे किसी चरम सत्ता में विलयन से नहीं था बल्कि रूढ़ियों, अंधविश्वासों, गलित मूल्यों से नष्ट होना था।
- **नन्ददुलारे वाजपेयी** – "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार में छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"

unacademy

छायावादी कवि

* **चतुष्टय** — प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी
* **बृहत्त्रयी** — प्रसाद, पंत, निराला
* **लघु त्रयी** — महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा

① प्रसाद

समय - 1889 - 1937, काशी
उपनाम - झारखण्डी कलाधर

रचनाएँ

① उर्वशी — 1909, गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य
- दिनकर - उर्वशी, गीति नाट्य, ज्ञानपीठ

② वनमिलन - 1909, ③ अयोध्या का उद्धार — 1910
④ वन कुसुम - 1913 ⑤ शोकोच्छ्वास — 1910
⑥ प्रेम पथिक — 1914 ⑦ महाराणा का महत्व — 1914
⑧ चित्राधारा — 1918

⑨ झरना — 1918, छायावाद की प्रयोगशाला
⑩ आँसू — 1925 — हिन्दी का मेघदूत, विरह काव्य
⑪ लहर — 1933, इसमें कामायनी का पूर्व रूप है।
⑫ कामायनी — 1935, 'चिन्ता' सर्ग 1928 में सुधा में प्रकाशित हो चुका था।

unacademy

- डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है। यह विद्रोह भाव तथा शैली दोनों स्तरों पर है।

कामायनी — 1935
15 सर्ग

छायावाद का उपनिषद — गीतिश्री द्विवेदी

- लेखक ने इसे ऐतिहासिक घटना पर आधारित माना।
- कामायनी के रूपक : मनु — मन
  श्रद्धा — हृदय
  इड़ा — बुद्धि
- कामायनी के सर्ग

① चिंता	⑥ लज्जा	⑪ संघर्ष
② आशा	⑦ कर्म	⑫ निर्वेद
③ श्रद्धा	⑧ ईर्ष्या	⑬ दर्शन
④ काम	⑨ इड़ा	⑭ रहस्य
⑤ वासना	⑩ स्वप्न	⑮ आनंद

नि द र आ नि द्रा

→ मनु चिन्ता में बैठे थे आशा बन श्रद्धा आई काम वासना की पुत्री
→ लज्जा कर्म है ईर्ष्या मनु को बताई।
→ मनु ने इड़ा का स्वप्न देखा ओट मिलने के लिए संघर्ष किए।
→ अंत में थक कर निद्रा आ गई।

unacademy

छायावाद

छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के 'रोमांटिक' उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग ईसवी सन् १९१८ से '३६ ('उच्छ्वास' से 'युगान्त') तक की प्रमुख युगवाणी रही, जिसमें प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से 'भावोच्छ्वास-प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना-वैभव की वह 'स्वच्छन्द प्रवृत्ति' है जो देश-काल-गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा-आकांक्षा में निरंतर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भाव-धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में छायावाद पड़ा।

तत्कालीन पत्रिकाओं से पता चलता है कि 'छायावाद' संज्ञा का प्रचलन १९२० ई० तक हो चुका था। मुकुटधर पांडेय ने १९२० ई० में जबलपुर की 'श्री शारदा' पत्रिका में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक चार निबन्धों की एक लेख-माला प्रकाशित करवाई थी। इस लेखमाला से पता चलता है कि 'हिन्दी में उसका नितान्त अभाव देखकर इधर-उधर की कुछ टीका-टिप्पणियों के सहारे' मुकुटधर पांडेय ने वह निबन्ध प्रस्तुत किया था। इससे स्पष्ट है कि उस निबन्ध के पहले भी छायावाद पर कुछ टीका-टिप्पणी हो चुकी थी।

उस युग की प्रतिनिधि पत्रिका 'सरस्वती' में 'छायावाद' का प्रथम उल्लेख जून, १९२१ ई० के अंक में मिलता है। किन्हीं सुशील कुमार ने 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक एक संवादात्मक निबन्ध लिखा है। इस व्यंग्यात्मक निबन्ध में छायावादी कविता को टैगोर-स्कूल की चित्रकला के समान 'अस्पष्ट' कहा गया है।

'छायावाद क्या है' प्रश्न का उत्तर देते हुए मुकुटधर पांडेय ने लिखा है कि "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेंगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है।" इसी प्रकार सुशील कुमार वाले निबन्ध में भी छायावादी कविता को 'कोरे कागद की भाँति अस्पष्ट', 'निर्मल ब्रह्म की विशद छाया', 'वाणी की नीरवता', 'निस्तब्धता का उच्छ्वास' एवं 'अनंत का विलास' कहा गया है।

unacademy

'छायावाद' के लिए 'मिस्टिसिज्म' शब्द के आते ही 'रहस्यवाद' शब्द की बुनियाद पड़ गयी और सुकवि-किंकर-छद्मनाम-धारी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' (सरस्वती : ६ मई, १९२७) निबन्ध से पता चलता है कि जिन कविताओं को और लोग छायावाद कहते थे उन्हीं को वे 'रहस्यवाद' कहना चाहते थे; लेकिन मुकुटधर पांडेय जहाँ उनमें 'आध्यात्मिकता' देखते थे, वहाँ आचार्य द्विवेदी के लिए वे 'अन्योक्ति पद्धति' से अधिक न थी, 'छायावाद' का प्रचलित अर्थ समझने की कोशिश करते हुए उसी निबन्ध में आचार्य द्विवेदी कहते हैं—"छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी-कविता कहना चाहिए।"

इस तरह पंत के 'पल्लव' और प्रसाद के 'झरना' आदि संग्रहों की कविताओं को १९२७ ई० तक अंग्रेजी में 'मिस्टिसिज्म' और हिन्दी में कभी 'छायावाद' और कभी 'रहस्यवाद' कहा जाता था। १९२८ ई० में प्रकाशित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'काव्य में रहस्यवाद' पुस्तक से भी यही सिद्ध होता है। साथ ही, शुक्ल जी के विवेचन से यह भी मालूम होता है कि,तात्त्विक दृष्टि से उन रचनाओं को 'रहस्यवाद' कहा जाता था और रूप-विधान की दृष्टि से 'छायावाद'।

आगे चलकर जब महादेवी वर्मा की प्रियतम-सम्बोधित बहुत-सी कविताएँ प्रकाश में आ गयीं तो लोगों ने रहस्यवाद और मिस्टिसिज्म शब्द को केवल इसी प्रकार की कविताओं के लिए सीमित कर दिया धीरे-धीरे 'छायावाद' से इसे अलगाकर 'रहस्यवाद' नाम की एक स्वतंत्र काव्य-धारा मान ली, जिसका विकास वेद-उपनिषद् से आरंभ होकर कबीर, मीरा आदि से होता हुआ हिन्दी में महादेवी वर्मा तक पहुँचता है। फलत: 'छायावाद' केवल आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति रह गयी और 'रहस्यवाद' सनातन तथा चिरंतन।

सन् १९३० के आसपास हिन्दी छायावादी कविताओं को आलोचना के सिलसिले में अंग्रेजी के रोमांटिक कवि वड्र्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि का नाम लिया जाने लगा और इस तरह छायावाद के साथ 'रोमैंटिसिज्म' नाम भी जुड़ गया। आचार्य शुक्ल ने 'रोमैंटिसिज्म' के लिए हिन्दी में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द चलाया और वह चल भी पड़ा, किन्तु उनके 'स्वच्छंदतावाद' की परिभाषा इतनी सीमित थी कि वह सम्पूर्ण छायावादी कविताओं को न घेर सकी; उसकी सीमा में केवल श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्त सिंह, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट और संभवत: नवीन तथा माखनलाल चतुर्वेदी ही आ सके। उनके अनुसार 'प्रकृति प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता-व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दु:ख में उनके साहचर्य की भावना ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छंदता के पथचिह्न हैं।"

unacademy

इस प्रकार शुक्ल जी के 'स्वच्छंदतावाद' में छायावाद की रहस्यभावना के लिए कोई जगह न थी। फलत: 'स्वच्छंदतावाद' अंग्रेजी के 'रोमैंटिसिज्म' का अनुवाद होते हुए भी छायावादी कविता का केवल एक अंग बनकर रह गया और धीरे-धीरे 'छायावाद' संपूर्ण 'रोमैंटिसिज्म' का वाचक बन गया।

आजकल हिन्दी में जब 'छायावाद' कहा जाता है तो उसका मतलब उसी तरह की कविताओं से होता है जिन्हें यूरोपीय साहित्य में 'रोमैंटिसिज्म' की संज्ञा दी जाती है और जिसके अंतर्गत रहस्यभावना तथा स्वच्छंदता-भाव के साथ-साथ और भी कई बातें मिलती हैं।

छायावाद सम्बन्धी परिभाषाओं और आलोचनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि आलोचकों ने प्राय: किसी एक कवि अथवा किसी एक कविता-संग्रह को ध्यान में रखकर छायावाद की विशेषताओं का निरूपण किया है। इस तरह उन्होंने 'शुद्ध छायावाद' की एक सीमारेखा खींचकर छायावाद के अन्य कवियों तथा कविताओं को उससे बाहर कर दिया है। जैसे किसी ने पंत जी को ही शुद्ध छायावादी माना है, तो दूसरे से उनकी संपूर्ण रचनाओं में भी केवल 'पल्लव' को 'शुद्ध' छायावाद के अंतर्गत स्वीकार किया है और फिर 'पल्लव' में भी अपनी रुचि तथा पूर्व-निश्चित धारणा की समर्थक कविताओं के आधार पर 'छायावाद' की सामान्य विशेषताएँ गिना दी हैं। इस तरह यही नहीं कि प्रसाद, निराला, महादेवी की बहुत-सी कविताएँ 'छायावाद' से बाहर हो जाती हैं बल्कि स्वयं पंत जी की भी 'वीणा', 'ग्रन्थि' और 'गुंजन' की काफी रचनाएँ छायावादेतर ठहरती हैं, परन्तु आलोचक को इसकी परवाह नहीं है। उसका 'शुद्ध' छायावाद अपनी जगह पर कायम है और वह कायम रहेगा, भले ही उसकी सीमा से छायावाद का अधिकांश साहित्य बाहर पड़ा रह जाये।

जाहिर है कि वह सीमा छायावाद की नहीं, बल्कि उन आलोचकों की है। छायावाद की विशेषताओं का आकलन छायावाद नाम से ख्यात संपूर्ण कविताओं के आधार पर होना चाहिये।

इस ढंग से विचार करने पर पता चलता है कि छायावाद विविध, यहाँ तक कि परस्पर-विरोधी-सी प्रतीत होने वाली काव्य-प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और छानबीन करने पर इन प्रवृत्तियों के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। स्पष्ट करने के लिए यदि भूमिति से उदाहरण लें तो कह सकते हैं कि यह एक केन्द्र पर बने हुए विभिन्न वृत्तों (Cocentric Circles) का समुदाय है। इसकी विविधता उस शतदल के समान है जिसमें एक ग्रन्थि से अनेक दल खुलते हैं। एक युग-चेतना से भिन्न-भिन्न कवियों के संस्कार, रुचि और शक्ति के अनुसार

ये कवि जगत् और जीवन के विस्तृत क्षेत्र के बीच नई कविता का संचार चाहते थे। ये प्रकृति के साधारण, असाधारण, सब रूपों पर प्रेमदृष्टि डालकर, उसके रहस्यभरे सच्चे संकेतों को परखकर, भाषा को अधिक चित्रमय, सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता का एक अकृत्रिम, स्वच्छंद मार्ग निकाल रहे थे। भक्तिक्षेत्र में उपास्य की एकदेशीय या धर्मविशेष में प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर सार्वभौम भावना की ओर बढ़ रहे थे जिसमें सुंदर रहस्यात्मक संकेत भी रहते थे। अतः हिन्दी कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्हीं को—विशेषतः श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री मुकुटधर पांडेय को—समझना चाहिए। इस दृष्टि से छायावाद का रूप रंग खड़ा करनेवाले कवियों के संबंध में अँगरेजी या बँगला की समीक्षाओं से उठती हुई इस प्रकार की पदावली का कोई अर्थ नहीं कि 'इन कवियों के मन में एक आँधी उठ रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे; एक नूतन वेदना की छटपटाहट थी जिसमें सुख की मीठी अनुभूति भी लुकी हुई थी; रूढ़ियों के भार से दबी हुई युग की आत्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए हाथ पैर मार रही थी।' न कोई आँधी थी, न तूफान, न कोई नई कसक थी, न वेदना, न प्राप्त युग की नाना परिस्थितियों का हृदय पर कोई नया आघात था, न उसका आहत नाद। इन बातों का कुछ

unacademy

अर्थ तब हो सकता था जब काव्य का प्रवाह ऐसी भूमियों की ओर मुड़ता जिनपर ध्यान न दिया गया रहा होता। छायावाद के पहले नए नए मार्मिक विषयों की ओर हिन्दी कविता प्रवृत्त होती आ रही थी। कसर थी तो आवश्यक और व्यंजक शैली की, कल्पना और संवेदना के अधिक योग की। तात्पर्य यह कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था जो धीरे धीरे अपने स्वतंत्र ढर्रे पर श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री मुकुटधर पांडेय आदि के द्वारा हो रहा था।

गुप्तजी और मुकुटधर पांडेय आदि के द्वारा स्वच्छंद नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थी। परंतु ईसाई संतों के छायाभास (फैंटसमाटा) तथा योरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबालिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बँगला में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थीं। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इसका दूसरे साहित्यक्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का इसपर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इसके भीतर अँग्रेजी और बँगला की पदावली का जगह जगह ज्यों का त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बातें मार्ग की स्वतंत्र उद्भावना नहीं सूचित करतीं।

'छायावाद' नाम चल पड़ने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विशृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले। शैली की इन विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना में ही लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही। विभावपक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया। इस प्रकार प्रसारणोन्मुख काव्यक्षेत्र बहुत कुछ संकुचित हो गया। असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति अत्यंत चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारों तक ही काव्य की गतिविधि प्रायः बँध गई। हत्तंत्री की झंकार, नीरव संदेश, अभिसार, अनंत प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, आँखमिचौली, मद में झूमना, विभोर होना इत्यादि के साथ साथ शराब, प्याला, साकी आदि सूफी कवियों के पुराने सामान भी इकट्ठे किए गए। कुछ हेर फेर के साथ वही बँधी पदावली, वेदना का वही प्रकांड प्रदर्शन, कुछ विशृंखलता के साथ प्रायः सब कविताओं में मिलने लगा।

अज्ञेय और अव्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर कामवासना के शब्दों में प्रेमव्यंजना भारतीय काव्यधारा में कभी नहीं चली, यह स्पष्ट बात 'हमारे यहाँ यह भी था, वह भी था', की प्रवृत्तिवालों को अच्छी नहीं लगती। इससे खिन्न होकर वे उपनिषद् से लेकर तंत्र और योगमार्ग तक की दौड़ लगाते हैं। उपनिषद् में आए

unacademy

हुए आत्मा के पूर्ण आनंदस्वरूप के निर्देश, ब्रह्मानंद की अपरिमेयता को समझाने के लिए स्त्री पुरुष संबंधवाले दृष्टांत या उपमाएँ, योग के सहस्रदल कमल आदि की भावना को बीच बीच में वे बड़े संतोष के साथ उद्धृत करते हैं। यह सब करने के पहले उन्हें समझना चाहिए कि जो बात ऊपर कही गई है उसका तात्पर्य क्या है? यह कौन कहता है कि मत मतांतरों की साधना के क्षेत्र में रहस्यमार्ग नहीं चले? योग रहस्यमार्ग है; तंत्र रहस्यमार्ग है; रसायन भी रहस्यमार्ग है। पर ये सब साधनात्मक हैं; प्रकृत भावभूमि या काव्यभूमि के भीतर चले हुए मार्ग नहीं। भारतीय परंपरा का कोई कवि मणिपूर, अनाहत आदि के चक्रों को लेकर तरह तरह के रंगमहल बनाने में प्रवृत्त नहीं हुआ।

संहिताओं में तो अनेक प्रकार की बातों का संग्रह है। उपनिषदों में ब्रह्म और जगत् आत्मा और परमात्मा के संबंध में कई प्रकार के मत हैं। वे काव्यग्रंथ नहीं हैं। उनमें इधर उधर काव्य का जो स्वरूप मिलता है वह ऐतिह्य, कर्मकांड, दार्शनिक चिंतन, सांप्रदायिक गुह्य साधना, मंत्रतंत्र, जादू टोना इत्यादि बहुत सी बातों में उलझा हुआ है। विशुद्ध काव्य का निखरा हुआ स्वरूप पीछे अलग हुआ। रामायण का आदिकाव्य कहलाना साफ यही सूचित करता है। संहिताओं और उपनिषदों को कभी किसी ने काव्य नहीं कहा। अब सीधा सवाल यह रह गया कि क्या वाल्मीकि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक कोई एक भी ऐसा कवि बताया जा सकता है जिसने अज्ञेय और अव्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर प्रियतम बनाया हो और उसके प्रति कामुकता के शब्दों में प्रेमव्यंजना की हो। कबीरदास किस प्रकार हमारे यहाँ की ज्ञानवाद और सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद को लेकर चले, यह हम पहले दिखा आए हैं।[2] उसी भावात्मक रहस्यपरंपरा का यह नूतन भावभंगी और लाक्षणिकता के साथ आविर्भाव है। बहुत रमणीय है, कुछ लोगों को अत्यंत [illegible]

प्रणयवासना का यह उद्गार आध्यात्मिक पर्दे में ही छिपा न रह सका। हृदय की सारी कामवासनाएँ, इंद्रियों के सुखविलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच एक बँधी हुई रूढ़ि पर व्यक्त होने लगी। इस प्रकार रहस्यवाद से संबंध न रखने-वाली कविताएँ भी छायावाद ही कही जाने लगीं। अतः 'छायावाद' शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्यशैली के संबंध में भी प्रतीकवाद (सिंबालिज्म) के अर्थ में होने लगा।

छायावाद की इस धारा के आने के साथ ही साथ अनेक लेखक नवयुग के प्रतिनिधि बनकर योरप के साहित्यक्षेत्र में प्रवर्तित काव्य और कला संबंधी अनेक नए पुराने सिद्धांत सामने लाने लगे। कुछ दिन 'कलावाद' की धूम रही और कहा जाता रहा 'कला का उद्देश्य कला ही है'। इस जीवन के साथ काव्य का कोई संबंध ही नहीं, उसकी दुनिया ही और है। किसी काव्य के मूल्य का निर्धारण जीवन की

unacademy

किसी वस्तु के मूल्य के रूप में नहीं हो सकता। काव्य तो एक लोकातीत वस्तु है। कवि एक प्रकार का रहस्यदर्शी (सीयर) या पैगंबर है।[3] इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को लेकर बताया गया कि काव्य में वस्तु या वर्ण्य विषयक कुछ नहीं; जो कुछ है वह अभिव्यंजना के ढंग का अनूठापन है।[1] इन दोनों वादों के अनुसार काव्य का लक्ष्य उसी प्रकार सौंदर्य की सृष्टि या योजना कहा गया जिस प्रकार बेलबूटे या नक्काशी का। कविकल्पना को प्रत्यक्षजगत से अलग एक स्मरणीय स्वप्न घोषित किया जाने लगा और कवि सौंदर्य भावना के मद में झूमनेवाला एक लोकातीत जीव। कला और काव्य की प्रेरणा का संबंध स्वप्न और कामवासना से बतानेवाला मत भी इधर उधर उद्धृत हुआ। सारांश यह कि इस प्रकार के अनेक वाद प्रवाद पत्र पत्रिकाओं में निकलते रहे।

छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओं की बहुत कुछ गतिविधि अँगरेजी वाक्यखंडों के अनुवाद द्वारा संघटित देख, अँगरेजी काव्यों से परिचित हिन्दी कवि सीधे अँगरेजी से ही तरह तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगह जगह अपनी रचनाओं में जड़ने लगे। 'कनक प्रभात', 'विचारों में बच्चों की साँस', 'स्वर्ण समय', 'प्रथम मधुबाल', 'तारिकाओं की तान', 'स्वप्निल कांति' ऐसे प्रयोग अजायबघर के जानवरों की तरह उनकी रचनाओं के भीतर इधर उधर मिलने लगे। निरालाजी की शैली कुछ अलग रही। उसमें लाक्षणिक वैचित्र्य का उतना आग्रह नहीं पाया जाता जितना पदावली की तड़क भड़क और पूरे वाक्य के वैलक्षण्य का। केवल भाषा के प्रयोगवैचित्र्य तक ही बात न रही। ऊपर जिन अनेक योरोपीय वादों और प्रवादों का उल्लेख हुआ है उन सबका प्रभाव भी छायावाद कही जानेवाली कविताओं के स्वरूप पर कुछ न कुछ पड़ता रहा।

कलावाद और अभिव्यंजनावाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी अप्रस्तुत योजना के काम में लाए गए। सीधे उनके मर्म की ओर हृदय प्रवृत्त न दिखाई पड़ा। पंतजी अलबत प्रकृति के कमनीय रूपों की ओर कुछ रुककर हृदय रमाते पाए गए।

दूसरा प्रभाव यह देखने में आया कि अभिव्यंजना प्रणाली या शैली की विचित्रता ही सब कुछ समझी गई। नाना अर्थभूमियों पर काव्य का प्रसार रुक सा गया। प्रेमक्षेत्र (कहीं आध्यात्मिक, कहीं लौकिक) के भीतर ही कल्पना की चित्रविधायिनी क्रीड़ा के साथ प्रकांड वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा क्रीड़ा से दौड़ी हुई प्रिय के कपोलों पर की ललाई, हावभाव, मधुस्राव, अश्रुप्रवाह इत्यादि के रँगीले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्ण तृप्त दिखाई देते हैं। जगत और

जीवन के नाना मार्मिक पक्षों की ओर उनकी दृष्टि नहीं है। बहुत से नए रसिक प्रस्वेद, गंधयुक्त, चिपचिपाती और भिनभिनाती भाषा को ही सब कुछ समझने लगे हैं। लक्षणाशक्ति के सहारे अभिव्यंजना प्रणाली या काव्यशैली का अवश्य बहुत अच्छा विकास हुआ है पर अभी तक कुछ बँधे हुए शब्दों की रूढ़ि चली चल रही है। रीतिकाल की शृंगारी कविता की भरमार की तो इतनी निंदा की गई। पर वही शृंगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान—अपनी कुछ अदा बदलकर फिर प्रायः सारा काव्यक्षेत्र छेंककर चल रही है।

'कलावाद' के प्रसंग में बार बार आनेवाले 'सौंदर्य' शब्द के कारण बहुत से कवि बेचारी स्वर्ग की अप्सराओं को पर लगाकर कोहकाफ की परियों या बिहिश्त के फरिश्तों की तरह उड़ाते हैं, सौंदर्य चयन के लिए इंद्रधनुषी बादल, उषा, विकच कलिका, पराग, सौरभ, स्मित आनन, अधरपल्लव इत्यादि बहुत ही सुंदर और मधुर सामग्री प्रत्येक कविता में जुटाना आवश्यक समझते हैं। स्त्री के नाना अंगों के आरोप के बिना वे प्रकृति के किसी दृश्य के सौंदर्य की भावना ही नहीं कर सकते। 'कला कला' की पुकार के कारण योरप में गीत मुक्तकों (लिरिक्स) का ही अधिक चलन देखकर यहाँ भी उसी का जमाना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लंबी कविताएँ पढ़ने की किसी को फुरसत कहाँ जिनमें कुछ इतिवृत्त भी मिला रहता हो। अब तो विशुद्ध काव्य की सामग्री जुटाकर सामने रख देनी चाहिए जो छोटे छोटे प्रगीत मुक्तकों में ही संभव है। इस प्रकार काव्य में जीवन को अनेक परिस्थितियों की ओर ले जानेवाले प्रसंगों या आख्यानों की उद्भावना बंद सी हो गई।

खैरियत यह हुई कि कलावाद की उस रसवर्जिनी सीमा तक लोग नहीं बढ़े जहाँ यह कहा जाता है कि रसानुभूति के रूप में किसी प्रकार का भाव जगाना तो वक्ताओं का काम है, कलाकार का काम तो केवल कल्पना द्वारा बेलबूटे या बारात की फुलवारी की तरह की शब्दमयी रचना खड़ी करके सौंदर्य की अनुभूति उत्पन्न कराना है। हृदय और वेदना का पक्ष छोड़ा नहीं गया है, इससे काव्य के प्रकृतस्वरूप के तिरोभाव की आशंका नहीं है। पर छायावाद और कलावाद के सहसा आ धमकने से वर्तमान काव्य का बहुत सा अंश एक बँधी हुई लीक के भीतर सिमट गया, नाना अर्थभूमियों पर न जाने पाया, यह अब अवश्य कहा जाएगा।

छायावाद की शाखा के भीतर धीरे धीरे काव्यशैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्ति प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पदविन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। भाषा के परिमार्जनकाल में किस प्रकार खड़ी बोली की कविता के रूखे सूखे रूप से ऊबकर कुछ कवि उसमें सरसता लाने के चिह्न दिखा रहे थे, यह कहा जा चुका है।[5] अतः आध्यात्मिक रहस्यवाद का नूतन रूप हिन्दी में न आता तो भी शैली और अभिव्यंजना पद्धति

unacademy

की उक्त विशेषताएँ क्रमशः स्फुरित होतीं और उनका स्वतंत्र विकास होता। हमारी काव्यभाषा में लाक्षणिकता का कैसा अनूठा आभास घनानंद की रचनाओं में मिलता है, यह हम दिखा चुके हैं।[6]

छायावाद जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है वहाँ तक तो रहस्यवाद के ही अंतर्गत रहा है। उसके आगे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद (सिंबालिज्म) नाम की काव्यशैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेमगान ही करता रहा है। हर्ष की बात है कि अब कई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और और मार्मिक पक्षों की ओर भी बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इसी के साथ काव्यशैली में प्रतिक्रिया के प्रदर्शन व नएपन की नुमाइश का शौक भी घट रहा है। अब अपनी शाखा की विशिष्टता को विभिन्नता की हद पर ले जाकर दिखाने की प्रवृत्ति का वेग क्रमशः कम तथा रचनाओं को सुव्यवस्थित और अर्थगर्भित रूप देने की रुचि क्रमशः अधिक होती दिखाई पड़ती है।

स्वर्गीय जयशंकर प्रसादजी अधिकतर तो विरहवेदना के नाना सजीले शब्दपथ निकालते तथा लौकिक और अलौकिक प्रणय मधुगान ही करते रहे, पर इधर 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थभूमि पर ले जाने का प्रयास भी उन्होंने किया और जगत के वर्तमान दुखद्वेषपूर्ण मानव जीवन का अनुभव करके इस 'जले जगत के वृंदावन बन जाने' की आशा भी प्रकट की तथा 'जीवन के प्रभात' को भी जगाया। इसी प्रकार श्री सुमित्रानंदन पंत ने 'गुंजन' में सौंदर्य चयन से आगे बढ़ जीवन के नित्य स्वरूप पर भी दृष्टि डाली है; सुख दुख दोनों के साथ अपने हृदय का सामंजस्य किया है और जीवन की गति में भी लय' का अनुभव किया है। बहुत अच्छा होता यदि पंतजी उसी प्रकार जीवन की अनेक परिस्थितियों को नित्य रूप में लेकर अपनी सुंदर, चित्रमयी प्रतिभा को अग्रसर करते जिस प्रकार उन्होंने 'गुंजन' और 'युगांत' में किया है। 'युगवाणी' में उनकी वाणी बहुत कुछ वर्तमान आंदोलनों की प्रतिध्वनि के रूप में परिणत होती दिखाई देती है।

निरालाजी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा। उन्होंने जिस प्रकार 'तुम और मैं' में उस रहस्य 'नाद वेग ओंकार सार' का गान किया, 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में उन्मद प्रणय चेष्टाओं के पुष्पचित्र खड़े किए उसी प्रकार 'जागरण वीणा' बजाई; इस जगत् के बीच विधवा की विधुर और करुण मूर्ति खड़ी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक पत्थर तोड़ती दीन स्त्री के माथे पर के श्रमसीकर दिखाए। सारांश यह कि अब शैली के वैलक्षण्य द्वारा प्रतिक्रिया प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थभूमि के रमणीय प्रसार के चिह्न भी छायावादी कहे जानेवाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।

इधर हमारे साहित्य क्षेत्र की प्रवृत्तियों का परिचालन बहुत कुछ पश्चिम से होता है। कला में 'व्यक्तित्व' की चर्चा खूब फैलने से कुछ कवि लोक के साथ

unacademy

अपना मेल न मिलने की अनुभूति की बड़ी लंबी चौड़ी व्यंजना, कुछ मार्मिकता और कुछ फक्कड़पन के साथ करने लगे हैं। भावक्षेत्र में असामंजस्य की इस अनुभूति का भी एक स्थान अवश्य है, पर यह कोई व्यापक या स्थायी मनोवृत्ति नहीं। हमारा भारतीय काव्य उस भूमि की ओर प्रवृत्त रहा है जहाँ जाकर प्रायः सब हृदयों का मेल हो जाता है। वह सामंजस्य को लेकर अनेकता में एकता को लेकर–चलता रहा है, असामंजस्य को लेकर नहीं।

उपर्युक्त परिवर्तनवाद और छायावाद को लेकर चलनेवाली कविताओं के साथ साथ दूसरी धाराओं की कविताएँ भी विकसित होती हुई चल रही हैं। द्विवेदीकाल में प्रवर्तित विविध, वस्तुभूमियों पर प्रसन्न प्रवाह के साथ चलनेवाली काव्यधारा सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, ठाकुर गोपालशरण सिंह, अनूप शर्मा, श्यामनारायण पांडेय, पुरोहित प्रतापनारायण, तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' इत्यादि अनेक कवियों की वाणी के प्रसाद से विविध प्रसंग, आख्यान और विषय लेकर निखरती तथा प्रौढ़ और प्रगल्भ होती चली आ रही है। उसकी अभिव्यंजना प्रणाली में अब अच्छी सरसता और सजीवता तथा अपेक्षित वक्रता का भी विकास होता चल रहा है।

यद्यपि कई वादों के कूद पड़ने और प्रेमगान की परिपाटी (लव लिरिक्स) का फैशन चल पड़ने के कारण अर्थभूमि का बहुत कुछ संकोच हो गया और हमारे वर्तमान काव्य का बहुत सा भाग कुछ रूढ़ियों को लेकर एक बँधी लीक पर बहुत दिनों तक चला, फिर भी स्वाभाविक स्वच्छंदता (ट्रू रोमांटिसिज्म) के उस नूतन पथ को ग्रहण करके कई कवि चले जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। पं. रामनरेश त्रिपाठी के संबंध में द्वितीय उत्थान के भीतर कहा जा चुका है। तृतीय उत्थान के आरंभ में मुकुटधर पांडेय की रचनाएँ छायावाद के पहले किस प्रकार नूतन, स्वच्छंद मार्ग निकाल रही थीं यह भी हम दिखा आए हैं। मुकुटधरजी की रचनाएँ नरेतर प्राणियों की गतिविधि का भी रागरहस्यपूर्ण परिचय देती हुई स्वाभाविक स्वच्छंदता की ओर झुकती मिलेंगी। प्रकृति प्रांगण के चर अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय उनकी गतिविधि पर आत्मीयताव्यंजक दृष्टिपात, सुख दुख में उनके साहचर्य की भावना, ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छंदता के पथचिह्न हैं। सर्वश्री सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, ठाकुर गुरुभक्त सिंह, उदयशंकर भट्ट इत्यादि कई कवि विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छंदता का मर्मपथ ग्रहण करके चल रहे हैं। वे न तो केवल नवीनता के प्रदर्शन के लिए पुराने छंदों का तिरस्कार करते हैं, न उन्हीं में एकबारगी बँधकर चलते हैं। वे प्रसंग के अनुकूल परंपरागत पुराने छंदों का व्यवहार और नये ढंग के छंदों तथा चरण व्यवस्थाओं का विधान भी करते हैं। व्यंजक, चित्रविन्यास, लाक्षणिक वक्रता और मूर्तिमत्ता, सरसपदावली आदि का भी सहारा लेते हैं, पर इन्हीं बातों को सब कुछ नहीं समझते। एक छोटे से घेरे में इनके प्रदर्शनमात्र से वे संतुष्ट नहीं दिखाई देते हैं। उनकी कल्पना इस व्यक्त जगत् और जीवन की अनंत वीथियों में हृदय को साथ लेकर विचरने के

unacademy

छायावाद

संवत् 1970 तक किस प्रकार 'खड़ी बोली' के पद्यों में ढलकर मँजने की अवस्था पार हुई और श्री मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय आदि कई कवि खड़ी बोली काव्य को अधिक कल्पनामय, चित्रमय और अंतर्भावव्यंजक रूप रंग देने में प्रवृत्त हुए यह कहा जा चुका है। उनके कुछ रहस्य भावापन्न प्रगीतमुक्तक भी दिखाए जा चुके हैं। वे किस प्रकार कार्यक्षेत्र का प्रसार चाहते थे, प्रकृति की साधारण असाधारण वस्तुओं से अपने चिरसंबंध का सच्चा मार्मिक अनुभव करते हुए चले थे, इसका भी निर्देश हो चुका है।

यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रवींद्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और 'प्रतीकवाद' या 'चित्रभाषावाद' को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। 'चित्रभाषा' या अभिव्यंजन पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।

रहस्यभावना और अभिव्यंजनपद्धति पर ही प्रधान लक्ष्य हो जाने और काव्य को केवल कल्पना की सृष्टि कहने का चलन हो जाने से सहानुभूति तक कल्पित होने लगी। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है उसी प्रकार अनेक प्रकार की विचित्र भावानुभूतियों की कल्पना भी बहुत कुछ

होने लगी। काव्य की प्रकृत पद्धति तो यह है कि वस्तुयोजना चाहे लोकोत्तर हो पर भावानुभूति का स्वरूप सच्चा अर्थात् स्वाभाविक वासनाजन्य हो। भावानुभूति का स्वरूप भी यदि कल्पित होगा तो हृदय से उसका संबंध क्या रहेगा? भावानुभूति यदि ऐसी होगी, जैसी नहीं हुआ करती तो सच्चाई (सिंसियारिटी) कहाँ रहेगी? यदि कोई मृत्यु को केवल जीवन की पूर्णता कहकर उसका प्रबल अभिलाष व्यंजित करे, अपने मर मिटने के अधिकार पर गर्व की व्यंजना करे तो कथन के वैचित्र्य से हमारा मनोरंजन तो अवश्य होगा पर ऐसे अभिलाषा या गर्व की कहीं सत्ता मानने की आवश्यकता न होगी।

'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद के अंतर्भूत रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उसी वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधिदशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी। इस रूपात्मक आभास को योरप में 'छाया' (फैंटसमाटा) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवींद्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।

[illegible] शैली या पद्धतिविशेष के व्यापक अर्थ [illegible] साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।

'अयावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धतिविशेष के व्यापक अर्थ में है। सन् 1885 में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवाद (सिंबलिस्ट्स) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुतों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वरप्रेम संबंधी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली की ओर वहाँ प्रवृत्ति रही। हिन्दी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ में—रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के संबंध में भी—ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।

'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्यक्षेत्र में चलने वाली श्री महादेवी वर्मा ही हैं। पंत, प्रसाद, निराला इत्यादि और सब कवि प्रतीकपद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए।

रहस्यवाद के भीतर आनेवाली रचनाएँ तो थोड़ी या बहुत सभी ने उक्त पद्धति

unacademy

पर की हैं, पर उनकी शब्दकला, वासनात्मक प्रणयोद्गार, वेदना विवृत्ति, सौंदर्य संघटन, मधुचर्या, अतृप्तिव्यंजना इत्यादि में अधिकतर नियुक्त रही। जीवन के अवसाद, विषाद और नैराश्य की झलक भी उनके मधुमय गानों में मिलती रही। इसी परिमित क्षेत्र के भीतर चित्रभाषाशैली का वे वैलक्षण्य के साथ दर्शन करते रहे। जैसा कि सामान्य परिचय के भीतर कहा जा चुका है वैलक्षण्य लाने के लिए अँगरेजी की लाक्षणिक पदावलियों के अनुवाद भी ज्यों के त्यों रखे जाते रहे। जिनकी प्रवृत्ति लाक्षणिक वैचित्र्य की ओर कम थी वे बंगभाषा के कवियों के ढंग पर श्रुतिरंजक या नादानुकृत पदावली गुंफित करने में अधिक तत्पर दिखाई दिए।

चित्रभाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अंतर्गत जिस प्रकार वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का व्यवहार आता है उसी प्रकार प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाले अप्रस्तुत चित्रों का विधान भी। अतः अन्योक्तिपद्धति का अवलंबन भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ। यह पहले कहा जा चुका है कि छायावाद का चलन द्विवेदीकाल की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतः इस प्रतिक्रिया का प्रदर्शन केवल लक्षण और अन्योक्ति के प्राचुर्य के रूप में ही नहीं, कहीं कहीं उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार के रूप में भी हुआ। इनमें से उपादान और लक्षण लक्षणाओं को छोड़ और सब बातें किसी न किसी प्रकार की साम्यभावना के आधार पर ही खड़ी होने वाली हैं। साम्य को लेकर अनेक प्रकार की अलंकृत रचनाएँ बहुत पहले भी होती थीं तथा रीतिकाल के और उसके पीछे भी होती रही हैं। अतः छायावाद की रचनाओं के भीतर साम्यग्रहण की उस प्रणाली का निरूपण आवश्यक है जिसके कारण उसे एक विशिष्ट रूप प्राप्त हुआ।

हमारे यहाँ साम्य मुख्यतः तीन प्रकार का माना गया है। सादृश्य (रूप व आकार का साम्य), साधर्म्य (गुण या क्रिया का साम्य) और केवल शब्दसाम्य (दो भिन्न वस्तुओं का एक ही नाम होना)। इसमें से अंतिम तो श्लेष की शब्दक्रीड़ा दिखाने वालों के ही काम का है। रहे सादृश्य और साधर्म्य। विचार करने पर इन दोनों में प्रभावसाम्य छिपा मिलेगा। सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतों की ओर जाती है, जो प्रस्तुतों के समान ही सौंदर्य, दीप्ति, कांति, कोमलता, प्रचंडता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता इत्यादि की भावना जगाते हैं। काव्य में बँधे चले आते हुए उपमान अधिकतर इसी के हैं। केवल रूप रंग, आकार या व्यापार को ऊपर से देखकर या नाप जोखकर, भावना पर उनका प्रभाव परखे बिना, वे नहीं रखे जाते थे। पीछे कविकर्म के बहुत कुछ श्रमसाध्य या अभ्यासगम्य होने के कारण जब कृत्रिमता आने लगी तब बहुत से उपमान केवल बाहरी नाप जोख के अनुसार भी रखे जाने लगे। कटि की सूक्ष्मता दिखाने के लिए सिंहनी और भिड़ सामने लाई जाने लगी।

छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभावसाम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला

है। कहीं कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभावसाम्य लेकर अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् (सिंबालिक) होते हैं, जैसे—सुख, आनंद, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल; प्रेमी के स्थान पर मधुप; श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, रजत; माधुर्य के स्थान पर मधु; दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण; विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अँधेरी रात, संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भावतरंग के लिए झंकार, भावप्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि। आभ्यंतर प्रभावसाम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।

हिन्दी काव्यपरंपरा में अन्योक्तिपद्धति का प्रचार तो रहा है, पर लाक्षणिकता का एक प्रकार से अभाव ही रहा। केवल कुछ रूढ़ लक्षणाएँ मुहावरों के रूप में कहीं कहीं मिल जाती थीं। व्रजभाषा कवियों में लाक्षणिक साहस किसी ने दिखाया तो घनानंद ने। इस तृतीय उत्थान में सबसे अधिक लाक्षणिक साहस पंतजी ने अपने 'पल्लव' में दिखाया, जैसे—

1. धूल की ढेरी में अनजान छिपे हैं मेरे मधुमय गान॥
   (धूल की ढेरी=असुंदर वस्तुएँ। मधुमय गान=गान के विषय अर्थात् सुंदर वस्तुएँ)
2. मर्मपीड़ा के हास (हास=विकास, समृद्धि। विरोध वैचित्र्य के लिए व्यंग्यव्यंजक संबंध को लेकर लक्षणा)। (मर्मपीड़ा के हास! = हे मेरे पीड़ित मन! आधार आधेय संबंध लेकर)।
3. चाँदनी का स्वभाव में वास। विचारों में बच्चों की साँस।
   (चाँदनी=मृदुलता, शीतलता। बच्चों की साँस=भोलापन)।
4. मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास (मृत्यु=आसन्नमृत्यु व्यक्ति अथवा मृतक के लिए शोक करनेवाले व्यक्ति।)
5. कौन तुम अतुल अरूप अनाम (शिशु के लिए। अल्पार्थक के स्थान पर निषेधार्थक।)

'पल्लव' में प्रतिक्रिया के आवेश के कारण वैचित्र्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक थी जिसके लिए कहीं कहीं अँगरेजी के लाक्षणिक प्रयोग भी ज्यों के त्यों ले लिए गए। पर पीछे यह प्रवृत्ति घटती गई।

'प्रसाद' की रचनाओं में शब्दों के लाक्षणिक वैचित्र्य की प्रवृत्ति उतनी नहीं रही है जितनी साम्य की दुरारूढ़ भावना की। उनके उपलक्षण (सिंबल्स) सामान्य अनुभूति के मेल में होते थे। जैसे—

1. झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है, नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला॥
—'आँसू' (झंझा झकोर=क्षोभ; आकुलता। गर्जन=वेदना की तड़प। बिजली=चमक या टीस। नीरदमाला=अंधकार। शून्य शब्द विशेषण के अतिरिक्त आकाशवाचक भी है; जिससे उक्ति में बहुत सुंदर समन्वय आ जाता है।)

2. पतझड़ था; झाड़ खड़े थे सूखे से फुलवारी में।
किसलय दल कुसुम बिछाकर आए तुम इस क्यारी में। —'आँसू'
(पतझड़=उदासी। किसलयदलकुसुम=वसंत, सरसता और प्रफुल्लता)।

3. काँटों ने भी पहना मोती (कँटीले पौधों=पीड़ा पहुँचाने वाले कठोर हृदय मनुष्यों। पहना मोती=हिमबिंदु धारण किया=अश्रुपूर्ण हुए।)

अप्रस्तुत किस प्रकार एकदेशीय, सूक्ष्म और धुँधले पर मर्मव्यंजक साम्य का धुँधला सा आधार लेकर खड़े किए जाते हैं, यह बात नीचे के कुछ उद्धरणों से स्पष्ट हो जाएगी—

1. उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
करुणा की नव अँगड़ाई सी, मलयानिल की परछाई सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर॥ —'लहर'
(लहर=सरस कोमल भाव। सूखा तट=शुष्क जीवन। अप्रस्तुत या उपमान भी लाक्षणिक हैं।)

2. गूढ़ कल्पना सी कवियों की, अज्ञाता के विस्मय सी
ऋषियों के गंभीर हृदय सी, बच्चों के तुतले भय सी। —'छाया'

3. गिरिवर के उर से उठ उठ कर, उच्चाकांक्षाओं से तरुवर, हैं झाँक रहे नीरव नभ पर।

(उठे हुए पेड़ों का साम्य मनुष्य के हृदय की उन उच्चाकांक्षाओं से है, जो लोक के परे जाती हैं।)

4. बनमाला के गीतों सा निर्जन में बिखरा है मधुमास।

छायावाद की रचनाएँ गीतों के रूप में ही अधिकतर होती हैं। इससे उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है। जहाँ यह अन्विति होती है वहाँ समूची रचना अन्योक्ति पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्यभावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं। यह साम्यभावना हमारे हृदय का प्रसार करनेवाली, शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ संबंध की धारणा बँधानेवाली, अत्यंत अपेक्षित मनोभूमि है, इसमें संदेह नहीं, पर यह सच्चा मार्मिक प्रभाव वहीं उत्पन्न करती है जहाँ यह प्राकृतिक वस्तु या व्यापार से प्राप्त सच्चे आभास के आधार पर खड़ी होती है। प्रकृति अपने अनंत रूपों और व्यापारों के द्वारा अनेक बातों की गूढ़ वा अगूढ़ व्यंजना करती रहती है। इस व्यंजना को न परखकर या न ग्रहण करके जो साम्यविधान होगा वह मनमाना

आरोपमात्र होगा। इस अनंत विश्व महाकाव्य की व्यंजनाओं की परख के साथ जो साम्यविधान होता है वह मार्मिक और उद्‌बोधक होता है, जैसे—

दुखदावा से नवअंकुर पाता जग जीवन का वन
करुणार्द्र विश्व का गर्जन बरसाता नवजीवन कण।
खुल खुल नव इच्छाएं फैलाती जीवन के दल।
यह शैशव का सरल हास है, सहसा उर में है आ जाता।
यह ऊषा का नवविकास है, जो रज को है रजत बनाता।
यह लघु लहरों का विलास है, कलानाथ जिसमें खिंच आता॥

हँस पड़े कुसुमों में छविमान, जहाँ जग में पदरिह पुनीत।
वहीं सुख में आँसू बन प्राण, ओस में लुढ़क दमकते गीत॥

—गुंजन

मेरा अनुराग फैलने दो, नभ के अभिनव कलरव में।
जाकर सूनेपन के तम में, बन किरन कभी आ जाना।
अखिल की लघुता आई बन, समय का सुंदर वातायन।
देखने को अदृष्ट नर्तन।

—लहर

जल उठा स्नेह दीपक सा, नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूमरेखा से, चित्रित कर रहा अँधेरा॥

—आँसू

मनमाने आरोप, जिनका विधान प्रकृति के संकेत पर नहीं होता, हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श नहीं करते, केवल वैचित्र्य का कुतूहल मात्र उत्पन्न करके रह जाते हैं। छायावाद की कविता पर कल्पनावाद, कलावाद, अभिव्यंजनावाद आदि का भी प्रभाव ज्ञात या अज्ञात के रूप में पड़ता रहा है। इससे बहुत सा अप्रस्तुत विधान मनमाने आरोप के रूप में भी सामने आता है। प्रकृति के वस्तु व्यापारों पर मानुषी वृत्तियों के आरोप का बहुत चलन हो जाने से कहीं कहीं ये आरोप वस्तु व्यापारों की प्रकृत व्यंजना से बहुत दूर जा पड़े हैं, जैसे—चाँदनी के इस वर्णन में—

१. जग के दुख दैन्य शयन पर यह रुग्णा जीवनबाला।
पीली पड़, निर्बल, कोमल, कृश देहलता कुम्हलाई।
विवसना, लाज में, लिपटी, साँसों में शून्य समाई॥

चाँदनी अपने आप इस प्रकार की भावना मन में नहीं जगाती। उसके संबंध में यह उद्‌भावना भी केवल स्त्री की सुंदर मुद्रा सामने खड़ी करती जान पड़ती है—

२. नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद हासिनि।
मृदु करतल पर शशिमुख धर नीरव अनिमिष एकाकिनि॥

unacademy

इसी प्रकार आँसुओं को 'नयनों के बाल' कहना भी व्यर्थ सा है। नीचे की जूठी प्याली भी (जो बहुत आया करती है) किसी मैखाने से लाकर रखी जान पड़ती है-

३. लहरों में प्यास भरी है, है भँवर पात्र से खाली।
मानव का सब रस पीकर, लुढ़का दी तुमने प्याली॥

प्रकृति के नाना रूपों के सौंदर्य की भावना सदैव स्त्री सौंदर्य का आरोप करके करना उक्त भावना की संकीर्णता सूचित करता है। कालिदास ने भी मेघदूत में निर्विंध्या और सिंधु नदियों में स्त्री सौंदर्य की भावना की है जिनसे नदी और मेघ के प्रकृत संबंध की रमणीय व्यंजना होती है। ग्रीष्म में नदियाँ सूखती सूखती पतली हो जाती हैं और तपती रहती हैं। उनपर मेघ छाया करता है तब वे शीतल हो जाती हैं और उस छाया को अंक में धारण किए दिखाई देती हैं। वही मेघ बरसकर उनकी क्षीणता दूर करता है। दोनों के बीच इसी प्राकृतिक संबंध की व्यंजना ग्रहण करके कालिदास ने अप्रस्तुत विधान किया है। पर सौंदर्य की भावना सर्वत्र स्त्री का चित्र चिपकाकर करना खेल सा हो जाता है। उषासुंदरी के कपोलों की ललाई, रजनी के रलजटित केश कलाप, दीर्घ निःश्वास और अश्रुबिंदुता तो रूढ़ हो ही गए हैं; किरन, लहर, चंद्रिका, छाया, तितली सब अप्सराएँ या परियाँ बनकर सामने आने पाती हैं। इसी तरह प्रकृति के नाना व्यापार भी चुंबन, आलिंगन, मधुग्रहण, मधुदान, कामिनी की क्रीड़ा इत्यादि में अधिकतर परिणत दिखाई देते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि प्रकृति की नाना वस्तुओं और व्यापारों का अपना अपना अलग सौंदर्य भी है जो एक ही प्रकार की वस्तु या व्यापार के आरोप द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पंतजी की 'छाया', 'वीचिविलास', 'नक्षत्र' में जो यहाँ से वहाँ तक उपमानों का ढेर लगा है उनमें से बहुत से तो अत्यंत सूक्ष्म और सुकुमार साम्य के व्यंजक हैं और बहुत से रंग बिरंगे खिलौने के रूप में ही हैं। ऐसी रचनाएँ उस 'कल्पनावाद', 'कलावाद' या 'अभिव्यंजनावाद' के उदाहरण सी लगती हैं जिसके अनुसार कवि कल्पना का काम प्रकृति की नाना वस्तुएँ लेकर एक नया निर्माण करना या नूतन सृष्टि खड़ी करना है। प्रकृति के सच्चे स्वरूप, उसकी सच्ची व्यंजना ग्रहण करना उक्त वादों के अनुसार आवश्यक नहीं। उनके अनुसार तो प्रकृति की नाना वस्तुओं का उपयोग केवल उपादान के रूप में है; उसी प्रकार जैसे बालक, ईंट, पत्थर, लकड़ी, कागज, फूलपत्ती लेकर हाथी घोड़े, घर बगीचे इत्यादि बनाया करते हैं। प्रकृति के नाना चित्रों के द्वारा अपनी भावनाएँ व्यक्त करना तो बहुत ठीक है, पर उन भावनाओं को व्यक्त करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी तो गृहीत चित्रों में होनी चाहिए।

छायावाद की प्रवृत्ति अधिकतर प्रेमगीतात्मक होने के कारण हमारा वर्तमान काव्य प्रसंगों की अनेकरूपता के साथ नई नई अर्थभूमियों पर कुछ दिनों तक बहुत कम चल पाया। कुछ कवियों में वस्तु का आधार अत्यंत अल्प रहता है। विशेष लक्ष्य अभिव्यंजना के अनूठे विस्तार पर रहा है। इससे उनकी रचनाओं का बहुत

unacademy

ता भाग अधर में ठहराया सा जान पड़ता है। जिन वस्तुओं के आधार पर उक्तियाँ मन में खड़ी की जाती हैं उनका कुछ भाग कला के अनूठेपन के लिए पंक्तियों के इधर उधर से हटा भी लिया जाता है। अतः कहीं कहीं व्यवहृत शब्दों की व्यंजकता पर्याप्त न होने पर भाव अस्फुट रह जाता है, पाठक को अपनी ओर से बहुत कुछ आक्षेप करना पड़ता है, जैसे नीचे की पंक्तियों में–

निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप आओगे।
इतना सजग कुतूहल! ठहरो, यह न कभी बन पाओगे।
आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप चाँप कर उन्हें नहीं।
दुख दो इतना, अरे! अरुणिमा उषा सी वह उधर बही।

यहाँ कवि ने उस प्रियतम के छिपकर दबे पाँव आने की बात कही है जिनके चरण इतने सुकुमार हैं कि जब आहट न सुनाई पड़ने के लिए वह उन्हें बहुत दबा दबाकर रखते हैं तब एड़ियों में ऊपर की ओर खून की लाली दौड़ जाती है। वही ललाई उषा की लाली के रूप में झलकती है। 'प्रसादजी' का ध्यान शरीर विकारों पर विशेष जमता था। इसी से उन्होंने 'चाँप चाँपकर दुख दो', से ललाई दौड़ने की कल्पना पाठकों के ऊपर छोड़ दी है। 'कामायनी' में उन्होंने मले हुए कान में भी कामिनी के कपोलों पर की 'लज्जा की लाली' दिखाई है।

अभिव्यंजना की पद्धति या काव्यशैली पर ही प्रधान लक्ष्य रहने से छायावाद के भीतर उसका बहुत ही रमणीय विकास हुआ है, यह हम पहले कह आए हैं। साम्यभावना और लक्षणा शक्ति के बल पर किस प्रकार काव्योपयुक्त चित्रमयी भाषा की ओर सामान्यतः झुकाव हुआ यह भी कहा जा चुका है। साम्य पहले उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक–ऐसे अलंकारों के बड़े बड़े साँचों के भीतर ही फैलाकर दिखाया जाता था। वह अब प्रायः थोड़े में या तो लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा झलका दिया जाता है अथवा कुछ प्रच्छन्न रूपकों में प्रतीयमान रहता है। इसी प्रकार किसी तथ्य या पूरे प्रसंग के लिए दृष्टांत, अर्थात् विन्यास आदि का सहारा न लेकर अब अन्योक्ति पद्धति ही अधिक चलती है। यह बहुत ही परिष्कृत पद्धति है। पर यह न समझना चाहिए कि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग नहीं होता है, बराबर होता है और बहुत होता है। उपमा में धर्म बराबर लुप्त रहता है। प्रतिवस्तूपमा, हेतूत्प्रेक्षा, विरोध, श्लेष, एकावली इत्यादि अलंकार भी कहीं कहीं पाए जाते हैं।

किस प्रकार एक बँधे घेरे से निकलकर अब छायावादी कहे जानेवाले कवि धीरे धीरे जगत् और जीवन के अनंत क्षेत्र में इधर उधर दृष्टि फैलाते देखे जा रहे हैं, इसका आभास दिया जा चुका है। अब तक उनकी कल्पना थोड़ी सी जगह के भीतर कलापूर्ण और मनोरंजक नृत्य सा कर रही थी। वह जगत् और जीवन के जटिल स्वरूप से घबराने वालों का जी बहलाने का काम करती रही है। अब उसे अखिल जीवन के नाना पक्षों की मार्मिकता का साक्षात्कार करते हुए एक करीने

unacademy

1. द्विवेदी युगीन कविता की प्रमुख प्रवित्तियाँ-
   a. समाज सुधार
   b. गीतिकाव्य की प्रचुरता
   c. स्वच्छंदतावाद
   d. इतिवृत्तात्मकता

unacademy

1. जयशंकर प्रसाद—ये पहले व्रजभाषा की कविताएँ लिखा करते थे जिनका संग्रह 'चित्राधार' में हुआ है। संवत् 1970 से वे खड़ी बोली की ओर आए और 'कानन कुसुम', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय' और 'प्रेमपथिक' प्रकाशित हुए। 'कानन कुसुम' में तो प्रायः उसी ढंग की कविताएँ हैं जिस ढंग की द्विवेदीकाल में निकला करती थीं। 'महाराणा का महत्त्व' और 'प्रेमपथिक' (संवत् 1970) अतुकांत रचनाएँ हैं जिसका मार्ग पं. श्रीधर पाठक पहले दिखा चुके थे। भारतेंदु काल में पं. अंबिकादत्त व्यास ने बँगला की देखादेखी कुछ अतुकांत पद्य आजमाए थे। पीछे पं. श्रीधर पाठक ने 'सांध्य अटन' नाम की कविता खड़ी बोली के अतुकांत (तथा चरण के बीच में पूर्ण विराम वाले) पद्यों में बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत की थी।

सामान्य परिचय के अंतर्गत दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट और मुकुटधर पांडेय इत्यादि कई कवि अंतर्भावना की प्रगल्भ चित्रमयी व्यंजना के उपयुक्त स्वच्छंद नूतन पद्धति निकाल रहे थे। पीछे उस नूतन पद्धति पर प्रसादजी ने भी कुछ छोटी छोटी कविताएँ लिखीं जो संवत् 1975 (सन् 1918) में 'झरना' के भीतर संगृहीत हुईं। 'झरना' की उन 24 कविताओं में उस समय की नूतन पद्धति पर निकलती हुई कविताओं से कोई ऐसी विशिष्टता नहीं थी जिसपर ध्यान जाता। दूसरे संस्करण में जो बहुत पीछे संवत् 1984 में निकला, पुस्तक का स्वरूप ही बदल गया। उसमें आधी से ऊपर अर्थात् 33 रचनाएँ जोड़ी गईं जिनमें पूरा रहस्यवाद, अभिव्यंजना का अनूठापन, व्यंजक चित्रविधान सब कुछ मिल जाता है। 'विषाद', 'बालू की बेला', 'खोलो द्वार', 'बिखरा हुआ प्रेम', 'किरण', 'वसंत की प्रतीक्षा', इत्यादि उन्हीं के पीछे जोड़ी हुई रचनाओं में हैं जो

unacademy

पहले (संवत् 1975 के) संस्करण में नहीं थीं। द्वितीय संस्करण में ही छायावाद कही जानेवाली विशेषताएँ स्फुट रूप में दिखाई पड़ीं। इसके पहले श्री सुमित्रानंदन पंत का 'पल्लव' बड़ी धूमधाम से निकल चुका था, जिसमें रहस्यभावना तो कहीं कहीं पर अप्रस्तुत विधान, चित्रमयी भाषा और लाक्षणिक वैचित्र्य आदि विशेषताएँ अत्यंत प्रचुर परिमाण में दिखाई पड़ी थीं।

प्रसादजी में ऐसी मधुमयी प्रतिभा और ऐसी जागरूक भावुकता अवश्य थी कि उन्होंने इस पद्धति का अपने ढंग पर बहुत ही मनोरम विकास किया। संस्कृत की कोमल कांत पदावली का जैसा सुंदर चयन बंगभाषा के काव्यों में हुआ है वैसा अन्य देशभाषाओं के साहित्य में नहीं दिखाई पड़ता। उनके परिशीलन में पदलालित्य की जो गूँज प्रसादजी के मन में समाई वह बराबर बनी रही।

जीवन के प्रेमविलासमय मधुर पक्ष की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होने के कारण वे उस 'प्रियतम' के संयोग वियोग वाली रहस्यभावना में—जिसे स्वाभाविक रहस्यभावना से अलग समझना चाहिए—रमते प्रायः पाए जाते हैं। प्रेमचर्या के शारीरिक व्यापारों और चेष्टाओं (अश्रु, स्वेद, चुंबन, परिरंभण, लज्जा की दौड़ी हुई लाली इत्यादि), रंगरेलियों और अठखेलियों, वेदना की कसक और टीस इत्यादि की ओर इनकी दृष्टि विशेष जमती थी। इसी मधुमयी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रकृति के अनंत क्षेत्र में भी वल्लरियों के दान, कलिकाओं की मंद मुस्कान, सुमनों के मधुपात्र पर मँडराते मलिंदों के गुंजार, सौरभहर समीर की झपक लपक, पराग मकरंद की लूट, उषा के कपोलों पर लज्जा की लाली, आकाश और पृथ्वी के अनुरागमय परिरंभ, रजनी के आँसू से भीगे अंबर, चंद्रमुख पर शरद्घन के सरकते अवगुंठन, मधुमास की मधुवर्षा और झूमती मादकता इत्यादि पर अधिक दृष्टि जाती थी। अतः इनकी रहस्यवादी रचनाओं को देख चाहे तो यह कहें कि इनकी मधुवर्षा के मानस प्रचार के लिए रहस्यवाद का परदा मिल गया अथवा यों कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम पर से कूदकर असीम पर जा रही।

इनकी पहली विशिष्ट रचना 'आँसू' (संवत 1982, सन 1925) है। 'आँसू' वास्तव में तो हैं शृंगारी विप्रलंभ के, जिनमें अतीत संयोग सुख की खिन्न स्मृतियाँ रह रहकर झलक मारती हैं, पर जहाँ प्रेमी की मादकता की बेसुधी में प्रियतम नीचे से ऊपर आते और संज्ञा की दशा में चले जाते हैं, जहाँ हृदय की तरंगें 'उस अनंत कोने को गहलाने चलती हैं, वहाँ वे आँसू उस 'अज्ञात प्रियतम' के लिए बहते जान पड़ते हैं। फिर जहाँ कवि यह देखने लगता है कि ऊपर तो—

अवकाश[10] असीम सुखों से आकाशतरंग[11] बनाता,
हँसता सा छायापथ में नक्षत्र समाज दिखाता।

पर

नीचे विपुला धरणी है दुखभार वहन सी करती।
अपने खारे आँसू से करुणासागर को भरती॥

और इस 'चिर दग्ध दुखी वसुधा' को, इस निमम जगता का, अपनी प्रेमवेदना की कल्याणी शीतल ज्वाला का मंगलमय, उजाला देना चाहता है, वहाँ वे आँसू लोक पीड़ा पर करुणा के आँसू से जान पड़ते हैं। पर वहीं पर जब हम कवि की दृष्टि अपनी सदा जगती हुई अखंड ज्वाला की प्रभविष्णुता पर इस प्रकार जमी पाते हैं कि 'हे मेरी ज्वाला!'

तेरे प्रकाश में चेतन संसार वेदनावाला।
मेरे समीप होता है पाकर कुछ करुण उजाला॥

तब ज्वाला या प्रेमवेदना की अतिरंजित और दुरारूढ़ भावना ही—जो शृंगार की पुरानी रूढ़ि है—रह जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता।

पर अलग अलग लेने पर उक्तियों के भीतर बड़ी ही रंजनकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यंत सुकुमार योजना मिलती है। प्रसादजी की यह पहली काव्यरचना है जिसने बहुत लोगों को आकर्षित किया। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेमवेदना की दिव्य विभूति का, विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का, सुख और दुख दोनों को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौंदर्य और मंगल का भी आभास पाया जाता है। 'नियतिवाद' और 'दुखवाद' का विषण्ण स्वर भी सुनाई पड़ता है। इस चेतना को दूर हटाकर मदतंद्रा, स्वप्न और असंज्ञा की दशा का आह्वान रहस्यवाद की एक स्वीकृत विधि है। इस विधि का पालन 'आँसू' से लेकर 'कामायनी' तक हुआ है। अपने ही लिए नहीं, उजाले में हाथ पैर मारनेवाली 'चिर दग्ध दुखी वसुधा' के लिए भी यहीं नींद लानेवाली दवा लेकर आने को कवि निशा से कहता है—

चिर दग्ध दुखी यह वसुधा आलोक माँगती, तब भी।
तुम तुहिन बरस दो कन कन, यह पगली सोये अब भी॥

चेतना की शांति या विस्मृति की दशा में ही 'कल्याण की वर्षा' होती है, मिलनसुख प्राप्त होता है। अतः उसके लिए रात्रि की भावना को बढ़ाकर प्रसादजी महारात्रि तक ले गए हैं, जो सृष्टि और प्रलय का संधिकाल है, जिसमें सारे नामरूपों का लय हो जाता है—

चेतना लहर न उठेगी जीवन समुद्र थिर होगा।
संध्या हो सर्ग प्रलय की विच्छेद मिलन फिर होगा॥

'आँसू' के उपरांत दूसरी रचना 'लहर' है, जो कई प्रकार की कविताओं का संग्रह है। 'लहर' पर एक छोटी सी कविता सबसे पहले दी गई है। इसी से समूचे संग्रह का नाम 'लहर' रखा गया। 'लहर' से कवि का अभिप्राय उस आनंद की लहर से है जो मनुष्य के मानस में उठा करती है और उसके जीवन को सरस

unacademy

करती रहती है। उसे ठहराने की पुकार अपने व्यक्तिगत नीरस जीवन को भी सरस करने के लिए कही जा सकती है और अखिल मानव जीवन को भी। यह जीवन की लहर भीतर उसी प्रकार स्मृतिचिह्न छोड़ जाती है जिस प्रकार जल की लहरें सूखी नदी की बालू के बीच पसलियों की सी उभरी रेखाएँ छोड़ जाती हैं—

उठ उठ, गिर गिर, फिर फिर आती
नर्तित पदचिह्न बना जाती;
सिकता की रेखाएँ उभार
भर जाती अपनी सरल सिहर।

इसमें भी उस प्रियतम का आँखमिचौली खेलना, दबे पाँव आना, किरन उँगलियों से आँख मूँदना (या मूँदने की कोशिश करना, क्योंकि उस ज्योतिर्मय का कुछ आभास मिल ही जाता है), प्रियतम की ओर अभिसार इत्यादि रहस्यवाद की सब सामग्री है। प्रियतम अज्ञात रहकर भी किस प्रकार प्रेम का आलंबन रहता है, यह भी दो एक जगह सूचित किया गया है, जैसे—

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ? इसमें क्या है धरा सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुंबित मेरे क्षितिज! उदार बनो॥

इसी प्रकार 'हे सागर संगम अरुण नील' में यह चित्र सामने रखा गया है कि सागर ने हिमालय से निकली नदी को कब देखा था, और नदी ने सागर को कब देखा था, पर नदी निकलकर स्वर्णस्वप्न देखती उसी की ओर चली और वह सागर भी बड़ी उमंग के साथ उससे मिला।

क्षितिज, जिसमें प्रातः सायं अनुराग की लाली दौड़ा करती है, असीम (आकाश) और ससीम (पृथ्वी) का सटेट या मिलनस्थल सा दिखाई पड़ा करता है। इस हलचल भरे संसार से हटाकर कवि अपने नाविक से वहीं ले चलने को कहता है—

ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक! धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी अंबर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेमकथा कहती हो तज कोलाहल की अवनी रे॥

वहाँ जाने पर वह इस सुख दुखमय व्यापक प्रसार को अपने नित्य और सत्य रूप में देखने की और पारमार्थिक ज्ञान की झलक पाने की भी आशा करता है; क्योंकि श्रम और विश्राम के उस संधिस्थल पर ज्ञान की दिव्य ज्योति सी जगती दिखाई पड़ा करती है—

जिस गंभीर मधुर छाया में विश्व चित्रपट चल माया में—
विभता विभु सी पड़े दिखाई दुख सुख वाली सत्य बनी रे।
श्रम विश्राम क्षितिज बेला से, जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—बिखराती हो ज्योति घनी रे॥

'लहर' में चार पाँच रचनाएँ ही रहस्यवाद की हैं। पर कवि की तंद्रा और स्वप्न वाली प्रिय भावना जगह जगह व्यक्त होती है। रात्रि के उस सन्नाटे की कामना, जिसमें बाहर भीतर की सब हलचल शांत रहती है, केवल अभावों की पूर्ति करनेवाले अतृप्त कामनाओं की तृप्ति का विधान करनेवाले स्वप्न ही जगा करते हैं, इस गीत में पूर्णतया व्यक्त है—

अपलक जगती हो एक रात!
सब सोए हों इस भूतल में;
अपनी निरीहता संबल में,
चलती हो कोई भी न बात।
वक्षस्थल में जो छिपे हुए
सोते हों हृदय अभाव लिए
उनके स्वप्नों का हो न प्रात।

जैसा कि पहले सूचित कर चुके हैं, 'लहर' में कई प्रकार की रचनाएँ हैं। कहीं तो प्रकृति के रमणीय पक्ष को लेकर सुंदर और मधुर रूपकमय गान हैं, जैसे—

लहर

बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी।
खगकुल 'कुल कुल' सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस गागरी॥

कहीं उस यौवनकाल की स्मृतियाँ हैं जिनमें मधु का आदान प्रदान चलता था, कहीं प्रेम का शुद्ध स्वरूप यह कहकर बताया गया है कि प्रेम देने की चीज है, लेने की नहीं। पर इस पुस्तक में कवि अपने मधुमय जगत से निकल जगत और जीवन के कई पक्षों की ओर भी बढ़ा है। वह अपने भीतर इतना अपरिमित अनुराग समझता है कि अपने सान्निध्य से वर्तमान जगत में उसके फैलने की आशा करता है। उषा का अनुराग (लाली) जब फैल जाता है तभी ज्योति की किरन फूटती है—

मेरा अनुराग फैलने दो, नभ के अभिनव कलरव में।
जाकर सूनेपन के तम में, बन किरण कभी आ जाना॥

कवि अपने प्रियतम से अब वह 'जीवनगीत' सुनाने को कहता है जिसमें 'करुणा का नवअभिनंदन हो'। फिर इस जगत की अज्ञानांधकारमयी अश्रुपूर्ण रात्रि के बीच ज्ञानज्योति की भिक्षा माँगता हुआ वह उससे प्रेमवेणु के स्वर में जीवनगीत सुनाने को कहता है जिसके प्रभाव से मनुष्य जाति लताओं के सामने स्नेहालिंगन में बद्ध हो जायगी और इस संतप्त पृथ्वी पर शीतल छाया हो जायगी—

unacademy

जग की सजल कालिमा रजनी में मुखचंद्र दिखा जाओ।
प्रेमवेणु की स्वरलहरी में जीवन गीत सुना जाओ॥
स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो।
जीवनघन! इस जले जगत् को वृंदावन बन जाने दो॥

जैसा कि पहले सूचित कर आए हैं, 'लहर' में प्रसादजी ने अपनी प्रगल्भ कल्पना के रंग में इतिहास के कुछ खंडों को भी देखा है। जिस वरुणा के शांत कछार में बुद्ध भगवान् ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था उसकी पुरानी झाँकी, 'अशोक की चिंता', 'शेरसिंह का शस्त्रसमर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' ये सब अतीत के भीतर कल्पना के प्रवेश के उदाहरण हैं। इस प्रकार 'लहर' में हम प्रसादजी को वर्तमान और अतीत जीवन की प्रकृत ठोस भूमि पर अपनी कल्पना ठहराने का कुछ प्रयत्न करते पाते हैं।

किसी एक विशाल भावना को रूप देने की ओर भी अंत में प्रसादजी ने ध्यान दिया, जिसका परिणाम है 'कामायनी'। इसमें उन्होंने अपने प्रिय 'आनंद' की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बनाकर की है। यह 'आनंदवाद' वल्लभाचार्य के 'काय' या आनंद के ढंग का न होकर, तांत्रिकों और योगियों की अंतर्भूमि पद्धति पर है। प्राचीन जलप्लावन के उपरांत मनु द्वारा मानवी सृष्टि के पुनःविधान का आख्यान लेकर इस प्रबंध काव्य की रचना हुई है। काव्य का आधार है मनु का पहले श्रद्धा को फिर इड़ा को पत्नी के रूप में ग्रहण करना तथा इड़ा को बंदिनी या सर्वथा अधीन बनाने का प्रयत्न करने पर देवताओं का उनपर कोप करना। 'रूपक' की भावना के अनुसार श्रद्धा विश्वाससमन्वित रागात्मिका वृत्ति है और इड़ा व्यवसायात्मिका बुद्धि। कवि ने श्रद्धा को मृदुता, प्रेम और करुणा का प्रवर्तन करनेवाली और सच्चे आनंद तक पहुँचाने वाली चित्रित किया है। इड़ा या बुद्धि अनेक प्रकार के वर्गीकरण और व्यवस्थाओं में प्रवृत्त करती हुई कर्मों में उलझाने वाली चित्रित की गई है।

कथा इस प्रकार चलती है। जलप्रलय के बाद मनु की नाव हिमवान की चोटी पर लगती है और मनु वहाँ चिंताग्रस्त बैठे हैं। मनु पिछली सृष्टि की बातें और आगे की दशा सोचते सोचते शिथिल और निराश हो जाते हैं। यह चिंता 'बुद्धि, मति या मनीषा' का ही रूप कही गई है जिससे आरंभ में ही 'बुद्धिवाद' के विरोध का किंचित् आभास मिल जाता है। धीरे धीरे आशा का स्मरणीय उदय होता है और श्रद्धा की मनु से भेंट होती है। श्रद्धा के साथ मनु शांतिपूर्वक कुछ दिन रहते हैं। पर पूर्व संस्कारवश कर्म की ओर फिर मनु की प्रवृत्ति होती है। आसुरी प्रेरणा से पशुहिंसापूर्ण काम्य यज्ञ करने लगते हैं जिससे श्रद्धा को विरक्ति होती है। वह यह देखकर दुखी होती है कि मनु अपने ही सुख की भावना में मग्न होते जा रहे

unacademy

हैं, उनके हृदय में सुख के, सब प्राणियों में, प्रसार का लक्ष्य नहीं जग रहा है जिससे मानवता का नूतन विकास होता। मनु चाहते हैं कि श्रद्धा का सारा सद्भाव, सारा प्रेम, एकमात्र उन्हीं पर स्थिर रहे, तनिक भी इधर उधर बँटने न पाए। इससे जब वह देखते हैं कि श्रद्धा पशुओं के बच्चों को प्रेम से पुचकारती है और अपनी गर्भस्थ संतति की सुखक्रीड़ा का आयोजन करती है तब उनके मन में ईर्ष्या होती है और उसे हिमालय की उसी गुफा में छोड़कर वे अपनी सुखवासना लिए हुए चल देते हैं।

मनु उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश में उतरते हैं जहाँ कभी श्रद्धा से हीन होकर सुर और असुर लड़े थे, इंद्र की विजय हुई थी। वे खिन्न होकर सोचते हैं कि क्या मैं भी उन्हीं के समान श्रद्धाहीन हो रहा हूँ। इसी बीच में अंतरिक्ष से 'काम' की अभिशापभरी वाणी सुनाई पड़ती है कि—

मनु! तुम श्रद्धा को गए भूल।
उस पूर्ण आत्म विश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल॥
तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की॥

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि।
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि॥
अनजान समस्याएँ ही गढ़ती, रचती हो अपनी ही विनष्टि।
कोलाहल कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो, बढ़े भेद।
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हों मिले अनिच्छित दुखद खेद॥

प्रभात होता है। मनु अपने सामने एक सुंदरी खड़ी पाते हैं—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
यह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल॥
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान॥
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए।
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिए॥

यह इड़ा (बुद्धि) थी? इसके साथ मनु सारस्वत प्रदेश की राजधानी में रह गए। मनु के मन में जब जगत् और उसके नियामक के संबंध में जिज्ञासा उठती है और उससे कुछ सहाय पाने का विचार आता है तब इड़ा कहती है—

हाँ! तुम ही हो अपने सहाय।
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय?
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्यभरी शोधकविहीन।

unacademy

तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन॥
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता।
तुम जड़ता को चैतन्य करो, विज्ञान सहज साधन उपाय॥

मनु वहाँ इड़ा के साथ प्रजा के शासन की पूरी व्यवस्था करते हैं। नगर की श्रीवृद्धि होती है। प्रकृति बुद्धि बल से वश में की जाती है। खेती धूमधाम से होने लगती है। अनेक प्रकार के उद्योग धंधे खड़े होते हैं। धातुओं के नए नए अस्त्र शस्त्र बनते हैं। मनु अनेक प्रकार के नियम प्रचलित करके, जनता का वर्णों या वर्गों में विभाग करके लोक का संचालन करते हैं। 'अहं' का भाव जोर पकड़ता है। वे अपने को स्वतंत्र नियामक और प्रजापति मानकर सब नियमों से परे रहना चाहते हैं। इड़ा उन्हें नियमों के पालन की सलाह देती है, पर वे नहीं मानते। इड़ा खिन्न होकर जाना चाहती है, पर मनु अपना अधिकार जताते हुए पकड़ रखते हैं। पकड़ते ही द्वार गिर पड़ता है। प्रजा जो दुर्व्यवहारों से क्षुब्ध होकर राजभवन घेरे थी, भीतर घुस पड़ती है। देवशक्तियाँ भी कुपित हो उठती हैं। शिव का तीसरा नेत्र खुल जाता है। प्रजा का रोष बढ़ता है। मनु युद्ध करते हैं और मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं।

उधर श्रद्धा इसी प्रकार के विप्लव का भयंकर स्वप्न देखकर अपने कुमार को लेकर मनु को ढूँढ़ती वहाँ पहुँचती है। मनु उसे देखकर क्षोभ और पश्चात्ताप से भर जाते हैं। फिर उन सुंदर दिनों को याद करते हैं जब श्रद्धा के मिलने से उनका जीवन सुंदर और प्रफुल्ल हो गया था; जो जगत् पीड़ा और हलचल से व्यथित था वही विश्वास से पूर्ण, शांत, उज्ज्वल और मंगलमय बन गया था। मनु उससे चटपट अपने को वहाँ से निकाल ले चलने को कहते हैं। जब रात हुई तब मनु उठकर चुपचाप वहाँ से न जाने कहाँ चल दिए। उनके चले जाने पर श्रद्धा और इड़ा की बातचीत होती है और इड़ा अपनी बाँधी हुई अधिकार व्यवस्था के इस भयंकर परिणाम को देख अपना साहस छूटने की बात कहती है—

श्रम भाग वर्ग बन गया जिन्हें।
अपने बल का है गर्व उन्हें॥
अधिकार न सीमा में रहते।
पावस निर्झर से वे बहते॥
सब विष मत्त लालसा घूँट।
मेरा साहस अब गया छूट॥

इस पर श्रद्धा बोली—

बन विषय ध्वांत
सिर चढ़ी रही पाया न हृदय, तू विकल कर रही है अभिनय।
सुख दुख की मधुमय धूप छाँह, तूने छोड़ी यह सरल राह।
चेतनता का भौतिक विभाग—कर, जग को बाँट दिया विराग।

थिति का स्वरूप यह नित्य जगत्, यह रूप बदलता है शत शत।
कण विरह मिलन मय नृत्य निरत, उल्लासपूर्ण आनंद सतत॥

अंत में श्रद्धा अपने कुमार को इड़ा के हाथों में सौंप मनु को ढूँढ़ने निकली और उन्हें उसने सरस्वती तट पर एक गुफा में पाया। मनु उस समय आँखें बंद किए चित् शक्ति का अंतर्नाद सुन रहे थे, ज्योतिर्मय पुरुष का आभास पा रहे थे, अखिल विश्व के बीच नटराज का नृत्य देख रहे थे। श्रद्धा को देखते ही वे हतचेत पुकार उठे कि 'श्रद्धे! उन चरणों तक ले चल।' श्रद्धा आगे आगे और मनु पीछे पीछे हिमालय पर चढ़ते चले जाते हैं। यहाँ तक कि वे ऐसे महादेश में अपने को पाते हैं जहाँ वे निराधार ठहरे जान पड़ते हैं। भूमंडल की रेखा का कहीं पता नहीं। यहाँ अब कवि पूरे रहस्यदर्शी का बाना धारण करता है और मन के भीतर एक नई चेतना (इस चेतना से भिन्न) का उदय बतलाता है। अब मनु को त्रिदिक् (थ्रीडाइमेंशस) विश्व और त्रिभुवन के प्रतिनिधि अलग अलग तीन आलोकबिंदु दिखाई पड़ते हैं जो 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'क्रिया' के केंद्र से हैं। श्रद्धा एक एक का रहस्य समझाती है।

पहले 'इच्छा' का मधु, मादकता और अँगड़ाई वाला माया राज्य है जो रागारुण उषा के कंदुक सा सुंदर है और जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की पारदर्शिनी पुतलियाँ रंग बिरंगी तितलियों के समान नाच रही हैं। यहाँ चलचित्रों की संसृतिछाया चारों ओर घूम रही है और आलोक बिंदु को घेरकर बैठी हुई माया मुस्करा रही है। यहाँ थिर वसंत का उद्गम भी है और एक ओर पतझड़ भी अर्थात् सुख और दुःख एक सूत्र में बँधे हैं। यहीं पर मनोमय विश्व रागारुण चेतना की उपासना कर रहा है।

फिर 'कर्म' का श्यामल लोक सामने आता है जो धुएँ सा धुँधला है, जहाँ क्षण भर विश्राम नहीं है, और संघर्ष और विफलता का कोलाहल रहता है, आकांक्षा की तीव्र पिपासा बनी रहती है, भाव राष्ट्र के नियम दंड बने हुए हैं, सारा समाज मतवाला हो रहा है।

सबके पीछे 'ज्ञानक्षेत्र' आता है जहाँ सदा बुद्धिचक्र चलता रहता है, सुख दुःख से उदासीनता रहती है। यहाँ के निरंकुश अणु तर्कयुक्ति से अस्ति नास्ति का भेद करते रहते हैं और निस्संग होकर भी मोक्ष से संबंध जोड़े रहते हैं। यहाँ केवल प्राप्य (मोक्ष या छुटकारा भर) मिलता है, तृप्ति (आनंद) नहीं, जीवनरस अछूता छोड़ा रहता है जिससे बहुत सा इकट्ठा होकर एक साथ मिले। इससे तृषा ही तृषा दिखाई देती है।

अंत में इन तीनों ज्योतिर्मय बिंदुओं को दिखाकर श्रद्धा कहती है कि यही त्रिपुर है जिसमें इच्छा, कर्म और ज्ञान एक दूसरे से अलग अलग अपने केंद्र आप ही बने हुए हैं। इनका परस्पर न मिलना ही जीवन की असली विडंबना है। ज्ञान

unacademy

अलग पड़ा है, कर्म अलग। अतः इच्छा पूरी कैसे हो सकती है? यह कहकर श्रद्धा मुस्कराती है जिससे ज्योति की एक रेखा तीनों में दौड़ जाती है और चट तीनों एक में मिलकर प्रज्वलित हो उठते हैं और सारे विश्व में शृंग और डमरू का निनाद फैल जाता है। उस अनाहत नाद में मनु लीन हो जाते हैं।

इस रहस्य को पार करने पर फिर आनंदभूमि दिखाई गई है। यहाँ इड़ा भी कुमार (मानव) को लिए अंत में पहुँचती है और देखती है कि पुरुष पुरातन प्रकृति से मिला हुआ अपनी ही शक्ति से लहरें मारता हुआ आनंदसागर सा उमड़ रहा है। यह सब देख इड़ा श्रद्धा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई कहती है कि 'मैं अब समझ गई कि मुझमें कुछ भी समझ नहीं थी। व्यर्थ लोगों को भुलाया करती थी; यही मेरा काम था।' फिर मनु कैलास की ओर दिखाकर उस आनंदलोक का वर्णन करते हैं जहाँ पापताप कुछ भी नहीं है; सब समरस है और 'अभेद में भेद' वाले प्रसिद्ध सिद्धांत का कथन करके कहते हैं—

अपने दुख सुख से पुलकित यह मूर्त विश्व सचराचर।
चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत चिर सुंदर॥

अंत में प्रसादजी वहीं प्रकृति से सारे सुख, भोग, कांति, दीप्ति की सामग्री जुटाकर लीन हो जाते हैं—वे ही वल्लरियाँ, पराग, मधु, मकरंद, अप्सराएँ बनी हुई रश्मियाँ।

यह काव्य बड़ी विशद कल्पनाओं और मार्मिक उक्तियों से पूर्ण है। इसका विचारात्मक आधार या अर्थभूमि केवल इतनी ही है कि श्रद्धा या विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति ही मनुष्य को इस जीवन में शांतिमय आनंद का अनुभव और चारों ओर प्रसार करती हुई कल्याणमार्ग पर ले चलती है और निर्विशेष आनंदधाम तक पहुँचाती है। इड़ा या बुद्धि मनुष्य को सदा चंचल रखती है, अनेक प्रकार के तर्क वितर्क और निर्मम कर्मजाल में फँसाए रहती है और तृप्ति या संतोष के आनंद से दूर रखती है। अंत में पहुँचकर कवि ने इच्छा, कर्म और ज्ञान के सामंजस्य पर, तीनों के मेल पर जोर दिया है। एक दूसरे से अलग रहने पर ही जीवन में विषमता आती है।

जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अंत में सामने रखा है उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रवृत्ति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है। पहले कवि ने कर्म को बुद्धि या ज्ञान की प्रवृत्ति के रूप में दिखाया, फिर अंत में कर्म और ज्ञान के बिंदुओं को अलग अलग रखा। पीछे आया हुआ ज्ञान भी बुद्धि व्यवसायात्मक ज्ञान ही है (योगियों या रहस्यवादियों का परज्ञान नहीं) यह बात 'सदा चलता है बुद्धिचक्र' से स्पष्ट है। जहाँ 'रागारुण कंदुक सा भावमयी प्रतिभा का मंदिर' इच्छाबिंदु मिलता है वहाँ इच्छा रागात्मिका वृत्ति के अंतर्गत है; अतः रतिकाम से उत्पन्न श्रद्धा की ही प्रवृत्ति ठहरती है। पर श्रद्धा उससे अलग क्या तीनों बिंदुओं से परे रखी गई है।

रहस्यवाद की परंपरा में चेतना से असंतोष की रूढ़ि चली आ रही है। प्रसादजी

काव्य के आरंभ में ही 'चिंता' के अंतर्गत कहते हैं—

मनु का मन था विकल हो उठा संवेदन से खाकर चोट।
संवेदन! जीवन जगती को जो कटुता से देता घोंट॥
संवेदन का और हृदय का यह संघर्ष न हो सकता।
फिर अभाव असफलताओं की गाथा कौन कहाँ बकता॥

इन पंक्तियों में तो 'संवेदन' बोध वृत्ति के अर्थ में व्यवहृत जान पड़ता है, क्योंकि सुख दुखात्मक अनुभूति के अर्थ में लें तो हृदय के साथ उसका संघर्ष कैसा? बोध के एकदेशीय अर्थ में भी यदि हम 'संवेदन' को लें तो भी उसे भावभूमि से खारिज नहीं कर सकते। प्रत्येक 'भाव' का प्रथम अवयव विषयबोध ही होता है। स्वप्नदशा में भी, जिसका रहस्य क्षेत्र में बड़ा माहात्म्य है यह विषयबोध रहता है। श्रद्धा जिस करुणा, दया आदि की प्रवर्तिका कही गई है, उसमें दूसरों की पीड़ा का बोध मिला रहता है।

आगे चलकर यह 'संवेदन' शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुःख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मनु की बिगड़ी हुई प्रजा उनसे कहती है—

हम संवेदनशील हो चले, यही मिला सुख।
कष्ट समझने लगे बनाकर निज कृत्रिम दुख॥

मतलब यह कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दुःख का अनुभव करना ही संवेदन है। दुःख को पास न फटकने देना, अपनी मौज में—मधुमकरंद में—मस्त रहना ही वांछनीय स्थिति है। असंतोष से उत्पन्न अवास्तविक कष्टकल्पना के दुःखानुभव के अर्थ में ही इस शब्द को जकड़ रखना भी व्यर्थ प्रयास कहा जाएगा। श्रद्धा जिस करुणा दया आदि की प्रवर्तिका कही गई है, वह दूसरों की पीड़ा का संवेदन ही तो है। दूसरों के दुःख का अपना दुःख हो जाना ही तो करुणा है। परदुःखानुभव अपनी ही सत्ता का प्रसार तो सूचित करता है। चाहे जिस अर्थ में लें, संवेदन का तिरस्कार कोई अर्थ नहीं रखता।

संवेदन, चेतना, जागरण आदि के परिहार का जो बीच बीच में अभिलाष है उसे रहस्यवाद का तकाजा समझना चाहिए। ग्रंथ के अंत में जो हृदय, बुद्धि और कर्म के मेल या सामंजस्य का पक्ष रखा गया है, वह बहुत समीचीन है। उसे हम गोस्वामी तुलसीदास में, उनके भक्तिमार्ग की सबसे बड़ी विशेषता के रूप में दिखा चुके हैं। अपने कई निबंधों में हम जगत् की वर्तमान अशांति और अव्यवस्था का कारण इसी सामंजस्य का अभाव कह चुके हैं। पर इस सामंजस्य का स्वर हम 'कामायनी' में और कहीं नहीं पाते हैं। श्रद्धा जब कुमार को लेकर प्रजाविद्रोह के उपरांत सारस्वत नगर में पहुँचती है तब 'इड़ा' से कहती है कि 'सिर चढ़ी रही पाया न हृदय'। क्या श्रद्धा के संबंध में नहीं कहा जा सकता था कि 'रस पगी रही पाई न बुद्धि?' जब दोनों अलग अलग सत्ताएँ करके रखी गई हैं तब एक

को दूसरी से शून्य कहना, और दूसरी को पहली से शून्य कहना, गड़बड़ में डालता है। पर श्रद्धा में किसी प्रकार की कमी की भावना कवि की एकांतिक मधुर भावना के अनुकूल न थी।

बुद्धि की विगर्हणा द्वारा 'बुद्धिवाद' के विरुद्ध उस आधुनिक आंदोलन का आभास भी कवि का इष्ट जान पड़ता है जिसके प्रवर्तक अनातोले फ्रांस ने कहा है कि 'बुद्धि के द्वारा सत्य को छोड़कर और सब कुछ सिद्ध हो सकता है। बुद्धि पर मनुष्य को विश्वास नहीं होता। बुद्धि या तर्क का सहारा तो लोग अपनी भली बुरी प्रवृत्तियों को ठीक प्रमाणित करने के लिए लेते हैं।'

विज्ञान द्वारा सुखसाधनों की वृद्धि के साथ साथ विलासिता और लोभ की असीम वृद्धि तथा यंत्रों के परिचालन से जनता के बीच फैली हुई घोर अशक्तता, दरिद्रता आदि के कारण वर्तमान जगत् की जो विषम स्थिति हो रही है उसका भी थोड़ा सा आभास मनु की विद्रोही प्रजा के इन वचनों द्वारा दिया गया है—

प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी॥

वर्गहीन समाज की साम्यवादी पुकार की भी दबी सी गूँज दो तीन जगह है। 'विद्युत् कण (इलेक्ट्रांस) मिले झलकते से' में विज्ञान की भी झलक है।

यदि मधुचर्या का अतिरेक और रहस्य की प्रवृत्ति बाधक न होती तो इस काव्य के भीतर मानवता की योजना शायद अधिक पूर्ण और सुव्यवस्थित रूप में चित्रित होती। कर्म को कवि ने या तो काम्ययज्ञों के बीच दिखाया है अथवा उद्योगधंधों या शासनविधानों के बीच। श्रद्धा के मंगलमय योग से किस प्रकार कर्म धर्म का रूप धारण करता है, यह भावना कवि से दूर ही रही। इस भव्य और विशाल भावना के भीतर उग्र और प्रचंड भाव भी लोक के मंगल विधान के अंग हो जाते हैं। श्रद्धा और धर्म का संबंध अत्यंत प्राचीनकाल से प्रतिष्ठित है। महाभारत में श्रद्धा धर्म की पत्नी कही गई है। हृदय के आधे पक्ष को अलग रखने से केवल कोमल भावों की शीतलछाया के भीतर आनंद का स्वप्न देखा जा सकता है, व्यक्त जगत् के बीच उसका आविर्भाव और अवस्थान नहीं दिखाया जा सकता।

यदि हम इस विशद काव्य की अंतर्योजना पर न ध्यान दें, समष्टि रूप में कोई समन्वित प्रभाव न ढूँढ़ें, श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा इत्यादि को अलग अलग लें तो हमारे सामने बड़ी रमणीय चित्रमयी कल्पना, अभिव्यंजना की अत्यंत मनोरम पद्धति आती है। इन वृत्तियों की आभ्यंतर प्रेरणाओं और बाह्य प्रवृत्तियों को बड़ी मार्मिकता से परखकर इनके स्वरूपों की नराकार उद्भावना की गई है। स्थान स्थान पर प्रकृति की मधुर, भव्य और आकर्षक विभूतियों की योजना का तो कहना ही क्या है। प्रकृति के ध्वंसकारी भीषण रूपवेग का भी अत्यंत व्यापक परिधि के बीच चित्रण हुआ है। इस प्रकार प्रसादजी प्रबंध क्षेत्र में भी छायावाद की चित्रविधान

unacademy

छायावादी कवि

हिन्दी साहित्य का इतिहास(नगेन्द्र)

unacademy

छायावादी कवि

जयशंकर प्रसाद : कविवर जयशंकर प्रसाद (१८९०-१९३७) का जन्म काशी के एक सम्पन्न घराने में हुआ था, जो 'सुंघनी साहु' नाम से प्रसिद्ध था। इन्होंने आठवीं कक्षा तक शिक्षा पाने के बाद घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंगरेजी लिखीं, किन्तु बाद में खड़ीबोली में कविता करने लगे। इनकी काव्य-कृतियों में भाषा, छन्द, भाव आदि की दृष्टि से अनेकरूपता दिखायी देती है। कवि होने के साथ-साथ ये गम्भीर चिन्तक भी थे—'कामायनी' में इन्होंने यन्त्र और तर्क पर आधारित समाज के चित्रण के साथ-साथ शैव दर्शन की अभिव्यक्ति भी की है। इस प्रकार आधुनिक होते हुए भी प्रसाद सहज ही प्राचीन गरिमाशाली परम्परा से जुड़ जाते हैं। इनकी काव्य रचनाएं हैं : 'उर्वशी' (१९०९), 'वनमिलन' (१९०९), 'प्रेमराज्य' (१९०९), 'अयोध्या का उद्धार' (१९१०), 'शोकोच्छ्वास' (१९१०), 'वभ्रुवाहन' (१९११), 'कानन कुसुम' (१९१३), 'प्रेम पथिक' (१९१३), 'करुणालय' (१९१३), 'महाराणा का महत्त्व' (१९१४), 'झरना' (१९१८), 'आंसू' (१९२५), 'लहर' (१९३३) और 'कामायनी' (१९३५)। 'प्रेम पथिक' की रचना पहले ब्रजभाषा में की गयी थी, किन्तु बाद में उसे खड़ी बोली में रूपान्तरित कर दिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि 'कानन कुसुम' और 'झरना' के परवर्ती संस्करणों में कवि ने कुछ नयी कविताओं का समावेश किया तथा 'आंसू' में चौसठ छन्द और जोड़ दिये। स्पष्ट है कि 'झरना' के पूर्व की सभी रचनाएं द्विवेदी-युग के अन्तर्गत लिखी गयी थीं। प्रसाद जी की आरम्भिक शैली बहुत-कुछ अयोध्यासिंह उपाध्याय की संस्कृतगर्भित शैली से मिलती-जुलती है, जो स्थूल और बहिर्मुखी है। छायावादी प्रवृत्तियों के दर्शन सबसे पहले 'झरना' में होते हैं। इनकी अनेक कविताओं में कवि ने अन्तर्मुखी कल्पना द्वारा सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया है। बाह्य सौन्दर्य का चित्रण करते हुए भी उन्होंने उसके सूक्ष्म और मानसिक पक्ष को व्यक्त करने की ओर ध्यान दिया है। 'आंसू' का आरम्भ कवि की विरह-वेदना की अभिव्यक्ति से हुआ है :

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती?

इसके अन्त में यह छन्द दिया गया है :

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में

बरसों प्रभात हिमकन-सा
आंसू इस विश्व-सदन में।

इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि ने आरम्भिक व्यक्तिगत वेदना को भूलकर अन्त में 'आंसू' को विश्व-कल्याण की भावना के साथ सम्बद्ध कर दिया है। जिस प्रकार राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवियों में स्वार्थ का निषेध कर समाज (भारतीय समाज) के कल्याण के भाव की प्रतिष्ठा दिखायी देती है, उसी प्रकार छायावादी कवि भी व्यक्तिगत वेदना से ऊपर उठकर करुणा या विश्व-कल्याण की भावना की अभिव्यक्ति करने लगते हैं। 'आंसू' काव्य की आत्मिक और अन्तिम मनोभूमि में इतना व्यवधान दिखायी देता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-जैसे मेधावी आलोचक ने उस पर आक्षेप करते हुए कहा है, "कहने का तात्पर्य यह है कि वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता।[१] किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि 'आंसू' एक स्मृति-काव्य है—कवि ने अतीत जीवन की अनुभूतियों को स्मृति के माध्यम से दर्द-भरी अभिव्यक्ति दी है। यही कारण है कि 'आंसू' की भावभूमि स्थायी नहीं, विकासशील है। उसमें कवि का अतीत (जो स्मृति-पथ पर आता है) ही नहीं, उसका वर्तमान भी संयुक्त है। इसलिए अन्त तक आते-आते कवि अपने व्यक्ति-जीवन के नैराश्य और अवसाद से ऊपर उठकर अपनी वेदना को करुणा के रूप में, विश्व-प्रेम के रूप में रूपान्तरित कर देता है। इसका कारण स्पष्ट है—छायावादी काव्य निराशावादी काव्य नहीं है, वह मानव-समाज के लिए कल्याण की कामना से अलंकृत है। इसलिए छायावादी कवियों की व्यक्तिगत निराशा ही करुणा और विश्व-प्रेम का रूप ग्रहण कर लेती है, जहां पहुंचकर कवि सारे संसार की वेदना को खुद स्वीकार करके विश्व-जीवन को सुखमय बनाना चाहता है। इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'आंसू' में प्रसाद की अनुभूति व्यक्तिगत निराशा के गर्त्त से निकलकर विश्व-वेदना के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए आकुल हो उठती है।

'लहर' में प्रसाद की गीत-कला का उत्कृष्ट रूप दिखायी देता है। इन गीतों में कहीं तो प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन है और कहीं प्रणय की तीव्र अनुभूति का, कहीं करुणा की अभिव्यक्ति है तो कहीं रहस्यवादी संकेत दिखायी देते हैं। 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' में कवि ने मुक्त छन्द में ऐतिहासिक प्रसंगों की शक्तिशाली और मार्मिक अवतारणा की है। कल्पना की मनोरमता, भावुकता और भाषा शैली में प्रौढ़ता को इसकी रचनाओं में सर्वत्र देखा जा सकता है।

'कामायनी' प्रसाद की अन्तिम कृति है। इसके कथानक का आधार वह प्राचीन आख्यान है जिसके अनुसार मनु के अतिरिक्त सम्पूर्ण देव-जाति प्रलय का शिकार हो जाती है और मनु तथा श्रद्धा या कामायनी के संयोग से मानव-सभ्यता का प्रवर्तन होता है। इसका कथानक बहुत संक्षिप्त है, लेकिन कवि ने इसमें जीवन के अनेक पक्षों को समन्वित करके मानव-जीवन के लिए एक व्यापक आदर्श व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया है। 'कामायनी' के एक सन्दर्भ का सम्बन्ध मनु और श्रद्धा के व्यक्तिगत जीवन और प्रणय के साथ है। इड़ा के चरित्र का एक अंश भी इस प्रसंग से सम्बद्ध है। प्रसाद ने इन प्रमुख पात्रों के चरित्रांकन में मनुष्य की अनुभूतियों, कामनाओं और आकांक्षाओं की अनेकरूपता का वर्णन किया है। यह 'कामायनी' की चेतना का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। कवि ने मनु

आदि के माध्यम से मानव-मात्र के मनोजगत् के विविध पक्षों का चित्रण 'चिन्ता', 'आशा', 'वासना', 'ईर्ष्या', 'संघर्ष', 'आनन्द' आदि सर्गों में किया है।

'कामायनी' केवल मनु आदि के व्यक्ति-जीवन की ऐतिहासिक कथा ही नहीं है, इन पात्रों की सांकेतिक व्यंजनाएं भी उसमें हैं; जिन्हें स्वयं कवि ने 'कामायनी' की भूमिका में स्वीकार किया है : "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।" कवि की इस उक्ति के आधार पर 'कामायनी' में रूपक-तत्त्व के विशद विवेचन का प्रयास भी किया जाता है। किन्तु, ध्यान देने की बात यह है कि प्रसाद ने 'रूपक' शब्द का प्रयोग 'इतिहास' के सन्दर्भ में किया है, 'कामायनी' के सन्दर्भ में नहीं। 'कामायनी' के सन्दर्भ में तो कवि ने मनु आदि पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को ही प्रधान माना है—'हां, उनके सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में उन्हें 'कोई आपत्ति नहीं' है। इस दृष्टि से 'कामायनी' की समग्रता में ही समासोक्ति का विधान लक्षित होता है।

'कामायनी' में बुद्धिवाद के विरोध में हृदय-तत्त्व की प्रतिष्ठा करते हुए कवि ने शैव दर्शन के आनन्दवाद को जीवन के पूर्ण उत्कर्ष का साधन माना है। जहां उन्होंने काम को 'मंगल से मंडित श्रेय' माना है, वहां श्रद्धा की प्रेरणा से मनु को कामना के बन्धनों से ऊपर उठकर सामरस्य के आनन्द की उपलब्धि में तत्पर दिखाया है। इसी क्रम में कवि ने सारस्वत प्रदेश की यन्त्राश्रित सभ्यता के वर्णन में अपनी समकालीन सामाजिक व्यवस्था की विषमता का चित्रण भी किया है। इस प्रकार 'कामायनी' को

उपलब्धि में तत्पर दिखाया है। इसी क्रम में कवि ने सारस्वत प्रदेश की यन्त्राश्रित सभ्यता के वर्णन में अपनी समकालीन सामाजिक व्यवस्था की विषमता का चित्रण भी किया है। इस प्रकार 'कामायनी' को उन्होंने अपने परिवेश से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु इस सन्दर्भ को लेकर इस कृति की आलोचना भी की गयी है। अनेक विद्वानों का कहना है कि लोकमंगल की भावना को मुखरित करते हुए भी 'कामायनी' की चेतना मूलतः व्यक्तिवादी-अध्यात्मवादी चेतना है, जो अपने युग के यथार्थ की समस्याओं का यथार्थ के धरातल पर समाधान करने में असमर्थ रही है। वास्तव में किसी भी काव्य को सभी दृष्टियों से पूर्ण और आदर्श काव्य न तो माना गया है और न ही सम्भवतः माना जा सकेगा क्योंकि व्यक्ति और समाज के स्तर पर जीवन के विकास की सम्भावनाएं असंख्य एवं असीम हैं। इसलिए 'कामायनी' अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी-साहित्य की एक गौरवशाली उपलब्धि है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : निराला जी (१८९७-१९६२) का जीवन अनेक अभावों एवं विपत्तियों से पीड़ित रहा, किन्तु इन्होंने किसी विपत्ति के सामने झुकना नहीं सीखा। अभावों की तीव्र एवं मर्मान्तक व्यथा को झेलते हुए ये भी साधना में तल्लीन रहे। मगर कब तक कोई इस तरह जी सकता है? निराला का मन और बुद्धि तो संघर्षों की उपेक्षा करते हुए अविचलित रहे, किन्तु उनकी चेतना के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था, घुल रहा था। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष जहां उनकी चेतना के अथक-अविचल संघर्ष की कहानी कहते हैं, वहां उनके जीवन की विपत्तियों और व्यथाओं की दुर्निवार शक्ति को भी व्यंजित करते हैं। सन् १९१६ से १९५८ तक निराला निरन्तर काव्य-साधना में तल्लीन रहे। उनकी छायावादयुगीन रचनाएं हैं—'अनामिका' (१९२३), 'परिमल' (१९३०), 'गीतिका' (१९३६), 'तुलसीदास' (१९३८)। कुछ अर्से तक निराला ने 'मतवाला' और 'समन्वय' का सम्पादन भी किया।

unacademy

निराला को केवल व्यक्ति के रूप में ही परिस्थितियों का तीव्र विरोध नहीं सहना पड़ा, वरन् कवि के रूप में भी उनका प्रबल विरोध हुआ। इसका प्रधान कारण तो उनकी मौलिकता है जो कवि के दीप्त अहंकार की सांहित्यिक अभिव्यक्ति है। सन् १९१६ में 'जूही की कली' का प्रकाशन उस युग के साहित्यचेताओं के लिए एक चुनौती बनकर सामने आया। उसमें व्यक्त प्रणय-केलि के चित्र और मुक्त छन्द का शक्तिशाली शिल्प—दोनों ही तत्कालीन मान्यताओं से मेल नहीं खाते थे। किन्तु निराला अपनी धुन के पक्के और फक्कड़ स्वभाव के व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने सबकी उपेक्षा की। उनके काव्य में आरम्भ से ही विविधता के दर्शन होते हैं। यह विविधता भाषागत भी है और भावगत भी, विचारगत भी है और शिल्पगत भी। उदाहरणार्थ, 'परिमल' में गीत भी हैं और मुक्त छन्द भी, मधुर भावों से अनुप्राणित प्रणयगीत भी हैं और ओजपूर्ण रचनाएं भी। उसमें 'अधिवास' और 'पंचवटी-प्रसंग' जैसी दर्शनप्रधान रचनाएं भी हैं और 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' जैसी कविताएं भी, जिनमें यथार्थ का तीव्र देश दिखायी देता है। निराला की एक ही समय की रचनाओं में दिखायी देनेवाली यह अनेकरूपता सम्भवत: उनके अध्ययन के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संकेत है। अन्य कवियों की, जैसे पन्त की, अनेकरूपता काल में विस्तृत साधना की विशेषता है—जैसे-जैसे युग बदलता है, कवि यथार्थ के नये स्तरों और आयामों के प्रति सजग होता चलता है। किन्तु निराला अद्वैत दर्शन से भिखारी के जीवन तक फैले युग-सत्य के विविध स्तरों और आयामों को मानो एकसाथ ही अपनी साधना में समेट लेना चाहते हैं। यह सूक्ष्म गवेषणा का विषय है कि उनके जीवन में जो बिखराव आया, उसे चेतना और शिल्प के उनके आरम्भिक बिखराव (या विस्तार) से कहां तक सम्बद्ध किया जा सकता है ?

निराला की रचनाओं पर दर्शन का प्रत्यक्ष और गम्भीर प्रभाव है। 'अधिवास', 'पंचवटी-प्रसंग', 'तुम और मैं' आदि रचनाओं में कवि ने दार्शनिक सत्य को रूपायित करने का प्रयास किया है। 'परिमल' और 'गीतिका' में प्रार्थना और वन्दना के गीत भी मिलते हैं, जो मध्यकालीन भक्ति-परम्परा से जोड़े जा सकते हैं। आध्यात्मिकता के प्रति निष्ठा होने के कारण कवि में कहीं-कहीं रहस्यवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। यह आध्यात्मिकता सहज ही कवि की सांस्कृतिक चेतना से समन्वित हो जाती है। निराला में भी पुनर्जागरण के प्रभाव के फलस्वरूप प्राचीन भारतीय परम्परा के प्रति निष्ठा का भाव है और वे भी भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों के सन्धान का प्रयास करते हैं जो वर्तमान जीवन की प्रेरणा दे सकें।

'तुलसीदास' में कवि ने गोस्वामी तुलसीदास के माध्यम से भारतीय परम्परा के गौरवशाली मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। इस खण्डकाव्य में उन्होंने लोक में प्रचलित उस कथा को आधार बनाया है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जब तुलसीदास बिना बुलाये अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने के लिए उसके नैहर पहुंचे तब उसने उन्हें फटकारा, जिसका प्रभाव यह हुआ कि तुलसीदास गृहस्थ जीवन को त्यागकर रामोपासना में लीन हो गये। काव्य के आरम्भ में कवि ने मध्यकालीन भारत की पतित अवस्था का चित्रण किया है, जिसका कारण है भारत पर विदेशी शासन की स्थापना ! इस सन्दर्भ में निराला ने जीवन के सभी पक्षों के विघटन और ह्रास का शक्तिशाली चित्रण किया है। इस भूमिका के द्वारा उन्होंने नायक के सामाजिक परिवेश को अंकित किया है, किन्तु अभी तक तुलसीदास इस विषमता के प्रति सजग नहीं हैं। फिर वे अपने मित्रों के साथ घूमने के लिए चित्रकूट जाते हैं। वहां प्रकृति की निर्मल और सात्त्विक शोभा से उनका हृदय आन्दोलित हो उठता है।

unacademy

उधर रत्नावली के रूप का सम्मोहन तुलसीदास की चेतना को ग्रस लेता है। जब वे बिना बुलाये पत्नी से मिलने उसके नैहर पहुंच जाते हैं, तो रत्नावली की कटूक्तियों से उनकी चेतना मुक्त होती है और ऊर्ध्व की ओर संचरण करने लगती है। इस प्रकार कवि ने व्यक्तिगत सुख और जीवन के महान एवं व्यापक मूल्यों के बीच संघर्ष दिखलाकर अन्त में उदात्त मूल्यों की विजय दिखायी है।

निराला युगीन यथार्थ के प्रति भी अत्यन्त सजग थे। कुछ तो उनके निजी जीवन की पीड़ा ने और कुछ उनकी प्रखर-मुक्त प्रतिभा ने उन्हें यथार्थ के विषम एवं निम्नतर पक्षों की ओर भी आकृष्ट किया। यह आकर्षण कहीं तो करुणा के रूप में व्यक्त हुआ है और कहीं व्यंग्य और उपहास के रूप में।

'राम की शक्तिपूजा' निराला की ही नहीं, सम्पूर्ण छायावादी काव्य की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। इसमें कवि ने एक ऐतिहासिक प्रसंग के द्वारा धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है। राम धर्म के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का। इस कविता में अधर्म का चित्रण एक प्रचण्ड शक्ति के रूप में हुआ है, जिसके सामने एक बार तो राम का साहस भी कुण्ठित होने लगता है। यह स्थिति एक ओर तो कवि के व्यक्तिगत जीवन के भयानक संघर्ष से सम्बद्ध हो जाती है और दूसरी ओर युगीन यथार्थ की विकरालता को भी व्यंजित करती है। अन्त में राम शक्ति की 'मौलिक कल्पना' करते हैं, उसकी आराधना करते हैं और अधर्म के विनाश के लिए सक्षम होते हैं। शक्ति की उपासना में एक ओर तो परम्परागत सत्य की स्वीकृति का संकेत निहित है और दूसरी ओर 'मौलिक कल्पना' इस बात पर बल देती है कि प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों का युगानुरूप संशोधन अनिवार्य है। इस कविता में विविध भावों और भाषा के विविध रूपों के दर्शन होते हैं, जो कवि की शक्ति के विविध पक्षों की अन्विति का परिणाम है।

निराला की अधिकांश रचनाओं की भाषा संस्कृतगर्भित है और उसमें समास की अधिकता है। पदों के प्रयोग में कवि ने गेयता का विशेष ध्यान रखा है, कहीं तो गेयता का गुण ही इतना प्रधान हो गया है कि अर्थ की संगति नहीं बैठ पाती। लेकिन प्राय: कवि ने समस्त पदावली के प्रयोग द्वारा उपयुक्त लय और अर्थ-गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति की है। 'राम की शक्तिपूजा' में राम-रावण युद्ध का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह, भेद-कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह, क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरित वह्नि—राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान।

कवि की भाषा-शैली का दूसरा रूप अत्यन्त सरल और छोटे पदों के कुशल व्यवहार के रूप में दिखायी देता है। 'अनामिका' में संगृहीत रचना 'सच है' की ये पंक्तियां देखिए :

यह सच है!
बार बार हार हार मैं गया,
खोजा जो हार क्षार में नया,
उड़ी धूल, तन सारा भर गया,
नहीं फूल, जीवन अविकच है—
यह सच है!

unacademy

'राम की शक्तिपूजा' की रचना सन् १९३६ में हुई थी और 'सच है' की रचना १९३५ में। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाषा के विविध रूपों पर निराला को कैसा पूर्ण अधिकार प्राप्त था!

सुमित्रानन्दन पन्त : कविवर पन्त (१९००-१९७७) का जन्म उत्तरप्रदेश के ज़िला अल्मोड़ा के कौसानी ग्राम में हुआ था। जन्म के कुछ घण्टे बाद ही मातृस्नेह से वंचित हो जाने के कारण अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने इन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया और प्रकृति के उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्व पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। पन्त में यथार्थ के विषम और दारुण रूप के अभाव का कारण भी कुछ सीमा तक प्रकृति के उस प्रभाव को माना जा सकता है। इनके मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि ये जीवन की नैसर्गिक व्यापकता और अनेकरूपता में पूर्ण रूप से आसक्त न हो सके :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?
छोड़ अभी से इस जग को।

इन पंक्तियों में सामान्य रूप से तो यह प्रतीत होता है कि कवि रमणी के सौन्दर्य की अपेक्षा प्रकृति के सौन्दर्य को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है, लेकिन रमणी के सौन्दर्य की यह उपेक्षा क्या जीवन की उपेक्षा के भाव को व्यंजित नहीं करती? यह तो सच है कि बाद की रचनाओं में कवि ने प्रणय के महत्त्व को स्वीकार किया है, किन्तु उपर्युक्त पंक्तियों में रमणी-सौन्दर्य के निषेध को प्रतीकात्मक अर्थ में—जीवन-सौन्दर्य की उपेक्षा के अर्थ में—भी ग्रहण किया जा सकता है।

पन्त जी की पहली कविता 'गिरजे का घण्टा' सन् १९१६ की रचना है। तब से वे निरन्तर काव्य-साधना में तल्लीन हैं। उनके आरम्भिक काव्य-ग्रन्थ हैं—'उच्छ्वास' (१९२०), 'ग्रन्थि' (१९२०) 'वीणा' (१९२७), 'पल्लव' (१९२८) और 'गुंजन' (१९३२)। 'वीणा' की रचनाएं सन् १९१८-१९१९ की लिखी हुई हैं। 'गुंजन' को उनका अन्तिम छायावादी काव्य-संग्रह कहा जा सकता है। इसके बाद के कविता-संकलन पहले प्रगतिवाद चेतना से और फिर अरविन्द-दर्शन से प्रभावित हैं।

पन्त-काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है। 'आंसू की बालिका', 'पर्वत-प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य का वैभव दिखायी देता है। किन्तु 'बादल' और 'छाया' जैसी कविताओं में केवल एक अद्भुत या विलक्षण कल्पना के ही दर्शन होते हैं जिससे चमत्कार की अनुभूति तो होती है, किसी गम्भीर भाव की नहीं। छाया को दमयन्ती के समान या 'रतिश्रान्ता व्रजयनिता' के समान चित्रित करने में कवि किसी गम्भीर अनुभूति से प्रेरित नहीं प्रतीत होता। दूसरी ओर कवि पन्त आदर्श-प्रेमी रहे हैं। उनकी अनेक कविताओं में प्रकृति-प्रेम और आदर्शवादिता सम्बद्ध रूप में मुखरित है। 'वीणा' से कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

कुमुद कला बन कल हासिनी।
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,

unacademy

तेरी आभा को पाकर मां!
जग का तिमिर त्रास हर दूं—
नीरव रजनी में निर्भय।

यहां कवि ने प्रकृति से चांदनी की आभा को पाकर जग के 'तिमिर त्रास' को दूर करने की आकांक्षा व्यक्त की है। कवि की यह आदर्शवादी भावना निरन्तर प्रबल होती गयी है। यह आदर्शवादी भावना ही 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में 'सर्ववाद' का रूप ग्रहण करती हुई अन्त में अरविन्द-दर्शन की ओर उन्मुख हो गयी। कवि 'तिमिर त्रास' को दूर तो करना चाहता है, किन्तु प्रकृति-प्रेम को—जो एक तरह से ठोस यथार्थ जीवन के प्रति आसक्ति की सीमा बन जाता है—त्यागना भी नहीं चाहता। 'परिवर्तन', 'एक तारा', 'नौका-विहार' आदि कविताओं में जिस दार्शनिक सत्य को वाणी दी गयी है उसका आधार और साधन भी प्रकृति ही है। 'परिवर्तन' कविता में कवि की दार्शनिक चेतना उद्दीप्त दिखायी देती है, जो 'एक तारा' जैसी कविताओं में अधिक संयम और निखार के साथ व्यक्त हुई है। लेकिन कवि का यह दर्शन-प्रेम उसे अनुभूति से विमुख नहीं करता। वास्तव में बुद्धि और हृदय के विरोध की समस्या छायावाद-युग में कहीं इतनी गहराई से जुड़ी हुई थी कि उस युग के सभी कवियों ने उसके समन्वय की बात की है। पन्त ने छायावादी कविताओं में तो इस आदर्श का निर्वाह विशेष सफलता के साथ किया है, लेकिन परवर्ती रचनाओं में कवि सत्य को सजीव रूप में चित्रित करने में असमर्थ रहा है—वह सत्य को केवल चित्रोपम रूप में प्रस्तुत कर सका है; वहां सत्य हृदय के रस से भीगा हुआ नहीं है। 'गुंजन' तक की रचनाओं में पन्त ने विचार को सजीव-सरस रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनमें रस की अभिव्यक्ति दो स्तरों पर हुई है—एक तो भाव-जगत् के क्षेत्र में प्राय: प्रणय के स्तर पर, जैसे 'मधु स्मिति' या 'भावी पत्नी के प्रति' कविताओं में; और दूसरे, विचार या दर्शन के स्तर पर 'परिवर्तन', 'एक तारा', 'नौका-विहार' आदि कविताओं में कवि ने सत्य को ही सरस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैसे यह उल्लेखनीय है कि पन्त की सौन्दर्य-भावना और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों की ओर ही अधिक रहा है। 'परिवर्तन' में प्रकृति के कठोर रूप का चित्रण हुआ अवश्य है, किन्तु कविता के अन्त तक आते-आते कवि उस भयानकता को भी मूलभूत आनन्दमय सत्य के साथ सम्बद्ध करके देखने लगता है और इस प्रकार फिर अपनी परिचित भूमि पर—सौन्दर्य, आनन्द और माधुर्य की भूमि पर—लौट जाता है। प्रकृति के व्यक्त रूप में आसक्ति होने के कारण पन्त-काव्य में रहस्यवादी भावनावाद के रूप में मुखर नहीं हो पायी—'मौन निमन्त्रण' जैसी कविता अपवाद-रूप ही है; और यहां भी अरूप-अज्ञात सत्ता के प्रति विस्मय और जिज्ञासा का भाव मिलता है, आसक्ति या प्रणय का नहीं।

'पल्लव' की भूमिका में पन्त ने भाषा, अलंकार, छन्द, शब्द और भाव के सामरस्य पर विचार व्यक्त किये हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में कितना जागरूक है। पन्त की शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं—लाक्षणिक वैचित्र्य, विशेषण-विपर्यय, विरोध-चमत्कार, मानवीकरण, प्रतीक-विधान, अन्योक्ति-विधान आदि। 'सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार' (मौन निमन्त्रण) का सौन्दर्य लाक्षणिक वैचित्र्य के कारण है। 'उषा का था उर में आवास' (आंसू की बालिका) में 'उषा' का प्रयोग प्रतीक के रूप में हुआ है। 'गिरा हो जाती है सनयन, नयन करते नीरव भाषण' (स्नेह) में विरोध-चमत्कार का सौन्दर्य है। इसी प्रकार अन्य असंख्य उदाहरण

unacademy

तेरी आभा को पाकर मां!
जग का तिमिर त्रास हर दूं—
नीरव रजनी में निर्भय।

यहां कवि ने प्रकृति से चांदनी की आभा को पाकर जग के 'तिमिर त्रास' को दूर करने की आकांक्षा व्यक्त की है। कवि की यह आदर्शवादी भावना निरन्तर प्रबल होती गयी है। यह आदर्शवादी भावना ही 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में 'सर्ववाद' का रूप ग्रहण करती हुई अन्त में अरविन्द-दर्शन की ओर उन्मुख हो गयी। कवि 'तिमिर त्रास' को दूर तो करना चाहता है, किन्तु प्रकृति-प्रेम को—जो एक तरह से ठोस यथार्थ जीवन के प्रति आसक्ति की सीमा बन जाता है—त्यागना भी नहीं चाहता। 'परिवर्तन', 'एक तारा', 'नौका-विहार' आदि कविताओं में जिस दार्शनिक सत्य को वाणी दी गयी है उसका आधार और साधन भी प्रकृति ही है। 'परिवर्तन' कविता में कवि की दार्शनिक चेतना उद्दीप्त दिखायी देती है, जो 'एक तारा' जैसी कविताओं में अधिक संयम और निखार के साथ व्यक्त हुई है। लेकिन कवि का यह दर्शन-प्रेम उसे अनुभूति से विमुख नहीं करता। वास्तव में बुद्धि और हृदय के विरोध की समस्या छायावाद-युग में कहीं इतनी गहराई से जुड़ी हुई थी कि उस युग के सभी कवियों ने उसके समन्वय की बात की है। पन्त ने छायावादी कविताओं में तो इस आदर्श का निर्वाह विशेष सफलता के साथ किया है, लेकिन परवर्ती रचनाओं में कवि सत्य को सजीव रूप में चित्रित करने में असमर्थ रहा है—वह सत्य को केवल चित्रोपम रूप में प्रस्तुत कर सका है; वहां सत्य हृदय के रस से भीगा हुआ नहीं है। 'गुंजन' तक की रचनाओं में पन्त ने विचार को सजीव-सरस रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनमें रस की अभिव्यक्ति दो स्तरों पर हुई है—एक तो भाव-जगत् के क्षेत्र में प्राय: प्रणय के स्तर पर, जैसे 'मधु स्मिति' या 'भावी पत्नी के प्रति' कविताओं में; और दूसरे, विचार या दर्शन के स्तर पर 'परिवर्तन', 'एक तारा', 'नौका-विहार' आदि कविताओं में कवि ने सत्य को ही सरस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैसे यह उल्लेखनीय है कि पन्त की सौन्दर्य-भावना और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों की ओर ही अधिक रहा है। 'परिवर्तन' में प्रकृति के कठोर रूप का चित्रण हुआ अवश्य है, किन्तु कविता के अन्त तक आते-आते कवि उस भयानकता को भी मूलभूत आनन्दमय सत्य के साथ सम्बद्ध करके देखने लगता है और इस प्रकार फिर अपनी परिचित भूमि पर—सौन्दर्य, आनन्द और माधुर्य की भूमि पर—लौट जाता है। प्रकृति के व्यक्त रूप में आसक्ति होने के कारण पन्त-काव्य में रहस्यवादी भावनावाद के रूप में मुखर नहीं हो पायी—'मौन निमन्त्रण' जैसी कविता अपवाद-रूप ही है; और यहां भी अरूप-अज्ञात सत्ता के प्रति विस्मय और जिज्ञासा का भाव मिलता है, आसक्ति या प्रणय का नहीं।

'पल्लव' की भूमिका में पन्त ने भाषा, अलंकार, छन्द, शब्द और भाव के सामरस्य पर विचार व्यक्त किये हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में कितना जागरूक है। पन्त की शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं—लाक्षणिक वैचित्र्य, विशेषण-विपर्यय, विरोध-चमत्कार, मानवीकरण, प्रतीक-विधान, अन्योक्ति-विधान आदि। 'सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार' (मौन निमन्त्रण) का सौन्दर्य लाक्षणिक वैचित्र्य के कारण है। 'उषा का या उर में आवास' (आंसू की बालिका) में 'उषा' का प्रयोग प्रतीक के रूप में हुआ है। 'गिरा हो जाती है सनयन, नयन करते नीरव भाषण' (स्नेह) में विरोध-चमत्कार का सौन्दर्य है। इसी प्रकार अन्य असंख्य उदाहरण

दिये जा सकते हैं। 'वीणा' में भावों और विचारों की सरलता एवं स्पष्टता के अनुरूप ही शैली भी प्राय: प्रसाद-गुण से युक्त है, किन्तु 'ग्रन्थि' में कवि भाषा के प्रति अधिक सजग हो उठा है। यह सजगता भाषा के मन्थर-गम्भीर प्रभाव और अलंकार-विधान के रूप में दिखायी देती है। 'पल्लव' तक आते-आते कवि की भाषा शब्द और अर्थ के अपूर्व एवं सूक्ष्म सामंजस्य के रूप में व्यक्त हुई है। 'गुंजन' की कविताओं में ये सभी विशेषताएं हैं, किन्तु वहां कवि अधिक संयत है। 'पल्लव' की रचनाओं में भाषा के एक नये रूप की बाढ़-सी दिखायी देती है। अनुभूति में जैसा प्रवाह और आवेग है, वैसा ही प्रवाह और आवेग भाषा में है। किन्तु, 'गुंजन' में कवि का व्यक्तित्व भी अधिक प्रौढ़ हो उठा है और संरचना भी।

'गुंजन' के बाद भी पन्त जी की अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उनकी मुक्तक कविताएं 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'रजतशिखर', 'वाणी', 'पतझर' आदि में संगृहीत हैं। मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने 'लोकायतन' महाकाव्य की रचना भी की है। उनके छायावादोत्तर काव्य को प्रवृत्ति की दृष्टि से दो वर्गों में रखा जा सकता है—पहले वर्ग के अन्तर्गत 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताएं आती हैं। उनकी भाषा-शैली और भाव-बोध प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित हैं। इन रचनाओं में कवि की भाषा वक्रता, सांकेतिकता आदि को छोड़कर सरलता और सपाटबयानी की ओर अग्रसर रही है। वैसे इन रचनाओं में अनुभूति के स्थान पर विचार को अधिक महत्त्व मिला है :

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!

'ग्राम्या' की इन पंक्तियों में कवि अलंकरण की प्रवृत्ति का त्याग नहीं करता, वरन् कविता में 'विचार' के सम्प्रेषण के महत्त्व को प्रतिष्ठित करते हुए उसे जन-जीवन से सम्बद्ध करना चाहता है। यह उल्लेखनीय है कि इस सन्दर्भ में पन्त जी ने अध्यात्म का विरोध नहीं किया। आध्यात्मिक सत्य पर कवि की आस्था बनी हुई है, किन्तु वह भौतिक समृद्धि की अनिवार्यता को भी स्वीकार करता है :

भूतवाद उस धरा-स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहां आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

ये पंक्तियां पन्त की प्रगतिशील चेतना के मूल स्वर को बड़े स्पष्ट रूप में व्यक्त करती हैं। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि भूतवाद और आत्मदर्शन के इस समन्वय का सैद्धान्तिक रूप क्या हो? कवि को इस प्रश्न का उत्तर मिलता है—अरविन्द-दर्शन में; जिसकी अभिव्यक्ति 'ग्राम्या' के बाद के स्वर्ण-काव्य में हुई है। यहां उनकी शैली में फिर परिवर्तन आया है। इस नयी शैली में छायावादी कविता की सांकेतिकता और उपचार-वक्रता के साथ ही 'युगवाणी' की बौद्धिकता भी समाविष्ट है। अपने स्वर्ण-काल में पन्त ने अनेक सन्दर्भ और स्थितियों के अन्तर्गत अरविन्द-दर्शन को अभिव्यक्त किया है। कवि वर्तमान मानव-जीवन के विषम संकट को व्यक्त करते हुए एक नये आदर्श भविष्य का चित्रण करता है। यह प्रयास युगीन यथार्थ के अनेक पक्षों का स्पर्श करते हुए भी अध्यात्म पर आश्रित है और अध्यात्म द्वारा ही नियन्त्रित है। इन रचनाओं की शक्ति और सीमा इसी तथ्य पर आधारित है।

unacademy

महादेवी वर्मा : (१९०७-१९८७) महादेवी वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश में हुआ। इन्होंने आरम्भिक शिक्षा घर पर ही ग्रहण की। इसके बाद इनकी शिक्षा विधिवत् प्रयाग में हुई जहां इन्होंने सन् १९३३ में दर्शनशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। ये आरम्भ में ब्रजभाषा में कविता लिखती थीं, बाद में खड़ीबोली में लिखने लगीं और शीघ्र ही इस क्षेत्र में इन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। ये एक कुशल चित्रकार भी थीं। इसलिए इनकी कविताओं में चित्रों-जैसी संरचना का आभास प्राय: मिला करता है। महादेवी का काव्य-रचना-काल प्रधान रूप से सन् १९२४ से १९४२ तक है। छायावाद-युग में इनके ये काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए : 'नीहार' (१९३०), 'रश्मि' (१९३२), 'नीरजा' (१९३५) और 'सान्ध्यगीत' (१९३६)। 'यामा' (१९४०) में 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' के सभी गीतों का संग्रह है।

महादेवी की कविताओं में आरम्भ से ही विस्मय, जिज्ञासा, व्यथा और आध्यात्मिकता के भाव मिलते हैं। ये भाव निरन्तर अधिक प्रौढ़ और परिमार्जित होते गये हैं। किन्तु उनमें वैसी अनेकरूपता नहीं मिलती जैसी निराला और पन्त में लक्षित होती है। प्रसाद के काव्य में भी अनुभूति और विचार निरन्तर व्यापकता की ओर अग्रसर होते दिखायी देते हैं, किन्तु महादेवी के सभी गीतों में अनुभूति और विचार के धरातल पर एकान्विति मिलती है। इनकी भावभूमि गीतिकाव्य के ही उपयुक्त है क्योंकि ये स्वानुभूति की प्रत्यक्ष विवृत्ति करती हैं। इनके अनुसार सफल गीत वही है जिसमें संयमित भावातिरेक की व्यंजना होती है : "सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्थाविशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।... वास्तव में गीत के कवि को आर्त क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक के दीर्घ नि:श्वास में छिपे हुए संयम से बांधना होगा; तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल होगा।" इसमें सन्देह नहीं कि महादेवी के गीत भावप्रधान हैं। उनके विविध गीतों में व्यथा, पीड़ा, आशा, अज्ञात प्रिय के प्रति प्रणय-निवेदन और साधना की विविध अनुभूतियों के स्वर मुखरित हुए हैं। उन्होंने अनुभूति को विचार से समन्वित करने का प्रयास किया है —अन्य छायावादी कवियों के समान वे भी हृदय और बुद्धि के विरोध का निराकरण कर काव्य में दोनों की अखण्ड-स्थिति का समर्थन करती हैं।

महादेवी ने अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन किया है, किन्तु उनका प्रणय दु:खप्रधान है। वे प्रिय से मिलन की कामना नहीं करतीं क्योंकि मिलन में तो व्यक्तित्व का ही नाश हो जाता है : "मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूं।" महादेवी का यह दु:खवाद निराशा या अकर्मण्यता का व्यंजक नहीं है, उनकी वेदना की तुलना प्रसाद के 'आंसू' काव्य के अन्त में दिखायी देनेवाली करुणा की अनुभूति से की जा सकती है। महादेवी ने दु:ख को केवल व्यक्तिगत जीवन के सन्दर्भ में स्वीकार किया है, सामाजिक जीवन के प्रसंग में तो वे अथक और अमर साधना में विश्वास करती हैं। उन्हें 'अमरों के लोक' की कामना नहीं है, वे तो 'मिटने के अधिकार' को ही बनाये रखना चाहती हैं। अपनी पीड़ा का वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है : "अमरता उसमें मनाती है मरण-त्यौहार।" उनका दु:खवाद किसी सीमा तक समाज-कल्याण की भावना में सम्पृक्त है। वे जब अपने जीवन की तुलना 'नीर-भरी दुख की बदली' या दीपशिखा से करती हैं तो वहां आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ लोक-कल्याण की भावना भी विद्यमान रहती है। जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है या दीपक स्वयं जलकर राख हो जाता है किन्तु परिवेश को आलोकित करता है, उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती हैं :

दु:ख प्रति निर्माण उन्मद
ये अमरता नापते पद
बांध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण-बेला।

महादेवी पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव केवल उनकी लोकमंगलविधायिनी पीड़ा की स्वीकृति तक ही सीमित है अन्यथा जहां तक सत्य के पारमार्थिक स्वरूप का सम्बन्ध है, वे उपनिषदों की परम्परा को ही स्वीकार करती हैं। उन्होंने सर्ववादी दर्शन को अपनाया है, फलस्वरूप उनकी आध्यात्मिक साधना और लोक-साधना में विशेष विरोध नहीं है। उनके अनुसार सृष्टि उस एक असीम सत्य की ही सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है, इसलिए सृष्टि के प्रति प्रेम और उस मूल सत्य के प्रति प्रेम में समानता है : "मैं कण-कण में ढाल रही अलि आंसू के मिस प्यार किसी का।" दीपशिखा उनका प्रिय बिम्ब है, उनके विश्लेषण से भी यही सत्य व्यंजित होता है। यद्यपि दीपक की एक आध्यात्मिक उपयोगिता भी है—वह आराधना का अनिवार्य उपकरण है, किन्तु वही दीपक संसार के लिए भी प्रकाश फैलाता है जिसमें पथिक अपना मार्ग खोज पाता है।

महादेवी ने निर्गुण के प्रति जिस प्रणय-भाव की अभिव्यक्ति की है, उसकी वास्तविकता को लेकर प्राय: मतभेद व्यक्त किया जाता है। शुक्ल जी के शब्दों में, "कहां तक वे वास्तविक अनुभूतियां हैं और कहां तक अनुभूति की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।"[४] अनुभूति की वास्तविकता का प्रश्न एक टेढ़ा प्रश्न है। इसीलिए शुक्ल जी भी इस विषय में किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नहीं करते। यदि रचनाकार को ही अनुभूति की वास्तविकता का प्रमाण माना जाये तो महादेवी की रहस्यानुभूति की वास्तविकता के बारे में कोई सन्देह नहीं रह जाता; और यदि पाठक की प्रतिक्रिया को या अनुभूति की सम्प्रेषणीयता को प्रामाणिकता का आधार बनाया जाये तो महादेवी के प्रसंग में यह स्वीकार करना होगा कि किसी भी लोकोत्तर सत्ता के प्रति—और खासकर जब वह लोकोत्तर सत्ता निर्गुण हो—व्यक्त अनुभूति की प्रामाणिकता के लिए उसकी संप्रेषणीयता को आधार बनाने से भी समस्या का सर्वमान्य समाधान नहीं होता। जायसी और कबीर की रहस्यानुभूति और निर्गुण भक्ति तथा सूर द्वारा व्यंजित माधुर्य भाव की भक्ति के विषय में भी यही शंका उठायी जा सकती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, महादेवी की अनुभूति केवल व्यक्तिपरक आध्यात्मिकता की अनुभूति ही नहीं है, उसमें लोक-कल्याण की भावना भी है जो अडिग आस्था, अटूट साधना और आत्मबलिदान के रूप में गीतों में बिखरी हुई मिलती है। इस प्रकार महादेवी ने मध्यकालीन रहस्य-साधना की परम्परा को स्वीकार करके उसे लोक-कल्याण के साथ संयुक्त कर अपने युग-बोध के अनुरूप ढालने की कोशिश की है। यह रहस्यवाद का एक नया आयाम है जिसके उद्घाटन का श्रेय महादेवी को है। इसके लिए उन्होंने अभिव्यक्ति की सांकेतिकता और सूक्ष्मता के अतिरिक्त प्रतीक-विधान और आलंकारिकता का भी सफल संयोजन किया है।

छायावाद के अन्य कवि : छायावादी काव्य के विकास में कुछ अन्य कवियों का भी योगदान रहा है। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो मुख्य रूप से इस युग की किसी अन्य धारा के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु युग और प्रधान साहित्यिक धारा के प्रभाव से छायावादी पद्धति की ओर भी आकृष्ट हुए हैं। उदाहरण के लिए माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा आदि प्रधान रूप से

unacademy

विषय प्रणय ही है। वे परिवेश में व्याप्त संघर्ष से इतने उदासीन क्योंकर रह सके। इसके उत्तर में दो बातें कही जा सकती हैं। पहली तो यह कि विवेच्य काल में लिखित इनकी कविताएं इनके कवि-जीवन की आरम्भिक रचनाएं हैं, और इसलिए उनमें प्रणय की वैसी ही आवेशमयी अभिव्यक्ति हुई है, जैसी आरम्भिक छायावादी काव्य—'आंसू', 'पल्लव', 'अनामिका' आदि—में मिलती है। प्रस्तुत काल की समाप्ति के बाद भी ये कवि रचना करते रहे और बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि में कुछ नयी प्रवृत्तियां भी उभरकर सामने आयीं। दूसरी बात यह है कि जैसे-जैसे स्वाधीनता का आन्दोलन बल पकड़ता जा रहा था, वैसे-ही-वैसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दमन-चक्र और उसका आतंक बढ़ता जा रहा था। इसलिए जो कवि खुलकर दमन-चक्र और आतंक का सामना नहीं कर सके, वे आत्मकेन्द्रित होकर प्रणय के गीत गाने लगे। यह उनके व्यक्तित्व की दुर्बलता या अपरिपक्वता का संकेत हो सकता है। एक बात और भी है—काव्य अपनी अन्तरंग शक्ति से भी नये स्तरों और सोपानों की ओर बढ़ता है। प्रणय के इस काव्य में छायावादी प्रणय का एक नया सोपान दिखायी देता है, जहां प्रणय को प्रणय के रूप में ही—सांसारिक रूप में—स्वीकार करने का आग्रह स्पष्टतः व्यंजित है। इस विशेषता को यथार्थवादी दृष्टि के विकास के रूप में देखा जा सकता है। इन कवियों की अभिव्यंजना-पद्धति भी इस विकास की साक्षी है। इनकी भाषा छायावादी सूक्ष्मता और वक्रता से रहित है तथा सीधी-सरल पदावली द्वारा जीवन की नित्य की अनुभूतियों को व्यक्त करने का प्रयास करती है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक भाषा के बाद छायावादी अभिव्यंजना के चमत्कार का उदय और उसके बाद जनभाषा से निकटता रखनेवाली प्रणय-काव्य की यह भाषा निश्चय ही काव्य-भाषा खड़ीबोली की अन्तर्निहित शक्ति के विकास की सूचक है। इसके मूल में कविता के सम्बन्ध में बदलते हुए दृष्टिकोण को भी लक्षित किया जा सकता है। यद्यपि यह काव्य छायावादी चेतना की छाया में ही उदित और पल्लवित हुआ, किन्तु छायावाद के बाद—चाहे यह अन्तर कितना ही कम क्यों न हो—काव्य होने के

हुआ, किन्तु छायावाद के बाद—चाहे यह अन्तर कितना ही कम क्यों न हो—काव्य होने के कारण इसमें छायावादी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी कार्यशील है। छायावादी अभिव्यंजना-पद्धति की सूक्ष्म सांकेतिकता तथा लोकोत्तर स्तर की अनुभूति की दुरूहता इन कवियों के लिए एक वस्तुगत सत्य था। ज्ञात या अज्ञात रूप से ये कवि आरम्भ से ही छायावादी काव्य की इन सीमाओं के प्रति सजग रहे होंगे और इन्होंने सायास एक नयी भाव-भूमि और नयी काव्य शैली के निर्माण का प्रयास किया होगा। प्रेम और मस्ती का यह काव्य निस्संदेह अपनी सीधी-सच्ची अनुभूति और कला के कारण जनता में विशेष ख्याति पा सका। किन्तु एक ही धरातल पर संचरण के कारण यह काव्य एकांगी और सीमित होकर रह गया। जिस प्रकार छायावादी कवियों ने अपने प्रणय और अपनी व्यथा से ऊपर उठने का प्रयास किया, वैसा प्रयास इन कवियों में कम दिखायी देता है।

आलोच्य काव्यधारा के कवियों में **भगवतीचरण वर्मा** (१९०३-१९८१) की कविताएं 'प्रताप' में सन् १९१७ से ही प्रकाशित होने लगी थीं। इनकी अनुभूति के दो रूप दिखायी देते हैं। एक रूप तो वह है जहां ये मस्ती और फक्कड़पन को अभिव्यक्त करते हैं : 'हम दीवानों की क्या हस्ती, हैं आज यहां कल वहां चले।' इस प्रकार की अनुभूति इन्हें 'नवीन' के निकट ला खड़ा करती है, किन्तु ऐसी रचनाएं परिमाण में बहुत कम हैं। प्रधान रूप से तो इन्होंने समाज की विषमताओं से पराजित और संघर्ष से विरत एकाकी व्यक्ति की अनुभूतियों को ही व्यक्त किया है :

unacademy

है इस जीवन का बोझ असह
मैं निर्बलता से चूर प्रिये।
उर शंकित है, पग डगमग है,
तुम मुझसे कितनी दूर प्रिये!

यहां सफलता या असफलता, ये तो सिर्फ़ बहाने हैं,
केवल इतना सत्य कि निज को हम ही स्वयं अनजाने हैं।

इस तरह की रचनाओं में जो बेबसी और कर्म से विमुखता लक्षित होती है, वह स्पष्ट ही महान् काव्य की रचना में सहायक नहीं हो सकती। छायावादी कवियों में भी इस तरह के उद्‌गार मिलते हैं जहां कवि यथार्थ के विषम संघर्ष से विमुख होकर कहीं दूर चला जाना चाहता है, किन्तु ऐसे उद्‌गार काव्य-साधना के किसी क्षण-विशेष में व्यक्त हों तो एक बात है और यदि वही सम्पूर्ण काव्य-साधना पर छाए हुए हों, तो निश्चय ही काव्य का व्यक्तित्व सीमित ही रह जाता है। वैसे वर्मा जी की भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है। उसमें छायावादी शैली की भांति तत्सम शब्दों की प्रधानता, सूक्ष्मता या वक्रता के दर्शन नहीं होते। काव्य-भाषा की दिशा में इनकी रचनाएं निश्चय ही खड़ीबोली-कविता के एक नये मोड़ की सूचना देती हैं।

हरिवंशराय 'बच्चन' (जन्म १९०७) का आरम्भिक जीवन कष्टों और अभावों में बीता। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी कविता जीवन से पूरी तरह विमुख नहीं है। जहां ये 'मधुशाला' में पूरी तरह गर्क दिखायी देते हैं, वहां भी इन्हें यह भान रहा है कि मधुशाला धार्मिक-साम्प्रदायिक अन्तराल को दूर कर अनुभूति के धरातल पर—चाहे वह अनुभूति कर्महीन मस्ती की ही क्यों न हो—एकता की स्थापना करती है। इनके 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' काव्य-संग्रहों में उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का प्रभाव लक्षित

होता है। किन्तु मधुशाला में डूबा हुआ यह कवि सामाजिक विषमता से अनजान नहीं है। उसने एक ओर तो उद्दाम यौवन की लालसा को अपनाया है और दूसरी ओर उसी स्तर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर करने का प्रयास किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कवि ठोस यथार्थ को पूरी तरह से ग्रहण नहीं कर पाया। हां, जीवन की विषमताओं को एक सामान्य अनुभूति के स्तर पर सुलझाने का प्रयास उसने अवश्य किया है। भाषा की दृष्टि से भी बच्चन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सीधी और स्पष्ट अभिव्यक्ति का जो रूप भगवतीचरण वर्मा में मिलता है, उसी का विकसित रूप बच्चन में दिखायी देता है।

प्रस्तुत काव्यधारा के अन्य कवियों में नरेन्द्र शर्मा (१९१३-१९८९) प्रेम और मस्ती के भावों से प्रभावित तो हुए, किन्तु वे प्रणय के उच्छ्वास में लड़खड़ाये नहीं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लिया है और इसलिए वे प्रणय को अधिक सहजता के साथ खुलकर व्यक्त कर सके हैं। 'प्रभात फेरी' (१९३८), 'प्रवासी के गीत' (१९३८) और 'पलाश वन' (१९३९) में इसी प्रकार की भावप्रधान रचनाएं संकलित हैं, जिनमें प्रणय के संयोग और वियोगमूलक प्रसंगों का सरल और प्रवाहमयी भाषा में चित्रण हुआ है।

गोपालसिंह नेपाली (जन्म १९१३), हृदयनारायण 'हृदयेश' (जन्म १९०५), हरिकृष्ण 'प्रेमी' (जन्म १९०८), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (जन्म १९१५) आदि इस धारा के अन्य मुख्य कवि हैं।

unacademy

नेपाली के प्रथम काव्य-संग्रह 'उमंग' (१९३४) में प्रेम और यौवन की मधुर अनुभूतियों के अनेक मोहक और सरस चित्र मिलते हैं। कवि सम्मेलनों में इनकी रचनाएं रंग जमा देती थीं। बाद में ये चलचित्रों के लिए गीत लिखने लगे। इनके गीत भाषा एवं भावभूमि की सरलता के कारण सामान्य जनता को तल्लीन और विभोर करने में समर्थ हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि ये अपने कृतित्व को सामान्य जनता के स्तर से मुक्त रख सकते तो इनकी कला अधिक निखार और उत्कर्ष प्राप्त करने में सफल होती। 'हृदयेश' की रचनाओं में अनेकरूपता दिखायी देती है। इनकी कविताओं में प्रणय के अतिरिक्त करुणा और हालावाद की अभिव्यक्ति भी मिलती है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' की कविताओं में देश-प्रेम के साथ-साथ प्रणय की तीव्रता और यौवन के उल्लास के दर्शन भी होते हैं। इनकी भाषा-शैली सरल होते हुए भी कहीं-कहीं छायावादी वक्रता की अदा दिखा जाती है। 'अंचल' की रचनाओं में मांसल प्रणय की आवेशमयी अभिव्यक्ति मिलती है। इसलिए इनकी कविताओं में कोमल भावों की अनुभूति भी आवेशमयी और ओजपूर्ण हो उठी है। 'अंचल' के काव्य में छायावादी प्रणय के व्यापक और उदात्त रूप की कोई छाया नहीं दिखायी देती, वे प्रणय के उस छोर पर खड़े हैं जो शारीरिकता और वासना से आक्रान्त है।

हरिवंशराय 'बच्चन' (जन्म १९०७) का आरम्भिक जीवन कष्टों और अभावों में बीता। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी कविता जीवन से पूरी तरह विमुख नहीं है। जहां ये 'मधुशाला' में पूरी तरह गर्क दिखायी देते हैं, वहां भी इन्हें यह भान रहा है कि मधुशाला धार्मिक-साम्प्रदायिक अन्तराल को दूर कर अनुभूति के धरातल पर—चाहे वह अनुभूति कर्महीन मस्ती की ही क्यों न हो—एकता की स्थापना करती है। इनके 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' काव्य-संग्रहों में उमर खैयाम की रुबाइयों का प्रभाव लक्षित होता है। किन्तु मधुशाला में डूबा हुआ यह कवि सामाजिक विषमता से अनजान नहीं है। उसने एक ओर तो उद्दाम यौवन की लालसा को अपनाया है और दूसरी ओर उसी स्तर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर करने का प्रयास किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कवि ठोस यथार्थ को पूरी तरह से ग्रहण नहीं कर पाया। हां, जीवन की विषमताओं को एक सामान्य अनुभूति के स्तर पर सुलझाने का प्रयास उसने अवश्य किया है। भाषा की दृष्टि से भी बच्चन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सीधी और स्पष्ट अभिव्यक्ति का जो रूप भगवतीचरण वर्मा में मिलता है, उसी का विकसित रूप बच्चन में दिखायी देता है।

प्रस्तुत काव्यधारा के अन्य कवियों में नरेन्द्र शर्मा (१९१३-१९८९) प्रेम और मस्ती के भावों से प्रभावित तो हुए, किन्तु वे प्रणय के उच्छ्वास में लड़खड़ाये नहीं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लिया है और इसलिए वे प्रणय को अधिक सहजता के साथ खुलकर व्यक्त कर सके हैं। 'प्रभात फेरी' (१९३८), 'प्रवासी के गीत' (१९३८) और 'पलाश वन' (१९३९) में इसी प्रकार की भावप्रधान रचनाएं संकलित हैं, जिनमें प्रणय के संयोग और वियोगमूलक प्रसंगों का सरल और प्रवाहमयी भाषा में चित्रण हुआ है।

गोपालसिंह नेपाली (जन्म १९१३), हृदयनारायण 'हृदयेश' (जन्म १९०५), हरिकृष्ण 'प्रेमी' (जन्म १९०८), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (जन्म १९१५) आदि इस धारा के अन्य मुख्य कवि हैं।

unacademy

बाद मरने के मेरे कब्र पर आलू बोना
हश्र तक यह मेरे ब्रेकफ़ास्ट के सामां होंगे,
उम्र सारी तो कटी घिसते कलम ए बेढब
आख़िरी वक्त में क्या ख़ाक पहलवां होंगे।

आलोच्य युग में हास्य-व्यंग्य को प्रमुखता देनेवाले अन्य समर्थ कवि हैं—अन्नपूर्णानन्द (महाकवि चच्चा), कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' और शिवरत्न शुक्ल। **अन्नपूर्णानन्द** ने पश्चिम के अन्धानुकरण, सामाजिक रूढ़ियों की दासता, मानव-स्वार्थ आदि विषयों पर उत्कृष्ट व्यंग्य-काव्य की रचना की है। **कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच'** की कृतियों में 'चोंच चालीसा', 'पानी पांडे' और 'महाकवि सांड़' उल्लेखनीय हैं जिनमें से अंतिम दो में इनकी कुछ हास्य-रसात्मक कहानियां भी समाविष्ट हैं। समाज की कुरीतियों पर इन्होंने शिक्षात्मक व्यंग्य-लेखन की पद्धति अपनायी है। अंगरेज़ी-शब्दों के प्रयोग द्वारा हास्य की सृष्टि करने में भी ये बेढब बनारसी की भांति सिद्धहस्त हैं। 'परिहास प्रमोद' (१९३०) के रचयिता **शिवरत्न शुक्ल** की विनोदपूर्ण रचनाएं भी अनायास मन को मुग्ध कर लेती हैं। छायावाद युगीन पत्रिकाओं में इनकी रचनाएं 'बलाई' नाम से प्रकाशित हुआ करती थीं। समाज में व्याप्त अभिशापों पर व्यंग्य करने के साथ ही इन्होंने पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर भी मार्मिक वाक्प्रहार किये हैं।

मार्मिक वाक्प्रहार किये हैं।

छायावाद-युग की हास्य-व्यंग्यात्मक रचनाओं में हरिऔध-कृत 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे', चतुर्भुज चतुरेश-कृत 'हंसी का फव्वारा' और ज्वालाराम नागर 'विलक्षण' द्वारा छायावाद पर व्यंग्य के निमित्त रचित 'छायापथ' का उल्लेख भी यहां आवश्यक है। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, मोहनलाल गुप्त, श्रीनाथ सिंह प्रभृति कवियों द्वारा रचित स्फुट कविताएं भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आलोच्य काल में समाज, धर्म, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध ऐसी अनेक हास-परिहासात्मक रचनाएं लिखी गयीं जिनमें हास्य की मुखरता और व्यंग्य की तीव्रता स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। किन्तु इनमें छायावादी काव्य के तुल्य उत्कर्ष और लावण्य को ढूंढ़ना असंगत होगा क्योंकि विषय की सामान्य सहजता के कारण ये रचनाएं शैली, विचार, संरचना आदि की दृष्टि से सामान्य स्तर की ही मानी जाएंगी।

ब्रजभाषा-काव्य

आधुनिक युग को ब्रजभाषा-काव्य की एक दीर्घ-समुन्नत परम्परा प्राप्त हुई थी, इसलिए आधुनिक युग के आरम्भिक कवियों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे उस परम्परा से प्रभावित हों—प्रभावित ही न हों, उसे आगे भी बढ़ाएं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और ब्रजभाषा के परवर्ती कवियों की रचनाएं प्राचीन परम्परा से प्रभावित होते हुए भी नवीनता की ओर—नये विषयों और नयी अभिव्यंजना-पद्धति की ओर—अग्रसर हुईं। किन्तु छायावाद-युग में ब्रजभाषा-काव्य की परम्परा एक गौण धारा के रूप में ही दिखायी देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक-काल में गद्य-रचना की भांति काव्य-रचना के लिए भी खड़ीबोली को स्वीकार कर लिया गया। फिर भी काव्य की भाषा को लेकर काफ़ी दिनों तक तीव्र विवाद होता रहा। ब्रजभाषा के समर्थन में यह तर्क दिया जाता था कि यदि हम सूर, तुलसी, सेनापति, बिहारी और घनानन्द-जैसी समर्थ प्रतिभाओं की परम्परा को भूलना नहीं चाहते तो

unacademy

हमें ब्रजभाषा को साहित्य में जीवित रखना होगा; और इसका उपाय यह है कि काव्य में ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया जाये। साथ ही यह भी कहा जाता था कि ब्रजभाषा को अनेक महान् प्रतिभाओं ने संवारकर काव्य के उत्तम माध्यम के रूप में ढाल दिया है जबकि खड़ीबोली का रूप अव्यवस्थित, कर्कश और खुरदरा है और वह काव्य-भाषा के गुणों से रहित है। इसलिए कवियों और विद्वानों के एक वर्ग ने ब्रजभाषा का ज़ोरदार समर्थन किया। किन्तु ऐतिहासिक परिस्थितियां इस वर्ग के विपक्ष में थीं। गद्य के लिए खड़ीबोली को स्वीकार किया जा चुका था और गद्य के सर्वतोमुखी महत्त्व के विकास के साथ-साथ खड़ीबोली का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा था। ब्रजभाषा में गद्य-साहित्य की परम्परा के अभाव के कारण ब्रजभाषा के समर्थक भी गद्य के निर्माण के लिए खड़ीबोली का विरोध न कर सके। परिणाम यह हुआ कि एक ही साहित्यकार गद्य के लिए खड़ीबोली का उपयोग करता था और पद्य के लिए ब्रजभाषा का। स्पष्ट है कि इस प्रकार की असंगत स्थिति ज्यादा देर तक नहीं चल सकती थी। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस स्थिति का, जो अपने-आप में ही काफ़ी दुर्बल थी, विरोध किया और खड़ीबोली में काव्य-रचना के लिए अनेक कवियों को प्रेरित किया। बाद में जब प्रसाद, निराला आदि छायावादी कवियों ने खड़ीबोली-कविता में भी सूक्ष्मतम अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति कर उसकी अन्तरंग शक्ति को प्रत्यक्ष कर दिखाया तब खड़ीबोली का विरोध शान्त हो गया। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य-रचना करते रहे। इनमें रामनाथ जोतिसी (जन्म १८७४), रामचन्द्र शुक्ल (१८८४-१९४०), राय कृष्णदास (जन्म १८९२), जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (१८९५-१९५६), दुलारेलाल भार्गव (जन्म १८९५), वियोगी हरि (जन्म १८९६), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अनूप शर्मा (जन्म १९००), रामेश्वर 'करुण' (जन्म १९०१), किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' (१९०७-१९५७) आदि का उल्लेख मुख्य रूप से अपेक्षित है। **रामनाथ जोतिसी** की रचनाओं में 'रामचन्द्रोदय काव्य' (१९३६) मुख्य है। इसमें राम के जन्म से लेकर उनके विवाह और अयोध्या-निवास तक की ही कथा का वर्णन मिलता है। इस काव्य में प्रधान रूप से कवि की भक्ति-भावना मुखर हुई है, किन्तु उपदेश देने की प्रवृत्ति भी स्थान-स्थान पर दिखायी देती है। कवि ने परोक्ष रूप से अपने युग की दशा के वर्णन का प्रयास भी किया है। इनकी रचना-शैली पर केशव की 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव है और इसमें विविध छन्दों का सफल प्रयोग लक्षित होता है। **रामचन्द्र शुक्ल** इस युग के मेधावी आलोचक तो थे ही, उन्होंने एडविन आर्नल्ड के आख्यान-काव्य 'लाइट ऑफ़ एशिया' का 'बुद्धचरित' (१९२२) शीर्षक से ब्रजभाषा में अनुवाद भी किया, किन्तु यह मूल का अक्षरशः अनुवाद नहीं है—कवि ने अनेक स्थलों पर उद्भावनाएं भी की हैं। शुक्ल जी की भाषा सरल और व्यावहारिक है क्योंकि वे रीतिकालीन चमत्कारप्रधान भाषा के कायल नहीं थे।

राय कृष्णदास-कृत 'ब्रजरज' (१९३६), **जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी'** द्वारा रचित कवित्त-सवैये और **दुलारेलाल भार्गव** की 'दुलारे दोहावली' भी इस काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। ब्रजभाषा की प्रचलित शैली के अनुरूप प्राचीन विषयों का प्रतिपादन करने के साथ-साथ इन कवियों ने नयी शैली द्वारा नयी स्थितियों के चित्रण का प्रयास भी किया है। **वियोगी हरि** की ब्रजभाषा-कृतियों में 'वीर सतसई' (१९२७) का प्रमुख स्थान है। यह राष्ट्रीय भावना की एक श्रेष्ठ कृति है जिसमें इन्होंने कहीं प्राचीन भारतीय गरिमा का चित्रण किया है तो कहीं देश की वर्तमान दशा के मार्मिक चित्र खींचे हैं, कहीं वीरों का गौरव-गान किया है तो कहीं युवकों को देश-सेवा की प्रेरणा दी है। भाषा के नैसर्गिक सौन्दर्य और अनुभूति की तीव्रता के कारण यह रचना अत्यन्त प्रभावशाली बन

unacademy

हमें ब्रजभाषा को साहित्य में जीवित रखना होगा; और इसका उपाय यह है कि काव्य में ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया जाये। साथ ही यह भी कहा जाता था कि ब्रजभाषा को अनेक महान् प्रतिभाओं ने संवारकर काव्य के उत्तम माध्यम के रूप में ढाल दिया है जबकि खड़ीबोली का रूप अव्यवस्थित, कर्कश और खुरदरा है और वह काव्य-भाषा के गुणों से रहित है। इसलिए कवियों और विद्वानों के एक वर्ग ने ब्रजभाषा का ज़ोरदार समर्थन किया। किन्तु ऐतिहासिक परिस्थितियां इस वर्ग के विपक्ष में थीं। गद्य के लिए खड़ीबोली को स्वीकार किया जा चुका था और गद्य के सर्वतोमुखी महत्त्व के विकास के साथ-साथ खड़ीबोली का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा था। ब्रजभाषा में गद्य-साहित्य की परम्परा के अभाव के कारण ब्रजभाषा के समर्थक भी गद्य के निर्माण के लिए खड़ीबोली का विरोध न कर सके। परिणाम यह हुआ कि एक ही साहित्यकार गद्य के लिए खड़ीबोली का उपयोग करता था और पद्य के लिए ब्रजभाषा का। स्पष्ट है कि इस प्रकार की असंगत स्थिति ज्यादा देर तक नहीं चल सकती थी। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस स्थिति का, जो अपने-आप में ही काफ़ी दुर्बल थी, विरोध किया और खड़ीबोली में काव्य-रचना के लिए अनेक कवियों को प्रेरित किया। बाद में जब प्रसाद, निराला आदि छायावादी कवियों ने खड़ीबोली-कविता में भी सूक्ष्मतम अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति कर उसकी अन्तरंग शक्ति को प्रत्यक्ष कर दिखाया तब खड़ीबोली का विरोध शान्त हो गया। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य-रचना करते रहे। इनमें रामनाथ जोतिसी (जन्म १८७४), रामचन्द्र शुक्ल (१८८४-१९४०), राय कृष्णदास (जन्म १८९२), जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (१८९५-१९५६), दुलारेलाल भार्गव (जन्म १८९५), वियोगी हरि (जन्म १८९६), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अनूप शर्मा (जन्म १९००), रामेश्वर 'करुण' (जन्म १९०१), किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' (१९०७-१९५७) आदि का उल्लेख मुख्य रूप से अपेक्षित है। **रामनाथ जोतिसी** की रचनाओं में 'रामचन्द्रोदय काव्य' (१९३६) मुख्य है। इसमें राम के जन्म से लेकर उनके विवाह और अयोध्या-निवास तक की ही कथा का वर्णन मिलता है। इस काव्य में प्रधान रूप से कवि की भक्ति-भावना मुखर हुई है, किन्तु उपदेश देने की प्रवृत्ति भी स्थान-स्थान पर दिखायी देती है। कवि ने परोक्ष रूप से अपने युग की दशा के वर्णन का प्रयास भी किया है। इनकी रचना-शैली पर केशव की 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव है और इसमें विविध छन्दों का सफल प्रयोग लक्षित होता है। **रामचन्द्र शुक्ल** इस युग के मेधावी आलोचक तो थे ही, उन्होंने एडविन आर्नल्ड के आख्यान-काव्य 'लाइट ऑफ़ एशिया' का 'बुद्धचरित' (१९२२) शीर्षक से ब्रजभाषा में अनुवाद भी किया, किन्तु यह मूल का अक्षरशः अनुवाद नहीं है—कवि ने अनेक स्थलों पर उद्भावनाएं भी की हैं। शुक्ल जी की भाषा सरल और व्यावहारिक है क्योंकि वे रीतिकालीन चमत्कारप्रधान भाषा के कायल नहीं थे।

राय कृष्णदास-कृत 'ब्रजरज' (१९३६), **जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी'** द्वारा रचित कवित्त-सवैये और **दुलारेलाल भार्गव** की 'दुलारे दोहावली' भी इस काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। ब्रजभाषा की प्रचलित शैली के अनुरूप प्राचीन विषयों का प्रतिपादन करने के साथ-साथ इन कवियों ने नयी शैली द्वारा नयी स्थितियों के चित्रण का प्रयास भी किया है। **वियोगी हरि** की ब्रजभाषा-कृतियों में 'वीर सतसई' (१९२७) का प्रमुख स्थान है। यह राष्ट्रीय भावना की एक श्रेष्ठ कृति है जिसमें इन्होंने कहीं प्राचीन भारतीय गरिमा का चित्रण किया है तो कहीं देश की वर्तमान दशा के मार्मिक चित्र खींचे हैं, कहीं वीरों का गौरव-गान किया है तो कहीं युवकों को देश-सेवा की प्रेरणा दी है। भाषा के नैसर्गिक सौन्दर्य और अनुभूति की तीव्रता के कारण यह रचना अत्यन्त प्रभावशाली बन

unacademy

राष्ट्रवादी काव्यधारा

छायावाद

unacademy

काव्यधारा

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

विवेच्य काल भारतीय जीवन के लिए विषम संघर्ष का समय था। देश ऐसे साम्राज्यवादियों के चंगुल में फंसा हुआ था जिनकी शासन-पद्धति प्राचीन काल के विदेशियों से मुख्यत: भिन्न थी। अंगरेज़ों से पहले जितने भी विदेशी आक्रमणकारी यहां आये वे या तो लूटमार करके वापस चले गये या देश में देश के ही होकर रह गये। निस्सन्देह वे अपने वर्ग या धर्म पर आस्था रखनेवालों को अधिक सुविधाएं देते थे और दूसरे धर्मों के लोगों को वैसी समानता का अधिकार नहीं मिल पाता था, फिर भी वे इस देश में रहते हुए किसी दूसरे देश के हित की बात नहीं सोचते थे। इसके विपरीत अंगरेज़ शासक यहां रहते हुए भी यहां के निवासी नहीं बने। उनका उद्देश्य था—इस देश का शोषण कर अपने देश की श्रीवृद्धि करना। इसलिए उनके प्रति आक्रोश होना स्वाभाविक ही था। यह आक्रोश धीरे-धीरे बढ़ता हुआ स्वाधीनता-संग्राम के रूप में फूट पड़ा और महात्मा गांधी के नेतृत्व में आज़ादी का संघर्ष एक नये रूप में—अहिंसा और सत्य पर आधारित असहयोग के रूप में हमारे सामने आया। इस युग के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य में दो भावनाएं पूरी शक्ति के साथ व्यक्त हुईं—एक ओर तो कवियों ने भारत की आन्तरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्राकुमारी चौहान ने केवल राष्ट्र-प्रेम को ही मुखरित नहीं किया; उन्होंने स्वयं देश की आज़ादी की लड़ाई में भाग लिया। फलस्वरूप उनकी देश-प्रेम की कविताओं में अनुभूति की सच्चाई और आवेश दिखायी देता है। उदाहरणार्थ, माखनलाल चतुर्वेदी ने 'क़ैदी और कोकिला' शीर्षक कविता में अपनी अनुभूति को ही एक उच्चतर और लोक-सामान्य भावभूमि के स्तर पर व्यक्त करने का प्रयास किया है :

क्या? देख न सकती ज़ंजीरों का गहना।
हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।।
कोल्हू का चर्रक चूं? जीवन की तान।
मिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान?
हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआ।
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ।।

इन पंक्तियों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी किसी भी ऐसे व्यक्ति की आवाज़ सुनी जा

unacademy

सकती है जिसे आज़ादी के लिए संघर्ष करने के जुर्म में कैद किया गया हो। इस काल में देश के सर्वमान्य नेता थे—महात्मा गांधी। इसलिए स्वाभाविक ही है कि आज़ादी के भावों से भरी कविता में गांधी-दर्शन का गम्भीर प्रभाव दिखायी दे। स्वाधीनता संग्राम के प्रेरक मूल्य थे—सत्य और अहिंसा। इनके साथ ही गांधी-दर्शन में सामान्य जनता की समूह-शक्ति के उपयोग का प्रयास दिखायी देता है। युगों से शोषित भारतीय जनता को विज्ञान से प्राप्त नये साधनों से युक्त ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के साथ संघर्ष के लिए प्रेरित करना कोई आसान काम नहीं था। जन-मानस में जागरण और संघर्ष के भावों का संचार करने के लिए कवियों ने जनता को मुख्य रूप से यह बताया कि प्रत्येक व्यक्ति असीम अक्षय शक्ति का स्रोत है; आवश्यकता इस बात की है कि वह इसे पहचाने और आत्मविश्वास के साथ संघर्ष के लिए तैयार हो जाए। 'नवीन' ने इन पंक्तियों में 'चिरदोहित' और 'भिखमंगे' भारत को जगाने का प्रयास किया है :

ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मलालुम, अरे चिरदोहित,
तू अखण्ड भण्डार शक्ति का, जाग अरे निद्रा सम्मोहित।
प्राणों को तड़पानेवाली हुंकारों से जल-थल भर दे,
अंगारों के अंबारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे।।

जनता में आत्मविश्वास का संचार करने का दूसरा उपाय था—अतीत की गरिमा का सजीव चित्रण। आज का भारत इतना विकसित हो जाने पर भी अपनी प्राचीन वैदिक परम्परा से जुड़ा हुआ है। इसके अनेक कारण दिये जाते हैं, किन्तु प्रधान कारण है—मूल भारतीय जीवन-दृष्टि में दुराग्रह का अभाव; जिसके कारण वह युगानुरूप अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं का संशोधन-परिवर्धन करती रही। आधुनिक काल में भी यह प्रयास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। धर्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द, महात्मा गांधी आदि ने प्राचीन सिद्धान्तों को ही ग्रहण किया और उनकी युगानुरूप नयी व्याख्याएं कीं। यह सारा प्रयास वास्तव में प्राचीन भारतीय परम्परा में उन मूल्यों की खोज का प्रयास है जो आज के युग-जीवन के लिए भी सार्थक और उपयोगी हो सकें। छायावादी कवियों ने इस दिशा में एक व्यापक प्रक्रिया को अपनाया, जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। राष्ट्रीय कवियों ने भी राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र आदि प्राचीन युगपुरुषों के चरित्रों के उदाहरण देकर जनता में विश्वास और आस्था पैदा करने का प्रयत्न किया। सियारामशरण गुप्त की 'बापू' कविता की ये पंक्तियां देखिए :

प्राप्त इसे हुए के अतल से
सत्य हरिश्चन्द्र की अटलता,
लब्ध इसे ताराग्रह मण्डल से
श्री प्रह्लाद की अनन्त भक्ति समुज्ज्वलता,
क्रुद्ध कुरुक्षेत्र के समर में
साधा है अकाम ज्ञान कर्मयोग इसने
पुण्यरत पांचजन्य स्वर में
जीवन का पाया है अमर योग इसने।

unacademy

निराला ने भी 'दिल्ली' कविता में देश के अतीत गौरव के साथ वर्तमान दुर्दशा का चित्रण कर एक गम्भीर प्रभाव की अभिव्यक्ति की है :

क्या यह वही देश है—
भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
उड़ती है आज भी जहां के वायुमण्डल में
उज्ज्वल अधीर और चिरनवीन?—
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहां भारत ने
गीता गीत-सिंहनाद—
मर्मवाणी जीवन-संग्राम की—
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति योग का?

इस प्रकार इन कवियों ने वर्तमान को अतीत से सम्बद्ध करके वर्तमान में उत्साह और महानता का उद्‌बोध करने का प्रयास किया। इस सन्दर्भ में कवियों का ध्यान उन्हीं कर्म, ज्ञान, निष्ठा, सत्य, साधना, सहिष्णुता आदि मूल्यों की ओर गया जो समकालीन जीवन के लिए भी आदर्श बन सकते हैं। इस प्रकार यह 'जीवन्त अतीत' की खोज का प्रयास था जिसमें साधकों, चिन्तकों और कवियों ने मिलकर योग दिया। किन्तु ये कवि केवल अतीत में ही रमकर नहीं रह गये, अपने युग की विविध विषमताओं और आकांक्षाओं के प्रति भी ये सजग थे। यह तो ठीक है कि प्राचीन महापुरुषों के चरित्र का ज्ञान और अतीत के जीवन्त शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा सामाजिक अभ्युदय में सहायक होती है, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। युग की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि व्यक्ति दीन-दुखियों की सेवा करे उनके कल्याण के लिए, उन्हें सखी बनाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दे। यह भाव भी व्यक्त

चाहता है उसका प्रधान कर्त्तव्य यह है कि वह दलित और शोषित वर्ग के उद्धार के लिए साधना करे। जो प्रवृत्ति भारतेन्दु की प्रसिद्ध पंक्ति 'कहां करुनानिधि केसव सोए' में मिलती है, वही विवेच्य काव्यधारा में भी दिखायी देती है। इस तरह के विचारों के मूल में भगवद्‌भक्ति और लोक-कल्याण की भावनाओं में समन्वय का प्रयास दिखायी देता है। ऐकान्तिक लोक विमुख आध्यात्मिक साधना आधुनिक युग की आकांक्षाओं को तृप्त नहीं कर सकती, परंतु भक्ति या आध्यात्मिकता सर्वथा निरर्थक या उपेक्षणीय भी नहीं है। आध्यात्मिकता और सामाजिकता का समन्वय जीवन के चतुर्दिक् विकास के लिए अनिवार्य है। रामनरेश त्रिपाठी ने इस सत्य का बड़ी मार्मिकता के साथ प्रतिपादन किया है :

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में।
बनकर किसी के आंसू मेरे लिए बहा तू
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में।

आलोच्य धारा की कई रचनाओं में प्रत्यक्ष रूप से देश की स्वाधीनता की मांग का, 'होमरूल' का, समर्थन किया गया है। हमारा देश किसी और का अधिकार नहीं छीनना चाहता, हम तो केवल

unacademy

स्वराज्य—अपने देश के वर्तमान और भविष्य को बनाने का अधिकार—चाहते हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने युग की इस आकांक्षा को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है :

करेंगे क्या लेकर अपवर्ग, हमारा भारत ही सुख-स्वर्ग।
नहीं है किसी लक्ष्य पर ध्यान, चाहिए केवल स्वत्व समान।।
इसे तजकर क्या तरु निर्मूल, करेंगे लेकर किंशुक फूल।
प्रकृत पुरुषों का जीवन-मूल, चाहिए केवल घर का रूल।।

इस तरह की रचनाओं में कवित्व की अपेक्षा उपदेश का भाव ही अधिक है। वस्तुत: जब भी कविता किसी सामाजिक मांग को—चाहे वह स्वराज्य की मांग के समान महत्त्वपूर्ण ही क्यों न हो—लेकर चलती है, तो उसके कवित्व की प्राय: हानि होती है। एक तो यह खड़ीबोली-काव्य की आरम्भिक अवस्था थी और तब तक भाषा का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था और दूसरे, कवियों की चेतना कविता या कवि-कर्म में केन्द्रित न होकर राष्ट्रीय आकांक्षा में केन्द्रित थी; इसलिए इस प्रकार की रचनाओं का महत्त्व केवल इनकी राष्ट्रीय चेतना के कारण ही है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि स्वाधीनता-आन्दोलन के दो महत्त्वपूर्ण मूल्यों—असहयोग और आत्मबलिदान—के प्रभावस्वरूप इस धारा की अनेक रचनाओं में जनता को सरकार से असहयोग करने के लिए प्रेरित किया गया है। स्पष्ट है कि सरकार का विरोध करने पर, चाहे वह शान्तिपूर्ण असहयोग ही क्यों न हो, लोगों में सरकार के दमन-चक्र की निरंकुशता को सहने की शक्ति होनी चाहिए। इसलिए असहयोग के साथ-साथ सहिष्णुता पर भी विशेष बल दिया गया। यदि यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन जीवन की बलि मांगता है, तो इसके लिए भी जनता को तैयार रहना चाहिए। सुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग और बलिदान की प्रेरणा देते हुए कहा है :

विजयिनी मां के वीर सुपुत्र पाप से असहयोग ले ठान।
गुंजा डालें स्वराज्य की तान और सब हो जावें बलिदान।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने भी देश के युवकों को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर मर मिटने के लिए प्रेरित किया है :

है बलिवेदी, सखे प्रज्वलित मांग रही ईंधन क्षण-क्षण,
आओ युवक, लगा दो तो तुम अपने यौवन का ईंधन।
भस्मसात हो जाने दो ये प्रबल उमंगें जीवन की,
अरे सुलगने दो बलिवेदी, चढ़ने दो बलि जीवन की।।

कहीं-कहीं क्रान्ति और ध्वंस के स्वर भी सुनायी देते हैं। 'नवीन' जी की रचना 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए' इस विषय में प्रसिद्ध है। निराला की 'आवाहन' कविता में भी ध्वंस की बात कही गयी है :

एक बार बस और नाच तू श्यामा!
सामान सभी तैयार,
कितने ही असुर, चाहिए कितने तुझको हार?
कर मेखला मुण्ड-मालाओं से बन-बन अभिरामा—

unacademy

एक बार बस और नाच तू श्यामा!
भैरवी मेरी तेरी इच्छा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा;
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूंगा मां
मैं अपनी अंजलि भर-भर...

किन्तु यह भाव विरल ही है; प्रधानता असहयोग और आत्मबलिदान के भावों की ही है। इस काव्यधारा की अनेक रचनाओं में मातृभूमि की महिमा का वर्णन करने के सन्दर्भ में उसे देवी के रूप में भी चित्रित किया गया है। निराला ने भारतमाता का चित्र इन पंक्तियों में व्यक्त किया है :

भारति, जय विजय करे,
कनक, शस्य कमल धरे।
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ भरे।

इस प्रकार की रचनाओं के द्वारा कवियों ने जनता में देश के प्रति प्रेम और भक्ति की भावनाएं उत्पन्न करने का प्रयास किया है। जिस देश ने हमें जीवन दिया है, जिसकी धूल में पलकर हम बड़े हुए हैं; क्या हम उसके दु:खों की उपेक्षा करके जीवन को सार्थक कर सकते हैं? स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के संघर्ष-काल में प्रत्येक भारतवासी का सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य था—देश की स्वाधीनता के लिए साधना करना। इस युग के प्राय: सभी कवियों ने देश के अतीत गौरव के प्रति अटूट श्रद्धा तो व्यक्त की ही है, साथ ही उनका यह दृढ़ विश्वास भी है कि शीघ्र ही देश पराधीनता और अत्याचार के दमन-चक्र से मुक्त होगा और फिर से एक नयी, विराट और भव्य सामाजिक व्यवस्था का उदय होगा।

काव्य-मूल्यों की दृष्टि से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य को स्पष्ट रूप से दो वर्गों में रखा जा सकता है। पहले वर्ग में तो वे रचनाएं आती हैं जो अपने युग-धर्म के साथ सम्बद्ध होने के कारण ही सार्थक हैं। ऐसी रचनाएं प्राय: वे हैं जो इस युग के विशिष्ट आन्दोलनों या तात्कालिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर लिखी गयी थीं। दूसरे वर्ग में वे रचनाएं आती हैं जो अपने युग के लिए तो सार्थक हैं ही, साथ ही उनमें युग-निरपेक्ष उत्कर्ष की स्थिति भी दिखायी देती है। इन रचनाओं में केवल तात्कालिक सामाजिक-राजनीतिक उद्देश्य ही अभिव्यक्त नहीं हुए, अपितु इनमें मानव-जीवन को शक्ति प्रदान करनेवाले साम्य, साधना, न्याय, स्वाधीनता आदि सामान्य मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की गयी है।

unacademy

की दशा के प्रति जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली 'मीर', स्वामी रामतीर्थ और माधवराव सप्रे का विशेष प्रभाव था। वैष्णव-संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। अपने जीवन का आरम्भ इन्होंने एक अध्यापक के रूप में किया था, किन्तु ये पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्यशील रहे और इन्होंने 'प्रभा', 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' का सम्पादन किया। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था। आरम्भ में ये क्रान्ति के दर्शन से प्रभावित हुए थे, किन्तु बाद में इनकी आस्था गांधीवाद की ओर हुई। अपनी राजनीतिक सक्रियता के कारण इन्हें कई बार बन्दी बनाया गया। जेल के जीवन-काल में इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। छायावाद-युग के इनके प्रमुख कविता-संग्रह हैं—'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी'। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गम्भीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना दिखायी देती है। इस मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाये। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इनकी कई रचनाओं में—विशेषकर आरम्भिक रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति को भी वाणी मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति और रहस्य-भावना का प्रभाव दिखायी देता है; किन्तु इनकी रचनाओं का प्रधान स्वर राष्ट्र-प्रेम और आत्मोत्सर्ग का है।

सियारामशरण गुप्त : सियारामशरण गुप्त (१८९५-१९६३) का जन्म उत्तरप्रदेश के ज़िला झांसी के चिरगांव नामक ग्राम में हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। रोग एवं पारिवारिक दुखों के कारण इनका जीवन अत्यन्त दुःखमय रहा। वैसे ये सरलता एवं नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इनकी पहली रचना सन् १९१० में 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसके बाद 'सरस्वती' में कई रचनाएं छपीं। 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मयी', 'बापू', 'दैनिकी' आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियां हैं। गांधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबन्धुत्व, शान्ति आदि गांधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखायी देता है। जिन रचनाओं में इन्होंने प्राचीन भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है, वहां भी ये इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करते दिखायी देते हैं। विषय-प्रतिपादन और अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से जहां इन पर एक ओर द्विवेदीयुगीन रचना-पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है वहां दूसरी ओर ये छायावादी शिल्प से भी प्रत्यक्षतः प्रभावित हैं। इनकी भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है तथा इन्होंने बड़ी सफलता के साथ मुक्त छन्द का प्रयोग किया है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : 'नवीन' जी (१८९७-१९६०) का जन्म ग्वालियर राज्य के भयाना गांव में हुआ था। ग्यारह वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा का आरम्भ हुआ। सन् १९१७ में हाई स्कूल पास करने के बाद ये कानपुर पहुंचे, जहां गणेशशंकर विद्यार्थी ने इन्हें कॉलेज में दाख़िल करा दिया। किन्तु सन् १९२० में ये गांधी जी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। अपने लम्बे राजनीतिक जीवन के दौरान इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। देश के स्वाधीन होने पर ये पहले लोकसभा और फिर राज्यसभा के सदस्य रहे। कुछ समय तक इन्होंने 'प्रभा' और 'प्रताप' का भी सम्पादन किया था। इनकी रचनाएं सन् १९१८ से ही पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं, लेकिन इन्होंने उनको विधिवत् प्रकाशित कराने का कोई प्रयास नहीं किया। 'कुंकुम' (१९३९) इनका पहला कविता-संग्रह है। 'ऊर्मिला' काव्य को इन्होंने सन् १९३४ में ही पूरा कर लिया था,

unacademy

किन्तु उसका प्रकाशन १९७५ ई. में हुआ। इसमें कवि ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्ज्वल रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से—भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से—सम्बद्ध करने के लिए कवि ने कुछ प्रसंगों की अत्यन्त कौशलपूर्वक संयोजना की है। इनके अन्य काव्य-ग्रन्थ हैं—'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि' तथा 'हम विषपायी जनम के'।[1] 'नवीन' जी की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र-प्रेम दोनों भावों की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी प्रणय-सम्बन्धी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छन्दता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य-जैसी मार्मिकता दिखायी देती है। इस रूप में 'नवीन' जी को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा सम्बन्ध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतन्त्रता तथा समाज की नयी रचना के लिए इन्होंने जो अथक साधना की थी, वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दिखायी देती है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों के समान ही इनके काव्य के प्रधान विषय हैं—अतीत की महिमा का गौरव-गान, तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्ण अवस्था के प्रति व्यथा और आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि। किन्तु, इनकी काव्य-चेतना का एक पक्ष बिलकुल निजी और अनुभूति-प्रधान है : "हम अनिकेतन, हम अनिकेतन, हम तो रमते राम हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वतन?" कहीं तो ये अपने फक्कड़पन और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं और कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते हैं : "हो जाने दे ग़र्क नशे में, मत पड़ने दे फ़र्क नशे में।" ये जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर होते हैं, उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप पहली दशा का संघर्ष और तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी और मस्ती दोनों कारण-कार्य-भाव से सम्बद्ध होकर परस्पर पूरक-से लगते हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान : सुभद्रा जी (१९०५-१९४८) का जन्म प्रयाग जिले के निहालपुर गांव में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में ही शिक्षा ग्रहण की। सन् १९२१ में असहयोग-आन्दोलन के प्रभाव से इन्होंने शिक्षा अधूरी ही छोड़ दी और ये राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगीं। अपने राजनीतिक कार्यों के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। काव्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति विद्यार्थी-काल से ही थी। इनकी कविताएं 'त्रिधारा' और 'मुकुल' में संकलित हैं। भाव की दृष्टि से इनकी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में राष्ट्र-प्रेम की कविताएं रखी जा सकती हैं जिनमें इन्होंने असहयोग या आज़ादी की लड़ाई में भाग लेनेवाले वीरों को अपना विषय बनाया है। इनकी 'झांसी की रानी' कविता तो सामान्य जनता में बहुत प्रसिद्ध हुई है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे कविताएं रखी जा सकती हैं जिनकी प्रेरणा इन्हें अपने पारिवारिक जीवन से प्राप्त हुई है। ऐसी कविताओं में कुछ तो पति-प्रेम की भावना से अनुप्राणित हैं और कुछ में सन्तान के प्रति वात्सल्य की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी भाषा शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिये हुए है।

अन्य कवि : छायावाद-युग में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के विकास में जिन अन्य कवियों ने उल्लेखनीय योग दिया अथवा इस धारा के परवर्ती प्रमुख कवियों में से जिन कवियों की एक-दो कृतियां आलोच्य काल में प्रकाश में आयीं उनमें रामनरेश त्रिपाठी, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, दिनकर आदि का उल्लेख आवश्यक है। **रामनरेश त्रिपाठी** (१८८९-१९६०)

unacademy

ने 'मानसी' (१९२७) की कतिपय देशभक्तिपरक कविताओं के अतिरिक्त 'पथिक' (१९२०) और 'स्वप्न' (१९२९) शीर्षक खण्डकाव्यों में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। दोनों काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि हैं। 'पथिक' का नायक जन-जीवन के वैषम्य को दूर करने के उद्देश्य से राजतन्त्र से लोहा लेता है और अन्त में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना तथा अपने परिवार का बलिदान कर देता है। 'स्वप्न' में कवि ने एक ऐसे संवेदनशील नायक की कथा का वर्णन किया है जो पहले तो स्वार्थ और लोक-सेवा अथवा व्यक्तिगत सुख और समाज-कल्याण में विरोध देखता है, किन्तु फिर उसे कर्त्तव्य का बोध होता है और वह देश के कल्याण के लिए पूरी शक्ति से कर्मलीन होता है। 'पथिक' के विपरीत इस काव्य का अन्त सुखद है। इन दोनों काव्यों में कवि ने राष्ट्र-सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज-विरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज ही कवि के सामाजिक यथार्थ से सम्बद्ध होकर अधिक सार्थक बन गये हैं। **उदयशंकर भट्ट** (१८९८-१९६६) के आख्यान-काव्य 'तक्षशिला' (१९२९) की गणना भी प्रस्तुत काव्यधारा के अन्तर्गत की जा सकती है—भारत की सांस्कृतिक गुण-गाथा की अभिव्यक्ति इस रचना का मुख्य अभीष्ट है। **जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द** (१९०७-१९८६) के 'जीवन-संगीत' में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना को व्यक्त करनेवाली कविताएं संकलित हैं। इनकी रचना १९२२ से १९३६ के मध्य हुई थी। **दिनकर**-कृत 'रेणुका' (१९३५) भी इसी शैली का कविता-संग्रह है। रूढ़ि-विद्रोह, नवयुग की स्फूर्ति और ओजस्विता की दृष्टि से इसकी कविताएं अप्रतिम हैं। इस सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की 'स्वदेश-संगीत' (१९२५), कवि 'त्रिशूल' (गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही') की 'राष्ट्रीय मन्त्र' (१९२१), केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की 'ज्वाला' (१९२९), महेशचन्द्र प्रसाद की 'कांग्रेस शतक' (१९३६) आदि रचनाओं का उल्लेख भी आवश्यक है—उस युग की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-चेतना को गतिमान करने में इन कृतियों का योगदान अविस्मरणीय है।

unacademy

छायावादोत्तर काव्य

तरकनाथ बाली (नगेन्द्र)

unacademy

काव्यधारा

छायावादोत्तर काल की रचनाओं की परीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत कालावधि के काव्य-साहित्य की अनेक प्रवृत्तियां है। इस बीच का इतिहास कई वादों और धाराओं से होकर गुजरा है। कई-कई जीवन-दृष्टियां तथा काव्य की वस्तु और शिल्प सम्बन्धी मान्यताएं उभरी हैं। किसी धारा में व्यक्तिगत अनुभूति का घनत्व अधिक है, तो किसी में सामाजिक अनुभूति की स्फीति। किसी में रोमानी दृष्टि की प्रधानता है, तो किसी में बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की। कृतियों के आधार पर यदि हम इन अनेक दृष्टियों, मान्यताओं और रचना-रूपों का वर्गीकरण करें तो स्पष्ट रूप से पांच-छह काव्य-धाराएं उभरकर आती लक्षित होती हैं। उन्हें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, क्रमागत छायावादी काव्यधारा या उत्तर-छायावाद, वैयक्तिक गीतिकाव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता कहा जा सकता है। इनमें से पहली दो धाराएं नयी नहीं हैं। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा भारतेन्दु-काल से प्रारम्भ होकर द्विवेदी-काल, छायावाद-काल को पार करती हुई इस काल की कविताओं में समकालीन प्रश्नों, स्वरों से संयुक्त होकर और भी उदार और वैविध्यपूर्ण हो गयी। छायावादी काव्यधारा छायावाद-काल में अपना पूर्ण उत्कर्ष प्राप्त कर चुकी थी और परम्परा के निर्वाह-सी इस काल में भी बहती हुई दिखायी पड़ती है। शेष धाराएं प्रस्तुत काल की ही उपज हैं। वे अपने-अपने ढंग से ऐतिहासिक अनिवार्यता के गर्भ से फूटी हैं।

प्रस्तुत युग में कुछ कृतियां ऐसी भी हैं जिनमें एक ही साथ कई धाराएं दिखायी पड़ती हैं। इन्हें भले ही किसी एक वर्ग में न रखा जा सके, किन्तु ये इस बीच उभरनेवाली एकाधिक काव्य-प्रवृत्तियों का निर्देश तो करती ही हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष कृतियां स्पष्ट रूप से किसी-न-किसी धारा या प्रवृत्ति का स्वरूप निर्धारित करती हैं। इनका वर्गीकरण करें तो चित्र कुछ इस प्रकार होगा—'नहुष', 'कुणालगीत', 'अजित', 'जयभारत' (मैथिलीशरण गुप्त); 'माता', 'समर्पण', 'युगचरण' (माखनलाल चतुर्वेदी); 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबा-स्तवन', 'हम विषपायी जनम के' (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'); 'नकुल', 'नोआखाली', 'जयहिन्द', 'आत्मोत्सर्ग', 'उन्मुक्त', 'गोपिका' (सियारामशरण गुप्त); 'हुंकार', 'द्वन्द्वगीत', 'कुरुक्षेत्र', 'इतिहास के आंसू', 'रश्मिरथी',

unacademy

'धूप और धुआं', 'दिल्ली' (दिनकर); 'वासवदत्ता', 'मैरवी', 'कुणाल', 'चित्रा', 'युगाधार' (मोहनलाल द्विवेदी); 'सूत की माला' (बच्चन); 'हल्दीघाटी', 'जौहर' (श्यामनारायण पाण्डेय); 'विक्रमादित्य' (गुरुभक्तसिंह 'भक्त'); 'विसर्जन', 'मानसी', 'अमृत और विष', 'युगदीप', 'यथार्थ और कल्पना', 'एकला चलो रे', 'विजयपथ' (उदयशंकर भट्ट); 'काल दहन', 'तप्तगृह', 'कैकेयी', 'दानवीर कर्ण' (केदारनाथ मिश्र प्रभात) **राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा** की कृतियां हैं। इनमें 'गोपिका', 'अपलक', 'क्वासि' और 'चित्रा' ऐसी कृतियां हैं जिनमें राष्ट्रीय स्वर गौण है, प्रेम का स्वर प्रधान है। 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' (निराला); 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'मधुज्वाल', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'रजतशिखर', 'शिल्पी', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चांद', 'लोकायतन' (सुमित्रानन्दन पन्त); 'दीपशिखा (महादेवी वर्मा); 'रूप अरूप', 'शिप्रा', 'मेघगीत', 'अवन्तिका' (जानकीवल्लभ शास्त्री) **उत्तर-छायावाद** की कृतियां हैं। 'अणिमा' में कुछ कविताएं राष्ट्रीय और सांस्कृतिक व्यक्तित्वों पर भी हैं। पन्त जी की इस काल की सभी उत्तर-छायावादी कृतियों में सांस्कृतिक स्वर सुनायी पड़ता है। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय की एक बेचैनी इनमें बराबर लक्षित होती है। इस तरह इन कृतियों का मूल स्वर तो छायावाद है, किन्तु विषय की दृष्टि से इन्हें अन्यान्य धाराओं से भी जोड़ा जा सकता है।

रोमानी धारा में आनेवाली, किन्तु छायावाद से अलग, ऐसी अनेक कृतियां हैं जो एक नयी प्रवृत्ति को सूचित करती हैं, जिसे **वैयक्तिक प्रगीत कविता** कहा जा सकता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत आनेवाली कृतियां हैं—'निशा निमन्त्रण', 'आकुल अन्तर', 'सतरंगिनी', 'मिलन यामिनी' (हरिवंशराय बच्चन); 'रसवन्ती' (दिनकर); 'प्रभातफेरी', 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल', 'कदलीवन' (नरेन्द्र शर्मा); 'मधूलिका', 'अपराजिता', 'किरणवेला', 'लाल चूनर' (रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'); 'कलापी', 'संचयिता', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य' (आरसीप्रसाद सिंह); 'रूपरश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल', 'मन्वन्तर', 'दिवालोक' (शम्भुनाथ सिंह); 'पैरी', 'पंचमी', 'रागिनी', 'नवीन' (गोपालसिंह नेपाली); 'नींद के बादल' (केदारनाथ अग्रवाल); 'मंजीर' (गिरिजाकुमार माथुर); 'छवि के बन्धन' (भारतभूषण अग्रवाल)।

(गिरिजाकुमार माथुर); 'छवि के बन्धन' (भारतभूषण अग्रवाल)।

'युगवाणी', 'ग्राम्या' (पन्त); 'कुकुरमुत्ता' (निराला); 'युग की गंगा' (केदारनाथ अग्रवाल); 'युगधारा (नागार्जुन); 'धरती' (त्रिलोचन); 'जीवन के गान', 'प्रलय सृजन' (शिवमंगलसिंह 'सुमन'); 'अजेय खंडहर', 'पिघलते पत्थर', 'मेधावी' (रांगेय राघव); 'मुक्तिमार्ग', 'जागते रहो' (भारतभूषण अग्रवाल) **प्रगतिवादी धारा** की सृष्टि करती हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त नरेन्द्र शर्मा, अंचल, आरसीप्रसाद सिंह और शम्भुनाथ सिंह की उपर्युक्त पुस्तकों की अनेक कविताएं ऐसी हैं जो इस धारा के अन्तर्गत आती हैं।

प्रगतिवाद और वैयक्तिक कविता-धारा की कृतियों के साथ-साथ कुछ ऐसी कृतियां भी सामने आयीं जिन्हें **प्रयोगवादी** कृतियां कहा गया। प्रगतिवादी और वैयक्तिक धारा की कविताएं १९३५ ई. के आसपास प्रारम्भ हो गयी थीं, किन्तु प्रयोगवादी धारा की कविताएं १९४३ ई. के आसपास उभरती हुई दीखती हैं; फिर सभी साथ-साथ चलती हैं। 'तार सप्तक' (सं. अज्ञेय), 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर' (अज्ञेय); 'नाश और निर्माण' (गिरिजाकुमार माथुर); 'ठंडा लोहा' (धर्मवीर भारती) तथा 'दूसरा सप्तक' इस धारा की कृतियां हैं। प्रयोगवाद आगे चलकर नयी कविता में पर्यवसित हो गया। इसलिए नयी कविता में प्रयोगवाद के बहुत-से तत्व मिलते हैं, फिर भी उसका स्वतन्त्र विकास हुआ।

unacademy

बहुत-से कवि ऐसे हैं जो दोनों धाराओं में हैं, इसलिए उनकी कृतियों को लेकर बहुत साफ तौर पर यह कह पाना कठिन है कि कहां तक वे प्रयोगवादी हैं और कहां से नयी कविता के कवि हो जाते हैं। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि सन् १९५० के बाद नये भावबोध की जो कविताएं लिखी गयीं वे **नयी कविता** हैं और प्रयोगवादियों की भी सन् पचास के बाद की कविताओं को नयी कविता कह सकते हैं। फिर भी १९५२ ई. में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' की अधिकांश कविताएं अपने व्यक्तिवादी रूप के कारण प्रयोगवाद में ही शरीक की जाती हैं। इसलिए नयी कविता को प्रयोगवाद के ही क्रम में देखना चाहिए। यदि सन् १९५० को विभाजक रेखा माना जाय, तो 'दूसरा सप्तक' की कुछ कविताएं, 'तीसरा सप्तक', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं', 'पहले सन्नाटा बुनता हूं' (अज्ञेय); 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले' (गिरिजाकुमार माथुर); 'अर्द्धशती' (बालकृष्ण राव); 'अनागता की आंखें', 'शून्य पुरुष और वस्तुएं' (वीरेन्द्रकुमार जैन); 'माध्यम मैं', 'खंडित सेतु' (शम्भुनाथ सिंह); 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं', 'चुका भी नहीं हूं मैं' (शमशेर); 'गीत फ़रोश', 'चकित है दुःख', 'बुनी हुई रस्सी', 'खुशबू के शिलालेख' (भवानीप्रसाद मिश्र); 'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण', 'मेपल' (प्रभाकर माचवे); 'चांद का मुंह टेढ़ा है' (मुक्तिबोध); 'ओ अप्रस्तुत मन' (भारतभूषण अग्रवाल); 'वन पाखी सुनो', 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता); 'सात गीत वर्ष', 'कनुप्रिया', 'अन्धा युग' (भारती); 'मृग और तृष्णा' (हरिनारायण व्यास); 'मछली घर' (विजयदेवनारायण साही); 'काठ की घंटियां', 'बांस के पुल', 'एक सूनी नाव', 'कुआनो नदी' (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना); 'चक्रव्यूह', 'परिवेश हम तुम', 'आत्मजयी' (कुंवर नारायण); 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हंसो जल्दी हंसो' (रघुवीर सहाय); 'वंशी और मादल' (ठाकुरप्रसाद सिंह); 'नाव के पांव', 'युग्म', 'हिमविद्ध' (जगदीश गुप्त); 'इतिहास पुरुष' (डॉ. देवराज); 'माया दर्पण' (श्रीकान्त वर्मा); 'अंकित होने दो', 'अकेले कंठ की पुकार' (अजितकुमार); 'मुक्ति प्रसंग' (राजकमल चौधरी); 'एक कंठ विषपायी', 'साये में धूप' (दुष्यंत कुमार); 'अतुकान्त', 'तीसरा पक्ष' (लक्ष्मीकान्त वर्मा); 'कविताएं' (कीर्ति चौधरी); 'आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएं' (राजीव सक्सेना); 'अभी बिलकुल अभी' (केदारनाथ सिंह); 'उजली कसौटी' (राजेन्द्रप्रसाद सिंह); 'बैरंग बेनाम चिट्ठियां', 'पक गयी है धूप' (रामदरश मिश्र); 'इतिहास का दर्द' (रणजीत); 'कल सुबह होने के बाद' (शलभ श्रीराम सिंह); 'संसद से सड़क तक' (धूमिल); 'नाटक जारी है' (लीलाधर जगूड़ी); 'दीवारों पर खून से' (चन्द्रकान्त देवताले); 'आकाश विभाजित है' (विष्णुचन्द्र शर्मा); 'अंगीरस' (ऋतुराज); 'जो नितान्त मेरी है' (बालस्वरूप राही); 'एक पुरुष और' (डॉ. विनय); 'इस हादसे में' (नरेन्द्रमोहन); 'त्रास' (विजेन्द्र) तथा वे सब कृतियां जिनकी चर्चा सप्तकों के बाहर के कवियों के सन्दर्भ में की गयी है, नयी कविता की कृतियां है। इस सन्दर्भ में 'कल्पना', 'कृति', 'लहर', 'ज्ञानोदय', 'कवि' आदि मासिक पत्रिकाओं तथा नयी कविता से सम्बन्धित निम्नलिखित त्रैमासिक या अर्द्धवार्षिक और वार्षिक पत्रिकाओं तथा संकलनों का अनुशीलन भी अभीष्ट है :

प्रतीक (सं. अज्ञेय); 'कविता' (सं. भागीरथ भार्गव); 'निकष' (सं. धर्मवीर भारती); 'संकेत' (सं. उपेन्द्रनाथ अश्क); 'आधुनिक कविताएं' (सं. रणधीर सिन्हा); 'नयी कविता' (सं. जगदीश गुप्त); 'कविताएं सन १९५४, १९६३, १९६४, १९६५' (अजितकुमार-देवीशंकर अवस्थी तथा

unacademy

अजितकुमार-विश्वनाथ त्रिपाठी); 'कविताएँ सन १९४७-५८' (सं. सुरेन्द्र चतुर्वेदी-रामबहादुर मुक्त); 'संचेतना' का विचार कविता अंक (सं. प्रदीपसिंह और नरेन्द्र मोहन); 'निषेध' (सं. जगदीश चतुर्वेदी); 'पहचान' शृंखला के संकलन (सं. अशोक वाजपेयी)।

उत्तर-छायावाद

वास्तव में इस अवधि के छायावाद का इतिहास मूलत: निराला और पन्त के काव्य-विकास का इतिहास है। यों छायावाद की शैली में मिलनेवाले और भी बहुत-से लोग आये, किन्तु उनमें अपना कोई उन्मेष नहीं। वे इस धारा को स्फीति भले ही दे सके हों, कोई वैशिष्ट्य नहीं प्रदान कर सके। इसलिए उनकी चर्चा अनपेक्षित है। महादेवी जी की 'दीपशिखा' उनकी रचनाओं के क्रम में ही अगली कड़ी के रूप में आयी, इसलिए उन्हें भी पहले की महादेवी से मूलत: अलग नहीं किया जा सकता और फिर उसके बाद तो वे मौन हो गयीं।

निराला : निराला के गीत छायावाद से अलग न हटकर उसकी सम्भावनाओं से निर्मित हैं। किन्तु उनमें एक बहुत बड़ी शक्ति का विकास होता गया है—वह है लोकोन्मुखता। निराला की छायावादी कविताओं में निराला का लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही झलकता रहा है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक-सम्पृक्त रहा है, इसलिए वे स्वभावत: प्रेम-सौन्दर्य के बोध के साथ-साथ जीवन के अन्य अनुभवों को अपने में समेट लेते हैं और व्यक्तिगत प्रणय के ही गीत न गाकर लोक-जीवन के सुख-दु:ख को, यातना और संघर्ष को गहराई से उभारते हैं और उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी एकान्तवासिनी न रहकर प्राय: लोकगन्ध से उष्ण हो उठती है। निराला की यह विशेषता प्रस्तुत अवधि में अधिक विकसित होती गयी है। उनकी यह लोकोन्मुखता दो रूपों में आयी—१. छायावाद से एकदम अलग हटकर कवि ने प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, २. उनकी छायावादी काव्यधारा का स्वर अधिक लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवादी कविताओं में छन्द, भाषा और भावभूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त हैं। 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी

छायावादी काव्यधारा का स्वर अधिक लोकोन्मुख
और भावभूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त हैं। 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी
और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नये पत्ते' की अधिकांश
कविताएं इस प्रकार की कविताएं हैं। इनमें प्रगतिशीलता अपने दार्शनिक रूप में नहीं है, बल्कि लोकानुभूतियों के रूप में है। इन कविताओं की भाषा लोक की है, मुहावरे लोक के हैं, शैली लोक की है। इनमें लोककथात्मक तथा संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार निराला इस बात को समझते थे कि लोक-जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य, व्यापार में नहीं लिया जा सकता; उसके लिए उसकी भाषा भी आवश्यक होती है दूसरी ओर, पन्त इस बात को समझते हुए भी इसे चरितार्थ नहीं कर सके।

'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' आदि में संकलित इधर की छायावादी कविता में निराला ने एक ओर तो स्वानुभूतिपरक गीत लिखे हैं तथा दूसरी ओर विजयलक्ष्मी पंडित, प्रेमानन्द जी, सन्त रविदास, प्रसाद जी, महात्मा बुद्ध आदि विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों पर कविताएं लिखी हैं। ये गीत कई तरह के हैं—इनमें प्रेम की संवेदना भी है और प्रार्थना-परकता भी। अन्य प्रकार की मानवीय संवेदनाएं भी इनमें व्यक्त हुई हैं। ये सारी बातें निराला की १९३८ ई. से पहले की कविताओं में भी हैं, उनका अनुपात भले ही थोड़ा भिन्न हो। 'तुलसीदास' इस अवधि की इनकी विशिष्ट देन है। इसमें भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का संकल्प है। निराला की इस अवधि की नयी

unacademy

देन है—उनकी लोकवादी कविताएं, जो वास्तव में कविता की उपलब्धि के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकतीं, वरन् वस्तु और भाषा के एक नये प्रयोग के रूप में ही महत्त्व प्राप्त करती हैं। ये कविताएं एक ठहराव को तोड़ती हैं और कवि को पुन: समग्र भाव से जन-जीवन से जोड़ती हैं। निराला की इस अवधि की कविताओं में उनकी जीवनानुभूति के जो स्वर उभरे उनमें टूटन और पराजय भी थी। टूटन और पराजय की यह प्रवृत्ति कवि को भक्ति की ओर उन्मुख करती है। साथ ही कवि का असन्तुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव का कुछ ऐसा मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएं उलझे प्रभाव से ग्रस्त हो गयी हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त : पन्त जी के इस काल के काव्य-साहित्य का विश्लेषण किया जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि ये अपने चिन्तन और विषय में अधिक विकासशील रहे और चूंकि ये अपने संस्कार और भाषा में मूलत: छायावादी ही रहे, अत: यह कहा जा सकता है कि पन्त के माध्यम से छायावाद को इस अवधि में नया चिन्तन और नया विषय-जगत् प्राप्त हुआ है। सन् १९३६ में 'युगान्त' की घोषणा कर पन्त ने १९३९ में 'युगवाणी' और १९४० में 'ग्राम्या' की रचना की। इसलिए वे मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जन-जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुए। यहां निराला और पन्त के अन्तर को समझ लेना चाहिए। निराला ने चिन्तन के माध्यम से नहीं, संवेदना और अनुभव के माध्यम से जन-जीवन को ग्रहण किया; इसलिए उनकी कविताओं में मार्क्सवाद या समाजवाद का दर्शन कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं पा सका, वहां जन-जीवन अपने समस्त संवेदन के साथ उभरा। दूसरी ओर पन्त ने मार्क्सवादी दर्शन को चिन्तन के स्तर पर स्वीकार किया। वे प्राय: मार्क्सवादी सिद्धान्तों को ही व्यक्त करते रहे हैं :

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्त्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अन्तर दर्पण,
स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अन्तर परिवर्तन।

कहना न होगा कि कवि ने मार्क्सवादी दृष्टि से आलोक में गांव के जीवन की विविध यथार्थ-छवियों का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुशल शिल्पी पन्त ने गांव के जीवन-यथार्थ को जितना उसके रंग-रूप में पकड़ा है, उतना भीतर की चेतना में नहीं।

यह बात तब और भी स्पष्ट हो उठती है जब पन्त जी 'ग्राम्या' से आगे की यात्रा में अरविन्द-दर्शन से प्रभावित हो उठते हैं। बीच में प्रगतिवाद के भौतिक दर्शन की ओर भटके हुए उनके विचार पुन: आध्यात्मिक लोक की ओर उठने लगते हैं। इस प्रकार विचार के स्तर पर छायावाद को एक नयी दिशा और समृद्ध आधार प्राप्त होता है। कवि मार्क्स के भौतिकवाद से सन्तुष्ट नहीं है, किन्तु फिर भी उसे आवश्यक मानता है। कवि आरम्भ से ही मनुष्य-मात्र के सुख, प्रेम, शान्ति का स्वप्न देखता रहा है। इस मायावी स्वप्न को उसने रूप देना चाहा तो मार्क्सवाद में उसे आलोक दिखायी पड़ा, किन्तु पुन: उसे ऐसा लगा कि मार्क्सवाद एकांगी है, केवल भौतिक योगक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। अत: कवि इसे आवश्यक मानते हुए भी पर्याप्त नहीं मानता और अरविन्दवाद में भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वय ढूंढता है। कवि ने 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', 'लोकायतन' आदि परवर्ती कृतियों में इसी समन्वय को स्वर दिया है, इस विकास-यात्रा में पन्त का काव्य-पक्ष

आहत हो गया है, धारणा-पक्ष उठता गया है। कारण यही है कि वे मानव-समाज की समस्याओं, उनके समाधान और नये विचारों को धारणा और आकांक्षा के स्तर पर स्वीकार करते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। इसलिए चाहे मार्क्सवाद हो, चाहे अरविन्दवाद—वह पन्त-काव्य को समृद्ध बनाने में सहायक प्राय: नहीं हुआ है।

महादेवी वर्मा : महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' में उनकी क्रमागत भावधारा का ही उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। प्रेम उनका मुख्य विषय है। कवयित्री ने संयोग और वियोग में उभरनेवाले प्रेम के अनेक कोणों को अपने अनुभव के आलोक में देखा है। वेदना महादेवी की मूल संवेदना है, यह वेदना विरहजन्य है। करुण वेदना और निराशा से आक्रान्त इनका प्रारम्भिक काव्य 'दीपशिखा' में कुछ आलोक पा सका है—आशा का, उल्लास का, मिलन का। यथा :

(अ) सब बुझे दीपक जला लूं।
घिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।
(आ) हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन
अगरु धूम सी सांस सुरभिगन्ध सुरभित।

महादेवी में गीतिकाव्य के उत्कर्ष की सुन्दर भावनाएं हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुण्ठित कर देता है। कवयित्री के पास सीमित संवेदनाएं हैं, इन्हें वह भिन्न-भिन्न प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त करती है। ये प्रतीक और रूपक भी बहुत सीमित और अभिजात हैं। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएं रहस्यवादी आभास से लिपटकर निश्चय ही नये अर्थ का विस्तार करती हैं, किन्तु साथ ही अपनी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता और तीव्रता खो देती हैं। दीप, चन्दन, मन्दिर, क्षितिज, आकाश, करुण, धूल, मेघ, विद्युत, सागर आदि प्रतीक और शब्द बार-बार आते हैं और रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इन निजी और छायावादी सीमाओं के बावजूद महादेवी जी छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति। रहस्य और संकोच के आवरण के बावजूद कवयित्री की अन्तरंग निजता गीतों में बहती रहती है। जहां कहीं वह पारदर्शी हो जाती है या जहां समग्र दृश्य सिमटकर उसी की ओर संकेत करने लगते हैं, वहां वे बहुत उत्कृष्ट गीतों की रचना करती हैं। महादेवी की दूसरी विशेषता है—सूक्ष्म चित्रात्मकता। ये चित्र रूपजगत् और भावजगत्—दोनों के हैं किन्तु रूपजगत् के चित्र भी कवयित्री के मानसिक सन्दर्भ में ही नियोजित होते हैं। लोक-परिवेश और लोकभाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करनेवाले, भाषा की अभिजात छवि से मण्डित ये गीत शब्द-चयन, पद-सन्तुलन, बिम्ब-ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर-लय में बहुत विशिष्ट हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री : शास्त्री जी मूलत: गीतकार हैं और इनके गीतों में छायावादी गीतों के ही संस्कार शेष हैं। ये गीत छायावादी गीतों से अधिक खुले हुए अवश्य हैं, किन्तु इनकी संवेदना और गूंज-अनगूंज प्राय: वैसी ही है। परम्परागत दर्शन संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तर छायावाद युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और इनका अपना आकर्षण है। 'रूप अरूप' 'शिप्रा', 'मेघगीत' और 'अवन्तिका' इनकी प्रमुख काव्य-कृतियां हैं।

इन कवियों के अतिरिक्त उत्तर-छायावाद के अन्य उल्लेख्य कवि हैं—रामकुमार वर्मा ('उर्वशी', 'रूपराशि', 'चित्ररेखा', 'चन्द्रकिरण' और 'एकलव्य'), सुमित्राकुमारी सिन्हा

('विहाग', 'पायिनी') और विद्यावती कोकिल ('अंकुरिता' और 'सुहागिन')।

व्यक्तिवादी गीतिकविता

इस धारा के कवियों तथा छायावादी कवियों में दृष्टि और विषय की बड़ी समानता है। इन कवियों की भी दृष्टि रोमानी है, वस्तुजगत् के प्रति इनकी भी प्रतिक्रिया अत्यन्त भावात्मक है। ये भी वस्तुजगत् से नहीं, वस्तुजगत् की प्रक्रिया से उत्पन्न अपने निजी सुख-दुःख के आवेग से सम्बद्ध थे; इसलिए इनकी कविताओं में भी मर्यकर आत्म-सम्पृक्ति और उत्तेजना मिलती है। इनका भी विषय मूलतः सौन्दर्य और प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास और विषाद की अनुभूति है। इनकी भी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम गीत ही है क्योंकि इनके भी काव्य-विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। किन्तु इन कृतियों में छायावादी कविता जैसा संकोच, रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता नहीं है, साहस के साथ सीधे साफ़ तौर पर अपने निजी प्रेम-संवेग तथा सुख-दुःख को कहने की आकुलता है। इनकी वेदना छायावाद की घिसती हुई वेदना की तरह सामान्य नहीं, वरन् निजी प्रतीत होती है। अतः उससे अनुभव का एक विशिष्ट बिम्ब उभरता लक्षित होता है। यह अवश्य है कि इनके ये अनुभव-बिम्ब छायावाद के सुन्दर अनुभवों-बिम्बों के समान सूक्ष्म, संश्लिष्ट और गहरे नहीं हैं, किन्तु जो कुछ है वह खुल नहीं ओढ़ता, उघड़े ही रूप में उभरकर सहज प्रवाह का सुख देता है। छायावादी कविता भी प्रायः 'मैं' के माध्यम से अपना अनुभव उभारती है और व्यक्तिवादी गीतिकविता भी। किन्तु, छायावाद का 'मैं' संकोच या मर्यादा के आतंक का अनुभव करने के कारण तीव्रता से आलोकित होने के स्थान पर मन्द-मन्द दीप्त होता है जबकि व्यक्तिवादी गीतिकविता का 'मैं' अपने समूचे राग-विराग के साथ निर्व्याज भाव से फूट चलता है।

यदि हम इस धारा में आनेवाली कृतियों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि लौकिक प्रेम इनकी केंद्रीय वृत्ति है। प्रेम के संयोग-वियोगजन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन, असन्तोष आदि का सघन स्वर इन कविताओं में मुखर हुआ। परिस्थिति, अनुभव और संस्कार के अनुसार कवियों के स्वरों में भिन्नता अवश्य है, किन्तु मूल वृत्ति में अन्तर नहीं। इनका प्रेम किसी लौकिक सौन्दर्य-आलम्बन पर ठहरा होने के कारण अधिक मूर्त रूप धारण करता है। इनका हर्ष-विषाद न तो आदर्श का छल ओढ़ता है और न धरती-आकाश के बीच झुकता है, वह शुद्ध धरती पर यात्रा करता है—धरती के परिवेश के बीच, और अपने-अपने रूप में बहुत ही उघड़ा हुआ होता है। बच्चन के 'निशा-निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' काव्य यदि प्रेम के अवसाद के घनत्व को मुखर करते हैं तो 'मिलन-यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह की व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौन्दर्य, भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी हैं। यह स्थिति अंचल, नवीन, दिनकर आदि की इस धारा में आनेवाली कृतियों में भी देखी जा सकती है।

वस्तुतः इस धारा की कृतियों का मूल स्वर प्रेम है और प्रेमजन्य व्यथा तथा उदासी वहीं से वहां तक व्याप्त है। इनकी स्वच्छन्द वृत्ति सौन्दर्य और प्रेम की भूख लिये उड़ती थी, वह भूख तृप्त नहीं हो पाती थी, स्वच्छन्द उड़ान सामाजिक इतिबन्धों से टकराती थी और टूटकर विरह की पीड़ा बन जाती थी। कवि अनुभव करता था कि संसार को उसके ये गान वासना के गान लग रहे हैं, इसलिए उसे स्वीकार्य नहीं है। किन्तु, कवि इन्हें अपने अनुभव का गान मानता था। इन अनुभव-सत्यों को

unacademy

उसका स्वच्छन्द हृदय अनियन्त्रित भाव से गाना चाहता था। बच्चन ने अपने और समाज के इस तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में कहा है :

(अ) कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।
(आ) वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी?
(इ) शत्रु मेरा बन गया है छलरहित व्यवहार मेरा।

इस धारा की कृतियों में निराशा और उदासी का जो स्वर है, वह केवल प्रेममूलक नहीं है, वह जीवन के अन्य सन्दर्भों में भी मुखर हुआ है। देश की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक रिक्तता के भयंकर अहसास से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छन्द, संवेदनशील युवा मानस बार-बार अपने को टूटता हुआ पा रहा था। उसका व्यक्तिवादी आक्रोश-स्वर सारी असुन्दर वस्तुओं को अस्वीकार करता हुआ, और स्वयं कहीं स्वीकृत न होता हुआ, अपने ही में लौट आता था। वह आत्मपीड़न, टूटन, कुण्ठा की एक नयी पर्त लपेट लेता था और उसे गाता चलता था। इनके पास जीवन-दृष्टि नहीं थी—न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि और न नवीन समाजवादी दृष्टि। ये कवि अपने अनुभवों से परिचालित हो रहे थे, उनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव थे। उनकी दृष्टि रोमानी थी, अतः ये व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके, न आध्यात्मिक आदर्शों से। जीवन-दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, मृत्यु की छाया और नियति-बोध से ग्रस्त हैं। ये अनुभव जहां अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, परन्तु खुले हुए बिम्बों की रचना में एक नये साहित्यिक सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं वहां अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और दुहराव में क्षयोन्मुख दीखने लगते हैं और जहां ये काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाते हैं वहां अपनी सार्थकता किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाते :

कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लुटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किन्तु अकेला आज मैं। (एकान्त संगीत)

वह चारों ओर अवसाद देखता है। जो अवसाद है, वह खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि के साथ ईश्वर नहीं है, देवता नहीं है, रूढ़ समाज नहीं है, संस्था नहीं है; इसलिए वह किसी प्रकार के आश्रय का आभास नहीं पाता, उसे यदि कोई सहारा नज़र आता है तो केवल प्रेयसी से मिलन का, किन्तु वह भी कहां हो पाता है? इसलिए कवि अपनी नंगी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष, बेलौस झेलता हुआ जीवन को असफल और निराधार अनुभव करता है।

इस प्रकार की व्यक्तिवादी अनुभव-यात्रा के दो परिणाम दिखायी पड़ते हैं—एक तो यह विश्वास कि जीवन क्षणभंगुर है; इस अवसाद के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो, आगे-पीछे मत देखो। दूसरा यह कि कवि अपने ग़म को ग़लत करने के लिए मधु का सहारा लेता है; और सारे सहारे तो छूट चुके हैं। इतना ही नहीं, वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास की उत्तेजना को तीव्र करने के लिए भी मधु का पान करना चाहता है। यह मधु धीरे-धीरे इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन-सत्यों का प्रतीक बन जाता है, जैसा कि 'मधुशाला', 'मधुबाला' आदि में हुआ है।

unacademy

इस धारा की प्रमुख कृतियों में कहीं-कहीं प्रगतिवादी कविता का-सा विद्रोह ध्वनित हुआ है जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल', नरेन्द्र शर्मा के 'अग्निशस्य', केदार की 'किरण बेला', शम्भुनाथ 'मन्वन्तर' आदि में। इन कवियों में लक्षित होनेवाला विद्रोह का स्वर व्यक्तिगत अस्वीकृति का सामाजिक असन्तोष—दोनों रूपों में है। लेकिन इस धारा का समस्त विद्रोह-स्वर मूलतः समान है उसमें व्यक्तिगत भावावेश अधिक है, सामाजिक दर्शन और रचनात्मक चिन्तन कम।

वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्तिमूलक सादगी उसकी एक बहुत बड़ी देन है। कवि सीधे-सादे शब्दों, परिचित बिंबों और सहज कथन-भंगिमा के द्वारा अपनी बात बड़ी सफाई से कह देते हैं। इसलिए कवि की शक्तियां और अशक्तियां दोनों बड़ी स्पष्टता से उभरती हैं। शक्तियां अस्पष्ट बिम्बों में उलझकर अपनी तीव्रता और प्रभाव नहीं खोतीं और अशक्तियां रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर महान् होने का आभास नहीं दे पातीं। यद्यपि इन कवियों की संवेदना व्यक्तिवादी है, किन्तु वे अपने को जिस माध्यम—परिवेश, प्रकृति-चित्र, बिम्ब, उपमा, भाषा आदि—के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा अति परिचित होता है, लोक के निकट का होता है, अतएव मांसल और मूर्त प्रतीत होता है। यद्यपि इस धारा की कविता की भी भाषा मूलतः संस्कृतनिष्ठ है, किन्तु उसके शब्द या पद हमारे निकट के लगते हैं। बोलचाल के शब्द और मुहावरे भी इनमें पर्याप्त मात्रा में आये हैं। कुल मिलाकर यह जीवन्त भाषा प्रतीत होती है।

हरिवंशराय 'बच्चन' : बच्चन इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस धारा की समस्त सम्भावनाएं और सीमाएं बच्चन में पुंजीभूत हैं। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं इसलिए उनकी जिन कृतियों में आत्मानुभूति की सघनता है, वे अपने प्रभाव में तीव्र और मर्मस्पर्शी हैं। जिन कृतियों में आत्मानुभूति के साथ अवधारणाओं का संयोग होता चला है, उनमें प्रभाव की अन्विति टूट-टूट गयी है। लगता है कवि अपनी बात कहने के बाद उसे 'जनरलाइज़' करने लगता है। 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' और 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से जहां गीतिकाव्य की उपलब्धियां हैं वहां अवधारणाएं अनुभूतियों के रंग में भीग गयी हैं। कवि ने स्वानुभूतिजन्य सुख-दुःख, सौन्दर्य और प्रेम के उन्मुक्त सहज गीत गाये हैं, किन्तु उसका स्वर यहीं तक सीमित नहीं है। वह सामाजिक विसंगतियों का भी चित्रण करता है तथा उनके प्रति विद्रोह भी करता है।

प्रार्थना मत कर मत कर मत कर
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित अविचल प्रतिपल
मनुज पराजय के स्मारक हैं
मठ, मस्जिद, गिरजाघर। **(एकान्त संगीत)**।

किन्तु लगता है विद्रोह या सामाजिक सत्य-चित्रण बच्चन के स्वभाव में नहीं अंटते, इसके लिए जिस सामाजिक जीवन-भोग और बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह बच्चन या इस धारा के किसी कवि में नहीं है। बच्चन के गीत जहां अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के कारण गीतिकाव्य को नयी गरिमा प्रदान करते हैं वहां कहीं-कहीं उत्तेजना, भाषा के सपाटपन, छन्दों, बिम्बों के अप्रत्यय तथा रूढ़ीति के कारण बहुत प्रभावहीन सिद्ध होते हैं। जैसे 'जो बीत गयी सो बीत गयी' गीत का आरम्भ एक अवधारणा से होता है और इस अवधारणा को स्पष्ट करने

unacademy

के लिए कवि ने अनावश्यक रूप से तीन चित्र लिये हैं। कहा जा सकता है कि बच्चन के काव्य-सौन्दर्य का धरातल बहुत विषम है—कहीं काफ़ी ऊंचा, कहीं नीचा या सपाट। अपनी धारा के अन्य कवियों से बच्चन इस बात में अलग हैं कि जहां और लोगों ने बाद में अपने को दुहराया है, वहां बच्चन ने निर्मम भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़कर यथार्थ की नयी दुनिया में प्रवेश किया है और उसके अनुकूल भाषा की तलाश की है।

नरेन्द्र शर्मा : नरेन्द्र शर्मा के गीतों का अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी चित्रात्मकता और आत्मीयता है, उनके गीतों का सुख-दुःख सीधे-सीधे प्रेमपात्र को निवेदित है, बीच में न कोई अवधारणा आती है और न छल। इन गीतों का एक परिवेश होता है और वह परिवेश कवि का ही नहीं, हमारा भी निकट का परिचित होता है। वह कवि के अनुभवों को जीवन्तता प्रदान करता है। कुल मिलाकर नरेन्द्र शर्मा के गीत अधिक अपने मालूम पड़ते हैं। प्रकृति का बहुत चटक और सुपरिचित परिवेश इन्हें घेरे रहता है। शर्मा जी के अपने आत्मीय क्षेत्र हैं—प्रकृति-सौन्दर्य, मानव-सौन्दर्य और उससे उत्पन्न विरह-मिलन की अनुभूतियां :

फिर फिर रात और दिन आते
फिर फिर होता सांझ सवेरा,
मैंने भी चाहा फिर आये
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।

कच्चे धागे सा सुख सपना
टूट गया सो टूट गया *(पलाशवन)*

नरेन्द्र शर्मा में भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण तथा विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोही स्वर है। यद्यपि यहां भी कवि की रूमानी दृष्टि ही प्रधान है तो भी उसका स्वर बच्चन की अपेक्षा अधिक [illegible] और अनुभूतिप्रवण है तथा उसमें समाजवादी चिन्तन का पुट भी है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : अंचल का जन्म १ मई, सन १९१५ को [illegible] हुआ था। एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त करके पहले ये इन्स्टीट्यूट ऑफ़ लैंग्वेजेज़ एण्ड रिसर्च (जबलपुर) में हिन्दी-विभागाध्यक्ष रहे, फिर राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय रायगढ़ के आचार्य हुए। इन्होंने अपने तीव्र रूमानी संवेदन को लेकर अपने अन्तर की यात्रा तो की ही है, ये समाज में भी घूमे है। इसलिए इनके सामाजिक यथार्थवाले काव्यों में रूमानी संवेदना की ही प्रधानता लक्षित होती है। रूप की उद्दाम आसक्ति, उद्दाम वासना, उद्दाम पीड़ा और उद्दाम जिजीविषा ने इनके काव्य की प्रकृति का निर्माण किया है। वासना की उद्दामता कविता को एक ओर सामाजिक संयम से काट देती है, दूसरी ओर रचनात्मक स्तर पर उसे अनुभूति की गहराई और संश्लिष्टता की अपेक्षा उत्तेजना अधिक देती है। उत्तेजना या स्नायविक तनाव अंचल में इस प्रकार हावी है कि वे निरन्तर किसी-न-किसी रूप में अपनी कविताओं में शृंगारिक प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते रहे हैं।

भगवतीचरण वर्मा : इनका जन्म सन १९०३ में शफ़ीपुर, ज़िला उन्नाव में हुआ। प्रयाग में शिक्षा प्राप्त कर पहले ये पत्रकार बने फिर स्वतन्त्र भारत में आकाशवाणी से सम्बद्ध हुए। वर्मा जी की कविताओं में कई प्रकार की प्रवृत्तियों का संगम मिलता है। इनमें परम्परा के साथ युग-बोध,

unacademy

वैयक्तिक सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और आशा-निराशा के साथ सामाजिक विद्रोह तथा निम्न वर्ग का पीड़ाबोध, अभिजात भाषा के साथ ऊर्जामयी सामान्य भाषा का अस्तित्व लक्षित होता है। फिर भी मस्ती, आवेश और अहं इनकी कविताओं के केन्द्र में हैं। 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव' और 'एक दिन' इनकी काव्य-कृतियां हैं।

गोपालसिंह नेपाली : (१९१३-१९६३) नेपाली जी बेतिया (बिहार) में पैदा हुए थे। काफी समय तक फ़िल्मी दुनिया से सम्बद्ध रहे। नेपाली के प्रारम्भिक गीत प्रकृति के मार्मिक किन्तु सीधे-सादे चित्रों से सम्पन्न होने के कारण अन्य कवियों की कविताओं से अपने को साफ़ अलगा लेते हैं। इनके गीतों में चित्रित प्रेम-संवेग का भी अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी सादगी, माधुर्य और प्रवाह है। 'पंछी', 'उमंग', 'रागिनी', 'पंचमी', 'रिमझिम', 'नवीन' आदि इनकी काव्य-कृतियां हैं।

आरसीप्रसाद सिंह : आरसीप्रसाद सिंह में छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता की सभी प्रवृत्तियां दिखायी पड़ती हैं। इनकी कविता के केन्द्र में नारी है। नारी के रूपाकर्षण, प्रेम, प्रेमजन्य उत्सुकता, स्नायविक उत्तेजना, निराशा, वेदना आदि के स्वरों से निर्मित इनकी कविताएं अपनी धारा की कविताओं का ही रूप उजागर करती हैं। 'कलापी', 'संचयिता', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य' और 'प्रेमगीत' इनकी काव्य-कृतियां हैं।

शम्भुनाथ सिंह : शम्भुनाथ सिंह की काव्य-यात्रा अत्यन्त विकासशील रही है। 'रूप-रश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल' और 'दिवालोक' में ये छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता के कवि रहे हैं। 'मन्वंतर' प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित है और बाद की कृतियों में 'नयी कविता' का स्वर स्पष्ट है। व्यक्तिवादी गीतिकविता-धारा में आने के बावजूद शंभुनाथ सिंह के गीतों में अपना सौन्दर्य निखर आया है जो रूप-विधान, प्रणय-संवेदना, भाषा और छन्द में लक्षित होता है।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

'राष्ट्रीय' शब्द अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक है जिसमें जाति, सम्प्रदाय, धर्म, सीमित भू-भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर क्रमशः एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करनेवाली समस्त जातियों, भिन्न-भिन्न भू-खण्डों, सम्प्रदायों और रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभरता गया है। कहना न होगा कि अंगरेजों के आने के समय तक अपनी सांस्कृतिक एकता के बावजूद भारत व्यावहारिक रूप से भिन्न-भिन्न राज्यों में बंटा हुआ था। वास्तव में पूरे भारतवर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल में हुआ। अंगरेजों ने समूचे देश में एक शासन स्थापित किया, जिससे पूरे देश के लोग एक राजा की प्रजा हुए और पूरे देश को समान यातना का अनुभव हुआ। अपने-अपने में बंटे हुए लोगों को यह प्रतीत हुआ कि वे सब मिलकर एक हैं, वे चाहे किसी जाति या धर्म के हों, अंगरेजों के गुलाम हैं। और फिर जब अंगरेजी शासन के विरुद्ध मुक्ति का अभियान आरम्भ हुआ तो मुक्ति की चेतना किसी धर्म या प्रदेश में सीमित न रहकर पूरे देश में व्याप्त हुई। इस प्रकार आधुनिक काल में जो राष्ट्रीयता का स्वरूप उभरा और विकसित हुआ, उसके तीन आधार हैं—पूरे देश में अंगरेजी शासन की स्थापना, समग्र भारतीय प्रजा द्वारा अंगरेजी शासन से उत्पन्न यातना का समान अनुभव तथा स्वाधीनता आन्दोलन और उसका देशव्यापी प्रसार।

राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले पश्चिम में हुआ, विशेषतया इंग्लैंड में। किन्तु वहां पराधीनता की समस्या नहीं थी, इसलिए वहां राष्ट्रीयता के जो तत्व उभरे, वे भारत में उभरनेवाले

unacademy

तत्त्वों से थोड़े भिन्न थे। भारतीय राष्ट्रीयता में स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, जबकि स्वतन्त्र पश्चिमी देशों में स्व-विकास का। भारत एक विशाल देश है, जहां अनेक संस्कृतियों, भाषाओं, रीति-रिवाजों के लोग रहते हैं। ऊपर-ऊपर वे एक-दूसरे से अलग-अलग दीखते हैं, परन्तु सबका मूल स्रोत एक ही है, जो आन्तरिक रूप से सबको बांधता है। यह मूल स्रोत है—अपनी प्राचीन संस्कृति, प्राचीन आध्यात्मिक सत्य। कहा जा सकता है कि हमारे यहां उभरनेवाली राष्ट्रीयता में तीन मुख्य बातें लक्षित होती हैं—१. भारतीय पराधीनता की यातना का अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास, २. पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रान्त होती हुई भारतीय चेतना के उद्धार के लिए तथा उसमें एकता और स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतीकरण, ३. उपयोगी आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पुनर्विचार तथा पुनर्गठन। कहना न होगा कि स्वाधीनता-प्राप्ति तक प्रथम दो तत्त्व बहुत प्रबल रहे, किन्तु स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् तीसरे तत्त्व की ही सार्थकता शेष रह गयी। किन्तु उससे बड़ी बात जो आयी, वह थी देश की राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा और विकास करने का प्रयास तथा नवीन राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न समस्याओं से जूझने और उनका समाधान खोजने की चेष्टा। वर्तमान समस्याओं और प्रश्नों के सन्दर्भ में जब हम अपने अतीत गौरव को देखते हैं तब उससे अभिभूत होने के स्थान पर उसका पुनर्मूल्यांकन करते हैं और विचार के स्तर पर हम उससे अपने को जोड़ते या काटते हैं, उसके भीतर निहित द्वन्द्वों, विसंगतियों और मानवीय संवेदना की तलाश करते हैं। जहां तक आधुनिक हिन्दी-कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि वह भारतेन्दुकालीन कविताओं से प्रारम्भ होती है। किन्तु राष्ट्रीयता का स्वरूप तब से लेकर आज तक विकसित होता रहा है। आरम्भ में छोटे-मोटे दुःख-दर्दों, सहज भावात्मक

प्रतिक्रियाओं तथा अतीत-स्मरण के रूप में लक्षित होनेवाली राष्ट्रीयता धीरे-धीरे जटिल और संश्लिष्ट होती गयी तथा अनेक मानवीय और सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनों से सम्पन्न होती चली गयी। नयी-नयी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने उसे जटिल रूप प्रदान किया। द्विवेदी-काल तक भारतीय राष्ट्रीयता बहुत-कुछ हिन्दू राष्ट्रवाद के रूप में दिखायी पड़ती है। इसका कारण सायास हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रसार नहीं था, वरन् उस भारतीय दृष्टि का अभाव था, जो गांधी जी के व्यक्तित्व में उभरकर आयी।

प्रस्तुत कालावधि में आनेवाली कृतियों पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि राष्ट्रीयता के सारे रूप कहीं खंडित रूप में, तो कहीं संश्लिष्ट रूप में इनमें दिखायी पड़ते हैं। राष्ट्रीयता का जो सबसे स्थूल रूप है, वह है—विदेशी शासन के अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन-यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असन्तोष की ललकारों का चित्रण। यह क्रिया बहुत स्थूल रूप में भी हो सकती है और बहुत सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट रूप में भी। इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का महत्त्वपूर्ण स्तर प्रस्तुत अवधि में दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में सुनायी पड़ता है। वास्तव में प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय जीवन को जकड़ती हुई विदेशी सत्ता, सामन्तवाद और महाजनी सभ्यता के जिस जटिल और बुनियादी स्वरूप को उभारा गया है, उसे भावुकता से संचालित इस प्रकार की राष्ट्रवादी कविताएं मुखर नहीं कर सकी हैं। इनमें वस्तुस्थिति की सही व्याख्या के स्थान पर भावुक प्रतिक्रिया है। इस सन्दर्भ में एक बात अवश्य लक्षित करने की है कि १९३८ ई. के आसपास के राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार

unacademy

लक्षित होता है। छायावाद-काल में गांधी जी के प्रभाव में आत्मपीड़न तथा अहिंसा-जन्य नरम प्रतिरोध दिखायी पड़ता है, किन्तु वामपन्थी दलों के उदय, समाजवादी सिद्धान्तों के प्रचार तथा विदेशी शासन से झूठे वायदों और अधिकाधिक कठोर, विषम एवं जटिल होती परिस्थितियों के कारण साहित्य का स्वर अधिक उग्र, यथार्थवादी और लोकोन्मुख होता गया। दूसरी बात यह हुई कि प्रगतिवाद के प्रभाव से देश के भीतर बनते हुए शोषकों तथा शोषितों के अनेक वर्गों की पहचान होती गयी। लड़ाई केवल अंगरेज़ी सत्ता से ही नहीं है बल्कि सामन्ती, महाजनी सभ्यता और उनके प्रतिनिधि देशी शोषकों से भी है, जो अपने ही देश की जनता के लिए अपने-अपने ढंग से भयंकर शोषण के अस्त्र-शस्त्र बन रहे हैं। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर दिनकर में अधिक उभरकर आया। कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद ने भारतीय राष्ट्रीयता को अधिक प्रत्यक्ष किया, उसे आकाश से धरती पर उतारा, उसे जन-जीवन से जोड़ा।

राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश के स्थूल सुख-दुःख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है, वरन् उसी से अधिक होता है। यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है, अर्थात् नव-नव परिस्थितियों में नये-नये कोण उभारती रहती है और पुराने कोण छोड़ती रहती है। संस्कृति का सम्बन्ध इसी आत्मा या चेतना से होता है। यह संस्कृति जहां इतिहास के रूप में हमारे लिए प्रेरणा और पृष्ठभूमि बनती है, वहां वर्तमान चेतना से स्पन्दित होकर हमारा जीवन बन जाती है। प्रतिभावान् और नव-दृष्टि-सम्पन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन-सन्दर्भों में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकार किया है। यह प्रयास प्रस्तुत अवधि के पूर्व रचित महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों—'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'प्रिय-प्रवास', 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा' आदि—में भी लक्षित होता है।

प्रस्तुत अवधि में प्रकाशित काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं—'कुरुक्षेत्र', 'जयभारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी', 'विक्रमादित्य' आदि। इनके अतिरिक्त 'इतिहास के आंसू' की फुटकल कविताओं को भी इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। इन कृतियों में वर्तमान जीवन-प्रश्नों का प्रत्यक्ष या परोक्ष अंकन-आकलन तो अवश्य है, किन्तु उन्हें परिणति देनेवाला स्वर भारतीय है, अर्थात् भारतीय संस्कृति के किसी उदात्त स्वर की तलाश ही इन प्रश्नों के बीच भटकती है।

मैथिलीशरण गुप्त : गुप्त जी इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। कवि ने अपने समय की समस्त राष्ट्र-चेतना को अपने शब्दों में स्वर दिया है। काव्यात्मक दृष्टि से यह स्वर बड़ा ही विषम है, कहीं गहन, कहीं एकदम विवरणात्मक। फिर भी, जहां अपने युग को उसके बहुरंगी रूप में पकड़ने का प्रश्न है, गुप्त जी बहुत जागरूक कवि रहे हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन : इन दोनों कवियों में बहुत साम्य है। यों नवीन जी सौन्दर्य और प्रेम की कविताएं लिखने के कारण छायावादी कवियों के समीप पहुंच जाते हैं, किन्तु जहां तक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का प्रश्न है, इन दोनों की प्रवृत्तियां समान दिखायी पड़ती हैं। दोनों का सम्बन्ध मूलतः राष्ट्र की तत्कालीन अवस्था से है, दोनों ने पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंगरेज़ी शासन के अत्याचारों, स्वाधीनता-सेनानियों के अदम्य उत्साह, कारागार-यात्रा और उनकी बेबसियों आदि के चित्रण में ही अपनी व्यस्तता दिखायी है; सांस्कृतिक पक्ष उनसे प्रायः छूट ही गया है। वर्तमान के सन्दर्भ में अतीत के पुनर्परीक्षण, संक्रान्त मूल्यों के आकलन, बृहत्तर मानवीय प्रश्नों और संवेदनाओं के अनुभव में इनका मन उतना रम नहीं सका है।

unacademy

रामधारीसिंह 'दिनकर' : इस धारा के कालावधि के सबसे सशक्त कवि 'दिनकर' (१९०८-१९७४) हैं। इनका जन्म सिमरिया (ज़िला मुंगेर) में हुआ था। इन्होंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। ये क्रमश: एक हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक, बिहार सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार-विभाग के उपनिदेशक, मुज़फ्फरपुर के कॉलेज में हिन्दी-विभागाध्यक्ष, राज्यसभा के सदस्य, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा भारत सरकार के हिन्दी-सलाहकार रहे। दिनकर में संवेदना और विचार का बड़ा सुन्दर समन्वय दिखायी पड़ता है। चाहे व्यक्तिगत प्रेम-सौन्दर्यमूलक कविताएं हों, चाहे राष्ट्रीय कविताएं, सभी कवि की संवेदना से स्पन्दित है। दिनकर में आरम्भ से ही अपने को अपने परिवेश से जोड़ने की तड़प दिखायी पड़ती है, इसलिए उनमे सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है—व्यक्तिगत प्रेम-सौन्दर्यमूलक कविताओं में भी। छायावाद या उत्तर-छायावादी वैयक्तिक कविता की कुण्ठा, अतिरिक्त अवसाद तथा निराशा के घिराव के स्थान पर प्रसन्नता और सर्वत्र सौन्दर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया दिखायी पड़ती है। दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है—अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समताओं आदि के ही रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नये जीवन-सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबारकर चिन्तन, परीक्षण तथा आत्मालोचन का स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया; साथ ही इस राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा। यह विकास तभी सम्भव है जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तुस्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख-साम्राज्य की स्थापना की कामना का सुन्दर समन्वय हुआ है :

कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की
मन्त्री के आसन से
स्यात् सुयोधन प्रीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात्
संगर में आगे चल के। (कुरुक्षेत्र)

सियारामशरण गुप्त : गुप्त जी और दिनकर के समान सियारामशरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियों में सर्वत्र गांधीवाद की अभिव्यक्ति दीखती है। देश की ज्वलन्त घटनाओं और समस्याओं का इन्होंने बड़ा जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है, किन्तु संस्कृति के उदात्त तत्त्वों के प्रति गहरी आस्था रखनेवाले सियारामशरण जी इन घटनाओं, अवस्थाओं और समस्याओं

unacademy

को तात्कालिक तथ्य के रूप में न देखकर उन्हें बृहत्तर मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और सन्दर्भों से जोड़ देते हैं। इसलिए इनके काव्यों की पृष्ठभूमि अतीत हो या कि वर्तमान, उनमें आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वन्द्व का समन्वित रूप उभरा है। सियारामशरण ने भारत की जिस किसी तात्कालिक घटना को लिया है, उसे एकदेशीयता से ऊपर उठाकर बृहत्तर मानवीय मूल्य का स्तर प्रदान किया है, मात्र राष्ट्रीयता कवि को स्वीकार्य नहीं। 'उन्मुक्त' आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें अपने ढंग से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना-विभीषिका और मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

उदयशंकर भट्ट : इनका जन्म कर्णवास, ज़िला बुलंदशहर में हुआ था। ये सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर में हिन्दी के अध्यापक रहे और बाद में आकाशवाणी से सम्बद्ध हुए। भट्ट जी की काव्य-कृतियां हैं—'विसर्जन', 'मानसी', 'अमृत और विष', 'युगदीप', 'यथार्थ', 'एकला चलो रे' और 'विजय पथ'। इनके काव्य में भाव, विचार और भाषा सम्बन्धी बड़ा सुथरापन दीखता है। ये ठीक-ठीक किसी वाद के अन्तर्गत नहीं आते। इनकी कविताओं में युग का स्वर सुनायी पड़ता है और साथ-ही-साथ अपनी अतीत संस्कृति के प्रति आस्था भी। इनकी कविताओं में वेदना एवं निराशा की भी गूंज है और नवनिर्माण का उत्साह तथा शक्ति भी है।

सोहनलाल द्विवेदी : इनका जन्म सन् १९०५ में बिन्दकी, ज़िला फ़तेहपुर में हुआ। ये अत्यन्त सरल भाषा में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व्यक्त करने वाले कवि हैं। इनकी राष्ट्रीयता की चेतना अतीत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों ही काल-आयामों को समेटती है। अभिव्यक्ति की सादगी और वर्णनात्मकता इनके भावों को अत्यन्त सहजता से पाठकों तक प्रेषित कर देती है। द्विवेदी जी की काव्य-यात्रा प्रबन्धकाव्य और गीतिकाव्य—दोनों क्षेत्रों में हुई है। प्रसिद्ध रचनाएं हैं : 'भैरवी', 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'चित्रा', 'प्रभाती', 'युगधारा' और 'पूजागीत'।

श्यामनारायण पांडेय : पांडेय जी की काव्य-प्रवृत्ति मुख्यत: उनके प्रबन्धकाव्यों में ही निखरी है। 'हल्दीघाटी' महाराणा प्रताप के जीवन पर तथा 'जौहर' पद्मिनी की जौहर-कथा पर आधारित काव्य है। इन काव्यों में अद्‌भुत प्रवाह, ओज और सादगी है। किन्तु पांडेय जी की राष्ट्रीयता अपने समय की सामासिक भारतीय राष्ट्रीयता न होकर हिन्दू राष्ट्रीयता है। कवि ने अतीत की कथाओं को युगीन सन्दर्भों में नियोजित न कर वर्णनात्मक पद्धति पर ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। इसलिए इन काव्यों में प्रवाह तो है, किन्तु भावात्मक और वैचारिक गाम्भीर्य नहीं है।

प्रगतिवाद

प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गयी जो छायावाद के समाप्ति काल में १९३६ ई. के आसपास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ। इसके शब्दार्थ से इसके स्वरूप को समझने में भ्रान्ति होती रही है। इसलिए यही समझना चाहिए कि यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली। प्रगतिवादी काव्य के उद्‌भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां तो सहायक हुईं ही, साथ ही छायावाद की जीवन-शून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें निहित थी। एक ओर भारतीय समाज में उभरता हुआ जन-संकट था, तो दूसरी ओर रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद था जो वहां के विषम संकट और संघर्ष से गुज़रे

unacademy

जन-जीवन को बल दे रहा था, जो सामन्तवाद और पूंजीवाद की विभीषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर रहा था। भारतीय बुद्धिजीवी एक ओर अपने समाज में उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियों और संकटों को देख रहा था, दूसरी ओर वह रूस के उस समाज को देख रहा था जो इन विसंगतियों और संकटों से गुज़रकर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रहा था जिसमें सामान्य जन-जीवन को महत्ता प्राप्त हो रही थी, जहां नये सुख-सुविधा की प्रतिष्ठा हो रही थी। रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ उसका मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा-केन्द्र बन रहा था। इधर देश की परिस्थिति विषम हो रही थी और उस विषम परिस्थिति में युवकों का हृदय असन्तोष और विद्रोह से कसमसा रहा था। देश की अवस्था प्रगतिवादी विश्वासों और स्वरों के लिए उपयुक्त भूमि बन रही थी।

हमारा राष्ट्रीय वातावरण नवीन परिस्थितियों के कारण एक नये प्रकार के युयुत्साभाव से आन्दोलित हो रहा था। गांधी जी के नेतृत्व में जो स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था उससे युवा-हृदय की विद्रोही भावना को अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही थी। सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। इससे विदित हुआ कि स्वयं कांग्रेस में गांधी जी के अहिंसावादी सिद्धान्तों से असन्तुष्ट लोग उभर रहे थे। वे अधिक उग्र विचारों के थे और उग्र आचरण में विश्वास करते थे। महात्मा गांधी ने हिंसा के भय से बार-बार जनता के आन्दोलन को रोक दिया था। उमड़ता हुआ जन-जीवन इसे सहज भाव से स्वीकार नहीं कर पाता था, अत: उग्र प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था। मज़दूरों का आन्दोलन भी ज़ोर पकड़ रहा था। धीरे-धीरे राजनीति में वामपन्थी शक्तियों का ज़ोर बढ़ता गया। इस वैचारिक उग्रता और समाजोन्मुखता को बल दे रही थीं—तत्कालीन परिस्थितियां। राजनीतिक

वैचारिक उग्रता और समाजोन्मुखता को बल दे रही थीं—तत्कालीन परिस्थितियां। राजनीतिक दासता देश में एक ओर पूंजीवाद और सामन्तवाद की शोषक शक्तियों को प्रश्रय दे रही थी, दूसरी ओर जन-सामान्य के लिए अपार भयावह गरीबी, अशिक्षा, असुविधा और अपमान की सृष्टि कर रही थी। इसके अतिरिक्त अकाल और युद्ध की भीषण विभीषिकाएं भी देश को सहा रही थीं। द्वितीय महायुद्ध और बंगाल का अकाल देश को निगलनेवाली भीषण घटनाएं थीं। युद्ध के दबाव में जनता और भी आक्रान्त हो रही थी। जगती हुई उग्र जन-चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद तथा पश्चिम के अन्य देशों में प्रचारित कम्युनिज़्म के सिद्धान्तों से उभरते हुए विश्वव्यापी प्रभाव के कारण भारत में १९३५ ई. के आसपास साम्यवादी (या समाजवादी) आन्दोलन उगने लगा था। साहित्य भी उससे प्रभावित हुआ और प्रगतिवादी साहित्य का आन्दोलन आरम्भ हुआ। सन् १९३५ ई. में एम. फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन' नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् १९३६ में सज्जाद ज़हीर और डॉ. मुल्कराज आनन्द के प्रयत्नों से भारतवर्ष में भी इस संस्था की शाखा खुली और प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में प्रथम अधिवेशन हुआ।

प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। यह सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य मानता है। 'सामाजिक यथार्थ' शब्द का भ्रान्त अर्थ लेनेवाले भी कम नहीं हैं। वे समाज की ऊपरी सतह पर दिखायी पड़नेवाली निर्जीव और पतनोन्मुख विकृतियों को ही सामाजिक यथार्थ मान बैठते हैं। बुनियादी सत्य क्या है? प्रत्येक युग में यथार्थ की दो शक्तियों का द्वन्द्व चलता रहता है—मरणोन्मुख पुरानी शक्तियों और नवीन जीवन्त शक्तियों का। सामाजिक स्तर पर पुरानी शक्तियों में शोषक लोग होते हैं और नवीन शक्तियों में शोषित गरीब किसान मजदूर होते हैं। नवीन जीवन्त शक्तियां पुरानी शक्तियों को नष्ट कर नवीन

unacademy

जन-मंगलशाली समाज की स्थापना की कोशिश करती है। ऊपरी सतह पर तो पुरानी शक्तियों की विकृतियां उतरायी रहती हैं, लेकिन उसके नीचे नवीन शक्तियां धीरे-धीरे उन्हें काटती रहती हैं। ये शक्तियां व्यक्ति की नहीं समाज की होती हैं, उनमें पीड़ा और अभाव के साथ ही जिन्दगी का संघर्ष, अडिग विश्वास और भविष्य की सुन्दर आकांक्षा होती है। इन अनेक बुनियादी तत्त्वों को ग्रहण करनेवाला ही सच्चा यथार्थवादी है। ऐसा ही साहित्य अपने युग की वास्तविकता का सच्चा प्रतिनिधि होता है और भावी युगों के साहित्यों के लिए प्रेरणा-स्रोत होता है। प्रगतिवाद (जिसका दर्शन मार्क्सवादी है) भिन्न-भिन्न युगों के साहित्यों को उन युगों की वास्तविकताओं के आधार पर परीक्षा करता है। प्रगतिशील साहित्य समाज के युगीन सम्बन्धों को छोड़कर हवा में शाश्वत का महल बनानेवाले साहित्य को नकली और निर्जीव मानता है। यदि कोई शाश्वत वस्तु है तो यही कि नवीन सामाजिक मानवता सदैव पुरानी और जर्जर दानवी शक्तियों से युद्ध करती है। आज के युग में बुनियादी शक्तियां वे हैं जो पूंजीवाद को नष्ट कर समाजवाद स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन बुनियादी शक्तियों को पहचानने और उनका समर्थन करनेवाला साहित्य अनिवार्य रूप से किसानों और मज़दूरों के संघर्ष को रूपायित कर उसे बल प्रदान करता है तथा पूंजीवादी (और सामन्तवादी) शक्तियों की शोषक, स्वार्थी, स्वकेन्द्रित, जर्जर, विसंगतिमय प्रवृत्तियों पर चोट करता है।

प्रगतिवाद ने सौन्दर्य को नये दृष्टिकोण से देखा। वह वर्तमान जन-जीवन में सौन्दर्य खोजता है। सौन्दर्य का सम्बन्ध हमारे हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना दोनों से होता है। इन दोनों का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों से होता है। नये समाज में पलनेवाला अथवा उसके साथ चलने का प्रयास करनेवाला कवि नये उठते हुए समाज में सौन्दर्य देखेगा, वह संघर्षों से भागकर किसी अतीत लोक या कल्पना-लोक के निष्क्रिय सौन्दर्य में मुंह नहीं छिपायेगा। प्रसिद्ध मार्क्सवादी दार्शनिक एन.जी. चरनीशेवस्की के शब्दों में मनुष्य को जीवन सबसे प्यारा है, इसीलिए सौन्दर्य की यह परिभाषा अत्यन्त सन्तोषजनक मालूम पड़ती है—'सौन्दर्य जीवन है।'

प्रगतिवाद साहित्य को सोद्देश्य मानता है। सोद्देश्यता और प्रचार को एक नहीं कर देना चाहिए; 'सोद्देश्यता' का अर्थ है—किसी विशेष अभिप्राय से, किसी विशेष दृष्टि से कला की रचना करना। 'प्रचार' का अर्थ है—बहुत स्पष्ट रूप से, किसी सिद्धान्त की दृष्टिकोण की या मान्यता की घोषणा करते फिरना। प्रगतिवाद का उद्देश्य स्पष्ट किया जा चुका है अर्थात् वह सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण करता है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफ़ाश हो और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्ष, युयुत्सा और आस्था को बल मिले। साहित्य जनता का जनता के लिए चित्रण करता है। प्रचार साहित्य को हलका बनाता है और सिद्धान्त के स्तर पर मार्क्सवादी दर्शन के मनीषियों और साहित्य-चिन्तकों ने साहित्य में प्रचार का विरोध ही किया है। किन्तु व्यवहार में यह देखा गया कि अधिकांश प्रगतिवादी साहित्य प्रचार बनकर रह गया। सामाजिक जीवन की संश्लिष्ट वास्तविकता से कटकर केवल सिद्धान्त का प्रचार करने का परिणाम यह हुआ कि कवि अपने परिवेश से सम्बद्ध न रहकर पहले लाल सेना और लाल रूस का, फिर बाद में लाल चीन का गीत गाने लगा। प्रचार का एक दूसरा खतरा यह भी हुआ कि कवियों ने जन-जीवन से अपने को सम्बद्ध किये बिना ही जन-जीवन का गीत गाना शुरू किया। अनुभव के स्थान पर पोथीजन्य कविताओं की प्रेरणा बना।

कला का शिल्प उसके वक्तव्य विषय के अनुसार होता है। प्रगतिवादी कविता चूंकि सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली, जनता तक पहुंचना और जनता के जीवन की ही बात कहना

unacademy

उसका लक्ष्य रहा, इसलिए वह छायावाद की वायवी, असामान्य, रेशमी परिधानशालिनी और सूक्ष्म भाषा को छोड़कर सुस्पष्ट, सामान्य, प्रचलित भाषा को अपनाकर चली। उसने प्रतीक, बिम्ब, शब्द, मुहावरे, चित्र सभी जन-जीवन के बीच से लिये। इसलिए एक बहुत ही जीवन्त भाषा का उदय हुआ, जैसे रंगीन कुहासे को तोड़कर विषम यथार्थ धरातल उभर उठा हो। किन्तु प्रगतिवाद के आरम्भ में भाषा-शैली की यह स्पष्टवादिता अतिवादिता को पहुंचकर व्याख्यान की भाषा की तरह सपाट हो गयी, उसमें अभिधा की प्रधानता हो गयी। शैली सांकेतिक और चित्रात्मक न होकर उपदेशात्मक हो गयी। इस प्रकार काव्य का कलात्मक सौन्दर्य निखर नहीं पाया। ज्यों-ज्यों आन्दोलन का उफान मन्द पड़ता गया या ज्यों-ज्यों लोग मार्क्सवादी दृष्टि को साहित्य के सन्दर्भ में ठीक ढंग से समझते गये, त्यों-त्यों काव्य प्रचारात्मक, अभिधात्मक, सपाट रूप को छोड़कर अधिक चित्रात्मक, गहन और सांकेतिक होता गया।

प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी-काव्यधारा के विकास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ा। उसने काव्य को (साहित्य-मात्र को) व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द कमरे से निकालकर जन-जीवन के बीच प्रवाहित कर दिया, जीवन और साहित्य के मूल्य, सौन्दर्य-बोध और लक्ष्य को समाज के यथार्थ और उसकी रचना से जोड़ा, भाषा को कुहरे से निकालकर धरातल पर प्रतिष्ठित किया। निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', त्रिलोचन और मुक्तिबोध, इस धारा के प्रमुख कवि हैं। इनमें से निराला और पन्त की प्रगतिवादी कविताओं की चर्चा छायावाद के प्रसंग में हो चुकी है।

और पन्त की प्रगतिवादी कविताओं का पर्याप्त आधार [illegible]

केदारनाथ अग्रवाल : इनका जन्म १ जुलाई, सन् १९११ को कमासिन, जिला बांदा में हुआ। ये बांदा में वकालत करते हैं और प्रगतिवादी वर्ग के काफ़ी सशक्त कवि हैं। इन्होंने उद्बोधनात्मक कविताएं भी काफ़ी लिखी हैं, किन्तु सच्ची कविताओं की भी इनके यहां कमी नहीं है। केदार की कविताओं में मानव और प्रकृति के सौन्दर्य का बड़ा सहज, वेगवान और उन्मुक्त रूप मिलता है। 'माझी न बजाओ वंशी', 'वसन्ती हवा' आदि कविताएं (जो 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में संगृहीत हैं) केदार की प्रगतिकालीन सहज सौन्दर्यवादी कविताओं के रूप में देखी जा सकती हैं। एक प्रकृति-चित्र देखिए :

आज नदी बिलकुल उदास थी
सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसको नहीं जगाया
दबे पांव वापस घर आया। **(फूल नहीं रंग बोलते हैं)**

रामविलास शर्मा : रामविलास शर्मा का जन्म सन् १९१२ में झांसी में हुआ था। ये अंगरेज़ी के पी-एच.डी. हैं। दीर्घकाल तक ये बलवन्त राजपूत कॉलेज, आगरा में अंगरेज़ी के प्राध्यापक रहे और फिर के.एम. मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक रहे। ये प्रगतिशील लेखक संघ के मन्त्री तथा 'हंस' के सम्पादक भी रहे हैं। ये प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक हैं। इनकी कविताओं का सौन्दर्य है—सादगी, वेग और सहजता। शर्मा जी में प्रचार और नारों की कमी नहीं, स्थूल व्यंग्यों की भी

unacademy

अधिकता है। किन्तु जहां वे अतिवादिताओं से मुक्त होकर कवि के रूप में विशेष रहे वहां वे सामाजिक संवेदना को आत्मसात् करके उसे सरल वेगवती भाषा में अभिव्यक्त करते हैं।

नागार्जुन : नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। इनका जन्म सन् १९१० में तरौनी (दरभंगा) में हुआ था। स्कूली शिक्षा के स्थान पर इन्होंने हिन्दी-संस्कृत का स्वाध्याय किया। 'यात्री' नाम से ये मैथिली में भी कविताएं लिखते हैं। कवि के साथ-साथ ये हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार भी हैं। इनकी कविताएं मुख्यत: तीन तरह की हैं। कुछ कविताएं गम्भीर संवेदनात्मक और कलात्मक हैं, जिनमें कवि ने मानव-मन की रागात्मक और सौन्दर्यमयी छवियों को अंकित किया है और साथ ही साथ मनुष्य की मानवीय सम्भावनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की है। दूसरी कोटि की कविताएं वे हैं जो सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अव्यवस्था और धार्मिक अन्धविश्वास पर बड़ियां चुभता हुआ व्यंग्य करती हैं। शिक्षा-पद्धति पर एक व्यंग्य द्रष्टव्य है :

घुन खाये शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बांचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे। (युगधारा)

नागार्जुन की तीसरी कोटि की रचनाएं उद्‌बोधनात्मक हैं, किन्तु काव्य-तत्त्व की दृष्टि से हलकी हैं। 'बादल को घिरते देखा है', 'पाषाणी', 'चन्दना', 'रवीन्द्र के प्रति', 'सिन्दूर तिलकित भाल', 'तुम्हारी दंतुरित मुसकान' आदि कविताएं इनकी उत्तम प्रगतिवादी कविताएं हैं।

रांगेय राघव : रांगेय राघव बहुमुखी प्रतिभा के प्रगतिवादी कवि थे। इन्होंने कविता के साथ-साथ कहानियां, उपन्यास और आलोचनाएं तो लिखीं ही, कविता के क्षेत्र में भी ये प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही क्षेत्रों में सक्रिय रहे। 'अजेय खंडहर', 'मेधावी' और 'पांचाली' उनकी प्रबन्धात्मक कृतियां हैं जिनमें विषय की नवीन योजना के साथ-साथ नूतन प्रबन्ध विन्यास भी लक्षित होता है। रांगेय राघव की कविताओं में समाजवादी चिन्तन और उससे अनुप्राणित सामाजिक संवेदना की शक्ति है। 'राह के दीपक' की कविताओं में युगीन यथार्थ के सन्दर्भ में प्रकृति-छवि का भी अंकन किया गया है।

शिवमंगलसिंह सुमन : (जन्म १९१५) की कविताएं भी दो तरह की हैं। एक तो वे, जो गीत हैं या छोटी-छोटी सुगठित कविताएं हैं। दूसरी वे, जो अधिक लम्बी और उपदेशात्मक हैं। उनकी छोटी-छोटी कविताएं और गीत जहां कला और प्रभाव की दृष्टि से उत्तम दीखते हैं वहां बड़ी कविताएं अधिक स्थान घेरती हैं और उनका प्रभाव बिखर जाता है, क्योंकि वे ध्वन्यात्मक और चित्रात्मक न होकर इतिवृत्तात्मक होती हैं।

अन्य कवि

त्रिलोचन : (जन्म १९१७) भी इस वर्ग के कवि हैं। 'मिट्टी की बरात' इनकी प्रमुख कृति है। इनकी कविताओं में बड़ी सादगी है और हर कविता में धरती की सोंधी गन्ध मिलती है। ये कविताएं प्राय: आकार में छोटी और प्रभाव में तीव्र होती हैं। **मुक्तिबोध** अपने विश्वासों और संवेदनाओं से जनवादी हैं। प्रगतिशील कविता के अन्तर्गत इनकी अनेक रचनाएं आसानी से रखी जा सकती हैं, किन्तु कुल मिलाकर इन्हें नयी कविता के अन्तर्गत रखना ही समीचीन होगा। इन कवियों में

अतिरिक्त अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुरसिंह, धर्मवीर भारती आदि में भी प्रगतिवाद किसी-न-किसी रूप में है, किन्तु मूलतः इन्हें प्रगतिवाद के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

प्रयोगवाद और नयी कविता

प्रयोगवाद

प्रयोग तो प्रत्येक युग में होते आये हैं, किन्तु 'प्रयोगवाद' नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया है जो कुछ नये बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करनेवाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू-शुरू में 'तार सप्तक' के माध्यम से सन् १९४३ में प्रकाशन-जगत् में आयीं और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती गयीं तथा जिनका पर्यवसान नयी कविता में हो गया। 'प्रयोगवाद' नाम भ्रामक है क्योंकि इस नाम से यह भाव टपकता है कि इन कवियों ने प्रयोग को साध्य मानकर एक नया वाद चला दिया। अज्ञेय जी ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कवि-कर्म की व्याख्या करते हुए 'प्रयोग' शब्द को स्पष्ट किया था। उनकी दृष्टि में प्रयोग अपने-आप में इष्ट नहीं है, वरन् वह साधन है; दोहरा साधन है। एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण-क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है।

'तार सप्तक' और 'प्रतीक' पत्रिका को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनमें संगृहीत या प्रकाशित कवियों के अनुभव के क्षेत्र, दृष्टिकोण और काव्य एक ही प्रकार के नहीं हैं : कुछ ऐसे हैं जो विचारों से समाजवादी हैं और संस्कारों से व्यक्तिवादी, जैसे—शमशेरबहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन। कुछ ऐसे हैं जो विचारों और क्रियाओं दोनों से समाजवादी हैं, जैसे—रामविलास शर्मा और गजानन माधव मुक्तिबोध। कुछ ऐसे हैं जो प्रगतिशील कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन-मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य या सत्याभास मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन में तड़पनेवाली गहरी संवेदनाओं को ही रूपायित करना चाहते हैं। प्रायः ये सभी कवि मध्य वर्ग के हैं। जिन कवियों ने समाजवादी विश्वासों को अपने संस्कारों में ढालकर कविताएँ लिखी हैं वे वास्तव में जनवादी कवि हैं, किन्तु जो ऐसा नहीं कर सके हैं या करना चाहते हैं, वे अपने व्यक्तिगत सुख-दुःखों की संवेदनाओं को ही अपने काव्य का सत्य मानकर उन्हें नये-नये माध्यमों द्वारा व्यक्त कर रहे हैं। आलोचकों ने प्रयोगवाद की चर्चा करते समय मूलतः इन्हीं कवियों को ध्यान में रखा है। यह ठीक भी है क्योंकि समाजवादी विश्वासोंवाले कवि प्रगतिशील कविता के क्षेत्र में आ ही जाते हैं।

अतः प्रयोगवादी कविता खासेन्सुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र है। प्रयोगवादी कवि ने जिस नये सत्य के शोध और प्रेषण के नये माध्यम की खोज की घोषणा की थी, वह सत्य इसी मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का सत्य था। अतः प्रश्न यह उठाया गया कि क्यों न हम उसी यथार्थ को अभिव्यक्ति दें जिसे हम भोगते हैं, अनुभव करते हैं अर्थात् जिसे हम आत्मसात् कर लेते हैं। व्यापक जीवन की बड़ी-बड़ी सैद्धान्तिक बातें और नैतिकता के बड़े-बड़े फलसफे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भले ही उपादेय हों, वे कला के क्षेत्र में कलाकार के 'स्व' की आँच में तपे बिना न तो खप सकते हैं और न उपादेय ही हैं। प्रश्न यह नहीं कि हमने कला के जीवन के कितने व्यापक अंश को समेटा है, प्रश्न यह है कि हमने लिये हुए अंश को कितना जिया है, कितना भोगा है और कितनी ईमानदारी और सच्चाई के

साथ व्यक्त किया है। प्रयोगवादी कवि इसीलिए व्यापक जन-जीवन के अंकन के फेर में न पड़कर अपने जिये हुए जीवन के ही विभिन्न दर्दों को अंकित करना पसन्द करते हैं।

मध्यवर्गीय कवियों ने व्यक्ति-मन के सत्यों को उद्घाटित करने में ही नये सत्यों की प्राप्ति और उनका सम्प्रेषण समझा। मध्यवर्ग आज ह्रासोन्मुख है। वह अपने चारों ओर के कठोर परिवेश के दबाव से टूट रहा है। उसकी आकांक्षाएं विराट् हैं, सपने रंगीन हैं, संवेदनाएं कोमल हैं। वह जब चारों ओर खड़ी कठोर सामाजिक बन्धनों और आर्थिक वैषम्य की अभेद्य दीवारों से टकराकर अपने लौट आता है और अपने को समाज से कटा हुआ, हारा हुआ, खण्डित और कुण्ठित समझने लगता। पीड़ा के अनेक स्तरों से उलझी हुई संवेदनाओं को मन का गहरा यथार्थ मान बैठता है। यह मध्यवर्गीय व्यक्ति या कवि जन-जीवन के सामूहिक जागरण से असम्पृक्त रहने के कारण अपनी सीमाओं को तोड़ने का कोई सक्रिय प्रयास न करके 'स्व' की गुफा में पीड़ा के मणि खोजता रहता है। इस प्रकार वह जन-जीवन के प्रवाह से कटकर उसी के बीच में नदी के द्वीप की तरह अपनी इकाई में अवस्थित रहता है। प्राय: सभी प्रयोगवादी कवियों में यह स्थिति देखी जा सकती है। यह पीड़ा-बोध इन कवियों में इतना गहरा और सजग है कि वे इसे दार्शनिक स्तर पर एक चिरन्तन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं :

दु:ख सब को मांजता है
और
चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें। —अज्ञेय

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी हैं। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। ये कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति-जीवन की समस्त जड़ता, कुण्ठा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्घाटित करते हैं। यों तो मध्यवर्गीय व्यक्ति-जीवन की पीड़ा के अनेक स्तर इन कविताओं में उभरे हैं, किन्तु विशेषतया दमित कामवासना का ही प्राधान्य लक्षित होता है। इनकी काम-संवेदना जितनी ही तीव्र है, उतनी ही सामाजिक बन्धनों की सीमाएं कठोर हैं। अतएव तीव्र संवेदनाओं वाले मध्यवर्गीय कवि की यौन-वासना उभर-उभरकर कुण्ठित होती गयी और कुण्ठित होकर दर्द बनती गयी। छायावादी कवियों ने कल्पना-लोक में नारी के साथ साहचर्य स्थापित कर अपनी प्यास मिटा ली, किन्तु यथार्थ-आग्रही कवियों के लिए यह सम्भव नहीं था। उन्होंने कल्पना का रंगीन आवरण हटाकर दमित यौन-वासनाओं के नग्न रूप को स्पष्ट कर दिया। फ्रायड का काम-सिद्धान्त इनके लिए प्रधान जीवन-दर्शन बन गया। इन कवियों ने कहीं स्पष्ट रूप से और कहीं बारीक प्रतीकों तथा बिम्बों के माध्यम से दमित काम-वासनाओं और उलझी हुई संवेदनाओं को रूपायित किया। अज्ञेय, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर और भारती के नाम इस सन्दर्भ में लिये जा सकते हैं।

प्रयोगवाद ने बड़ी-बड़ी घटनाओं, बड़े-बड़े संघर्षों, बड़े-बड़े व्यक्तियों या समुदायों, बड़े-बड़े जीवन-प्रसंगों के विशाल फलक पर इतिवृत्तात्मक काव्य का निर्माण नहीं किया, उसने व्यक्ति के अन्त:संघर्षों, क्षणों की अनुभूतियों और सूक्ष्म से सूक्ष्म, छोटी से छोटी संवेदनाओं और मन के

unacademy

विभिन्न स्थितियों को लेकर छोटी-छोटी तीव्र प्रभावशाली कविताएँ लिखीं, फ्लैश दिये। कला में मूल प्रश्न विषय की महत्ता या लघुता का नहीं है, मूल प्रश्न है उसे ईमानदारी के साथ जीकर व्यक्त करने का। लघु मानव को उसकी समस्त हीनता और महत्ता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करके प्रयोगवादी कविता ने उसके प्रति सहानुभूतिमय दृष्टि से सोचने के लिए एक नया रास्ता खोला। मनुष्य अपनी समग्र दुर्बलताओं, हीनताओं, लघुताओं और महत्ताओं के बीच यथार्थ है। अत: यथार्थ मानव की सृष्टि के लिए उसके जटिल परिवेश को अंकित करना कलाकार का धर्म है।

नयी कविता

'नयी कविता' भारतीय स्वतन्त्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधानों का अन्वेषण किया गया। यह अन्वेषण साहित्य में कोई नयी वस्तु नहीं है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्राय: सभी नये वाद या नयी-नयी धाराएं अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की तुलना में कुछ नवीन अन्वेषण की प्यास लिये दिखायी पड़ती है। यह साहित्य की नवीनता सदैव श्लाघ्य है, यदि वह अपना सम्बन्ध बदलते हुए सामाजिक जीवन के मूल सत्यों से बनाये रखे। इस प्रकार नित नवता की एक परम्परा गतिमान रही है। फिर भी नयी कविता नाम स्वतन्त्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया, जो अपनी वस्तु-छवि और रूप-छवि दोनों में पूर्ववर्ती प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है।

नयी कविता की प्रवृत्तियों की परीक्षा करने पर उसकी सबसे पहली विशिष्टता जीवन के प्रति उसकी आस्था में दिखायी पड़ती है। आज की क्षणवादी और लघु-मानववादी दृष्टि जीवन-मूल्यों के प्रति नकारात्मक नहीं, स्वीकारात्मक दृष्टि है। नयी कविता में जीवन का पूर्ण स्वीकार करके उसे भोगने की लालसा है। मनोविज्ञान द्वारा उद्घाटित सत्यों ने यह प्रमाणित किया है कि हम क्षणों में जीते हैं। क्षणों की अनुभूतियां सम्पूर्ण जीवनानुभूति की बाधक नहीं, साधक है। क्षणों को सत्य मान लेने का अर्थ होता है—जीवन की एक-एक अनुभूति को, एक-एक व्यथा को, एक-एक सुख को, सत्य मानकर जीवन को सघन रूप से स्वीकार करना। लघु मानवत्व की जो बात नयी कविता में उठायी गयी है, उसे भी जीवन की पूर्णता के ही सन्दर्भ में देखना होगा। लघु मानव का अर्थ है—वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख-प्यास और मानसिक आंच को लिये-दिये उपेक्षित था। इस लघु मानव का अर्थ यदि मनुष्य की लघुता को खोज-खोजकर सत्य-रूप में उसकी प्रतिष्ठा करने से है, तो निश्चय ही यह अतिवादी, प्रतिक्रियावादी और असत्य जीवन-दृष्टि है। स्वस्थ नयी कविता ने कभी भी इस अर्थ को स्वीकार नहीं किया।

नयी कविता ने जीवन को उपर्युक्त धाराओं की कविताओं की तरह न तो एकांगी रूप में देखा, न केवल महत् रूप में, उसने जीवन को (वह चाहे किसी वर्ग का हो, चाहे व्यक्ति का हो, चाहे समाज का हो) जीवन के रूप में देखा, इसमें कोई सीमा नहीं निर्धारित की। मनुष्य किसी वर्गीय चेतना, सिद्धान्त अथवा आदर्श की बैसाखी पर चलता हुआ इसके पास नहीं आया, वह अपने सम्पूर्ण दु:ख-सुख, राग-विराग के परिवेश से संयुक्त शुद्ध मनुष्य के रूप में आया। अभिप्राय यह है कि नयी कविता कोई वाद नहीं है, जो अपने कथ्य और दृष्टि में सीमित हो। कथ्य की व्यापकता और सृष्टि की उन्मुक्तता नयी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। नयी कविता को हम नया बोध मानते हुए भी

परम्परा से विच्छिन्न करके नहीं देख सकते। नयी कविता के रचयिताओं में से अधिकांश प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के खेमों में रह चुके हैं। उनकी सीमाओं से अवगत होकर वे किसी खुले क्षेत्र में आने को आकुल थे, नयी कविता दोनों के लिए सामान्य भूमि के रूप में प्राप्त हुई। नयी कविता में दो तत्त्व प्रमुख हैं—अनुभूति की सच्चाई और बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि। वह अनुभूति क्षण की हो या एक समूचे काल की, किसी सामान्य व्यक्ति की हो या विशिष्ट पुरुष की, आशा की हो या निराशा की; अपनी सच्चाई में कविता के लिए और जीवन के लिए भी अमूल्य है। नयी कविता में बुद्धिवाद नवीन यथार्थवादी दृष्टि के रूप में भी है और नवीन जीवन-चेतना की पहचान के रूप में भी। दृष्टि हमारे अनुभवों का मूल्यांकन करती है, उनसे तटस्थ बनाये रखने का प्रयत्न करती है और जीवन-चेतना की पहचान हमारी भावात्मक सत्ता को नयी समझ से संक्रान्त बनाती है। संवेदना ज्ञानात्मक हो उठती है।

अनुभूति की सच्चाई की बात बार-बार कही जा रही है। अनुभूति किसकी? कवि की या समाज की? उत्तर है—कवि की। समाज की अनुभूति कवि की अनुभूति बनकर ही कविता में व्यक्त हो सकती है। उसका सर्जक व्यक्तित्व कोई यन्त्र नहीं है। वह हर कच्चे माल को पहले अपने में आत्मसात् करता है, फिर व्यक्त करता है। जितना वह ले पाता है, उतना ही उसके काव्य के लिए सत्य है। इसलिए उसके व्यक्तित्व का संस्कार करनेवाली युग-सत्यग्राही चेतना की आवश्यकता होती है। युगबोध से संस्कृत व्यक्तित्व अपने माध्यम से सबको देख लेता है, क्योंकि मनुष्य अपने मूल दर्द में एक है और कवि का व्यक्तित्व दर्द की संवेदना का जागरूक भोक्ता :

चेहरे थे असंख्य
आँखें थीं
दर्द सभी में था
जीवन का देश सभी ने जाना था
पर दो
केवल दो
मेरे मन में कौंध गयीं
मैं नहीं जानता किसकी वे आँखें थीं
नहीं समझता फिर उनको देखूंगा
परिचय मन ही मन चाहा हो उद्यम कोई नहीं किया
किन्तु उसी की कौंध
मुझे फिर फिर दिखलाती है।

यही परिचित दो आँखें ही
चिर माध्यम है
सब आँखों से सब दर्दों से
मेरे चिर परिचय का। —अज्ञेय

नयी कविता जीवन के एक-एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पूरी चेतना से भोगने का समर्थन करती है। क्षण-बोध शाश्वत-बोध का विरोधी नहीं, उसे प्राप्त करने की

unacademy

यथार्थ प्रक्रिया है। क्षणों में दिखायी पड़नेवाला जीवन-सौन्दर्य, क्षणों में अनुभूत होनेवाली जीवन की व्यथा या उल्लास, क्षणों में लक्षित होनेवाली मन:स्थिति या बाह्य व्यापार, क्षणों की सीमा में स्फूर्जित हो जानेवाला कोई सत्य छोटा नहीं है। अनुभूति-शून्य, व्यथा-रिक्त इतिहास असत्य है, निरर्थक है। इसलिए नयी कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आन्तरिक मार्मिकता के साथ पकड़ लेना चाहती है। इस प्रकार जीवन के सामान्य-से-सामान्य दीखनेवाले व्यापार या प्रसंग नयी कविताओं में नया अर्थ पा जाते हैं।

नयी कविता में क्षणों की अनुभूतियों को लेकर बहुत-सी मर्मस्पर्शी और विचार-प्रेरक कविताएं लिखी गयी हैं। ये कविताएं कुछ क्षणों का, लघु प्रसंगों का, लघु दृश्यों का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि कुछ संगत और असंगत बिम्बों के माध्यम से क्षणों की परिधि में उफनते जीवन की संश्लिष्टता को मूर्तिमान कर देती हैं। ये कविताएं आकार में छोटी होती हैं और प्रभाव में अत्यन्त तीव्र। कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि नयी कविता में चित्रित जीवन-बोध या सत्य विदेशी दर्शन और कविता से उधार लिया गया है और यह कविता यहां के लोगों के जीवन-सत्यों को न ग्रहण कर परोक्ष भाव से पश्चिम के जीवन-सत्यों को ग्रहण करती है। इस आक्षेप में कुछ सत्य है, किन्तु इसे नयी कविता की धारा का मूल स्वर हम नहीं मान सकते। इसे अपवाद रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। कहा जा चुका है कि नयी कविता जीवन को अनुभूति के क्षणों में पकड़ने की पक्षपातिनी है। अनुभूति प्राप्त करनेवाला स्रष्टा अपने परिवेश की उपज होता है। अनुभूतियां उसे अपने परिवेश से ही प्राप्त होती हैं। अत: नयी कविता, अपने परिवेश के जीवन-सत्यों को छोड़कर खड़ी ही कहां रह सकती है?

हां, जीवन-सत्य को हमें दो रूपों में देखना होगा। कुछ जीवन-सत्य किसी विशेष समय और स्थान के होते हैं जो कविता में आकर समय और स्थान के बन्धनों को तोड़ बैठते हैं। कुछ सत्य ऐसे होते हैं, जो प्रकृति से ही देश-काल की दूरियों से परे होते हैं। कविता एक ऐसी संश्लिष्ट कृति है कि इसमें हम परिवेशगत और परिवेशमुक्त सत्य को अलग कर नहीं देख सकते। नयी कविता का स्वर अपने परिवेश की जीवनानुभूति से फूटा है। विभिन्न कविताओं के जीवनानुभव विभिन्न परिवेशों से सम्बद्ध हो सकते हैं। नयी कविता में शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन—इन दोनों परिवेशों को लेकर लिखनेवाले कवि हैं। अज्ञेय एक ऐसे कवि हैं जिनका अनुभव-क्षेत्र बड़ा व्यापक है—शहरी जीवन और देहाती जीवन की तीव्र चेतना इनकी कविताओं को व्यापक रूप देती है। किन्तु सभी कवियों का बोध अज्ञेय के समान व्यापक नहीं है। एक ओर बालकृष्ण राव, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, कुंवर नारायण, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, विजयदेवनारायण साही, रघुवीर सहाय आदि कवि हैं, जिनकी संवेदनाएं और अनुभूतियां मुख्यत: शहरी परिवेश की हैं। दूसरी ओर भवानीप्रसाद मिश्र, केदारनाथ सिंह, शम्भुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि ऐसे कवि हैं, जो मूलत: गांव के संस्कारों और अनुभूतियों से बने हैं। किन्तु यह ऐकान्तिक अलगाव नहीं है। दोनों प्रकार के क्षेत्रों में कवि संक्रमण करते हैं। इस परिवेश के प्रभाव को देखने के लिए एक ओर मदन वात्स्यायन की यान्त्रिक परिवेश की कविताएं देखिए, दूसरी ओर ठाकुरप्रसाद सिंह के संथाली जीवन के वातावरण में सर्जित आर्द्र गीत देखिए। अज्ञेय एक ओर मध्यवर्गीय व्यक्ति-मन की कुण्ठा-निराशा को, औद्योगिक नगरों की असंगति-भरी सभ्यता को उसकी तीव्रता में पकड़ते हैं, तो दूसरी ओर उन्मुक्त प्रकृति या ग्राम-जीवन की किसी छवि, विषमता या व्यथा को व्यंजित करते हैं या प्रकृति और ग्राम्य-जीवन के बिम्ब लेकर अनुभूति या सौन्दर्य का कोई स्वर उभारते हैं।

unacademy

नयी कविता का परिवेश अपने यहां का जीवन है। लेकिन लोगों का आक्षेप है कि नयी कविता में अतिरिक्त अनास्था, निराशा, व्यक्तिवादी कुण्ठा और मरणधर्मिता है। ये विशेषताएं पश्चिम की नकल से पैदा हुई हैं, अत: नयी कविता विदेशी परिवेश से प्रेरणा ग्रहण करती है। यह सत्य है कि नयी कविता में निराशा, कुण्ठा, मरणधर्मिता भी है, किंतु इन विशेषताओं को जन्म देने वाले कारण अपने समाज में ही है। समाज का परिवेश बड़ा विषम है। यदि सामाजिक स्थिति में तड़पते व्यक्ति को निराशा, कुण्ठा, लाचारी और मृत्यु की कामना प्राप्त होती है तो वह उधार में सुख, आशा और जीवन की प्रपंचना कहां से लायेगा? जीवन के हर क्षण को विश्वास के साथ भोगना, उसकी पीड़ा और निराशा को भी जीवन-सत्य मानकर सच्चे रूप में भोगना ही जीवन का सच्चा उपभोग है; और असल में यही जीवन की आस्था है। किन्तु पीड़ा और निराशा को जीवन का मूल सत्य मानकर दिन-रात मरसिया पढ़ने का उपदेश देना सामाजिक जीवन के समस्त विकास के पीछे कार्य करनेवाली मनुष्य की जिजीविषा, प्रेम और उल्लास को अस्वीकार करना है। नयी कविता में भी पीड़ा और निराशा को कहीं-कहीं जीवन का एक पक्ष न मानकर समग्र जीवन-सत्य मान लिया गया है। वहां पीड़ा जीवन की सर्जनात्मक शक्ति न बनकर उसे गतिहीन करनेवाली बाधा बनकर आयी है। ऐसी दृष्टि समाज या व्यक्ति-जीवन के अभाव-पक्ष को ही उद्घाटित करने में रस लेती है। अभाव-पक्ष के उद्घाटन की सार्थकता तभी है जब कविता उपलब्धि-सी दीखनेवाली किसी चीज़ के भीतर की रिक्तता को व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त करे या वह अभाव-पक्ष के भीतर से जीवन की ओर संकेत करे। नयी कविता जीवन-मूल्यों की पुन: परीक्षा करती है। ये मूल्य नवीन युग की आवश्यकताओं के परिवेश में कितने खरे उतरते हैं और अपने रूढ़ रूप में कितने असंगतिपूर्ण हो गये हैं, इनका कितना स्वरूप आज के लिए भी ग्राह्य है; जागरूक कवि और चिन्तक को यह परीक्षा करनी पड़ती है।

नयी कविता ने जीवन-मूल्यों की फिर परीक्षा की है, जिसके ये परिणाम सामने आये हैं : कुछ मूल्य तो निश्चय ही सामयिक थे जो आज सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही रूपों में व्यर्थ हो गये हैं तथा कुछ मूल्य अपनी प्रकृति में मानव-जीवन की चिरन्तन निधि सिद्ध हैं, किन्तु वे व्यवहार में बड़े निकम्मे तरीके से प्रयुक्त किये गये हैं—वे केवल नीति-वाक्यों के रूप में उच्चरित किये जाते हैं। नयी कविता की प्रश्नाकुल दृष्टि इन मूल्यों को उनकी विकसित असंगतियों के बीच देखती है। इसलिए जहां ये मूल्य अपनी असंगतियों के कारण तीखे व्यंग्य का भाजन बनते हैं वहीं नये सन्दर्भों में भी सिद्ध होनेवाली उपयोगिता के कारण आस्था का आधार। नये मूल्यों की पुन: परीक्षा का क्रम नया नहीं है। हर युग ने पुराने मूल्यों को अपने सन्दर्भ में कसा है, किन्तु इन युगों की कविताओं के सामने समाधान के तौर पर कोई आदर्शवाद उतर आता रहा है और प्रश्नाकुलता का स्थान भावात्मक मानवतावादी आस्था लेती रही है। परन्तु नयी कविता की यथार्थवादी दृष्टि काल्पनिक या आदर्शवादी या भावुकतामिश्रित मानववाद से सन्तुष्ट न होकर जीवन का मूल्य, उसका सौन्दर्य, उसका प्रकाश जीवन में ही खोजती है। वर्तमान की गहन निराशा और विखराव के बीच भी वह अनागत ज्योति के लिए प्रतीक्ष्यमान है। नयी कविता द्विवेदीकालीन कविता, छायावाद या प्रगतिवाद की तरह अपने बने-बनाये मूल्यवादी नुस्खे नहीं पेश करती, वह तो उसे जीवन की सच्ची व्यथा के भीतर पाना चाहती है। इसलिए नयी कविता में व्यंग्य के रूप में कहीं पुराने मूल्यों की अस्वीकृति है, तो कहीं दर्द की सच्चाई के भीतर से उगते हुए नये मूल्यों की सम्भावना के प्रति आस्था। नयी कविता ने धर्म, दर्शन, नीति, आचार सभी प्रकार के मूल्यों को चुनौती दी है; और जीवन की नवीन अनुभूति, नवीन चिन्तन, नवीन

unacademy

गति के मार्ग में आनेवाले फ़ॉर्मूलों अथवा मूल्यों की विघातक असंगतियों को अनावृत करना सर्जनात्मकता से असम्बद्ध नहीं है, वरन् सर्जन की आकुलता ही है।

लोक-सम्पृक्ति नयी कविता की एक खास विशेषता है। वह सहज लोक-जीवन के करीब पहुँचने का प्रयत्न कर रही है। लोक-जीवन के प्रति उसकी उन्मुखता प्रगतिवाद का प्रभाव कही जा सकती है, किन्तु प्रगतिवाद में एक आन्दोलन का स्वर था, सहजता नहीं थी; और उसने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण लोक-जीवन का एक विशिष्ट अर्थ लगा लिया था। प्रयोगवाद लोक-जीवन से कट गया था। नयी कविता ने लोक-जीवन की अनुभूति, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। साथ ही साथ लोक-जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक-जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया। प्रश्न यह उठता है कि लोक-जीवन की संवेदना और बिम्बों की सहज सुन्दरता से पूर्ण होकर भी नयी कविता क्यों लोकप्रिय नहीं हो पाती? कारण यह है कि वह लोक-जीवन की सतही भावनाओं का इतिवृत्त नहीं पेश करती, अपितु लोक-जीवन में लिये गये बिम्बों के माध्यम से लोक-जीवन की जटिल अनुभूतियों और प्रश्नों को ध्वनित करती है। कविता के ऊपरी आयोजन नयी कविता वहन नहीं कर सकती, वह अपनी अन्तर्लय, बिम्बात्मकता, नव प्रतीक-योजना, नये विशेषणों के प्रयोग, नव उपमान-संघटना में कविता के शिल्प की मान्य धारणाओं से काफ़ी अलग दीखती है। अर्थात् वह बाह्य चमत्कारों से मुक्त होकर कविता के लिए जो मूलभूत छवि होती है, उसी को संयोजित करना चाहती है। बिम्ब कविता की मूल छवि है, इसलिए आज की कविता बिम्बबहुला हो गयी है। कच्ची अनुकृतिया करनेवाले, पुस्तकों तथा सिद्धान्तों से प्रेरणा लेनेवाले कवियों के अपवादों को छोड़कर शेष कवि इन बिम्बों को जीवन के बीच से

सिद्धान्तों से प्रेरणा लेनेवाले कवियों के अपवादों को छोड़कर शेष कवि इन बिम्बों को जीवन के बीच से चुनते हैं। भाषा भी मुक्त भाव से ऐसे शब्दों को लेती है जो अभिजात नहीं है, लेकिन सशक्त है, अपने बीच मिट्टी की गन्ध छिपाये हुए हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि नयी कविता जीवन के नये सन्दर्भों में उभरनेवाली अनुभूतियों, सौन्दर्य-प्रतीतियों और चिन्तन-आयामों से सम्पृक्त बिम्ब ग्रहण करती है। शहरी कवि के बिम्ब विशेषतया नागरिक जीवन के और ग्रामीण जीवन-संस्कारों से युक्त कवि के बिम्ब विशेषतया गांव के होते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार के बिम्ब नयी कविता में हैं। नयी कविता ने अपने बिम्ब और प्रतीक पुराण और इतिहास से भी चुने हैं, लेकिन उन्हें नये अर्थ और सन्दर्भ से सम्पन्न किया है। अनेकानेक फुटकल कविताओं के अतिरिक्त 'अन्धा युग', 'कनुप्रिया' और 'आत्मजयी' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं।

लोक-सम्पृक्ति के सन्दर्भ में लोक-जीवन से लिये गये शब्दों की ओर भी एक दृष्टि डाल लें। छायावाद की शब्दावली विशेषत: संस्कृत की तत्सम शब्दावली थी और उसके आभिजात्य, माधुर्य और सुकुमारता की रक्षा का विशेष ध्यान रखा गया था। प्रगतिवाद में लोक-शब्दों के प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया गया। किन्तु प्रयोगवाद ने फिर लोक-जीवन से सम्बन्ध काटकर रोमानी या बोझिल पदावली का प्रयोग किया। नयी कविता ने प्रगतिवाद की राह को पकड़ा। प्रगतिवाद ने विशेष क्षेत्रों से विशेष-विशेष सन्दर्भ में ही लोक-शब्द लिये थे। परन्तु नयी कविता ने सभी प्रकार के सन्दर्भों के लिए लोक-शब्द चुने। अज्ञेय प्रयोगवादी भी रहे हैं और नये कवि भी। एक ओर इनकी प्रयोगवादी शब्दावली देखिए :

वचना है चाँदनी सित
झुठ वह आकाश का निरवधि

unacademy

गहन विस्तार
शिशिर की राका निशा की
शान्ति है निस्सार।

दूसरी ओर इनकी नयी कविता की शब्दावली द्रष्टव्य है :

पहाड़ियों से घिरी हुई
इस छोटी-सी घाटी में
ये मुंहझौंसी चिमनियां बराबर
धुआं उगलती जाती हैं।

टोये, भभके-खिंचा, सीटी, ठिठुरन, चिड़चिड़ी, ठसकना, पूलें, ठूंठ, विरस, सिराया, ठर हुई, डाकती, फुनगियाना—जैसे अनेक शब्द नयी धारा की कविताओं और गीतों में धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रहे हैं। इसलिए नयी कविता की भाषा में एक खुलापन और ताज़गी दिखायी देती है।

यहां नयी हिन्दी कविता की सामान्य प्रवृत्तियों और उपलब्धियों की ओर संकेत करने का प्रयास किया गया है; किन्तु काव्यात्मक स्तर पर हर कवि की अपनी-अपनी सीमा और उपलब्धि होती है। अलग-अलग कवियों के स्तर अलग-अलग हैं। किसी का संवेदन बहुत ही गत्यात्मक, व्यापक और गहरा है, तो किसी का अपेक्षाकृत संकीर्ण और उथला। किसी का सौन्दर्यबोध अधिक सामाजिक है, तो किसी का अपेक्षाकृत व्यक्तिगत। किसी में जीवन का व्यथा-पक्ष प्रधान है, किसी में आनन्द-पक्ष। किसी के शिल्प में अधिक सघनता है, तो किसी में अपेक्षाकृत कथन-प्रणाली की स्फीति। कोई खण्डित बिम्बों और मुक्त साहचर्य का प्रयोग कर कविता को जटिल बनाता है, कोई बिम्बों की सघनता के बावजूद उसमें तारतम्य बनाये रखने के कारण अधिक संवेद्य प्रतीत होता है। अनुभूतिहीन, अस्वायत्त सत्य को कह चलनेवाले ऐसे बहुतेरे कवि मिलेंगे, जो नयी कविता को एक फैशन समझ बैठे हैं। अनुभूति-शून्यता को अभिव्यक्ति की अस्पष्टता, अटपटेपन, दुरूहता में छिपाने का फैशन यहां

तक बढ़ गया है कि ढेर-सी नयी कविताओं के बीच में बहुत से कवियों के व्यक्तित्व को पहचानना मुश्किल हो गया है। दूसरी ओर, कुछ ऐसे भी लोग उभर रहे हैं जिनके पास कुछ बातें कहने को तो हैं, किन्तु उन्हें कह ही डालते हैं राई रत्ती—बिम्ब या प्रतीक से नहीं, सीधे-सीधे। जब कभी बिम्ब या प्रतीक उनके मन में उभरता भी है तो वे उसे रूपक के रूप में प्रयुक्त कर देते हैं और फिर बात तथ्य-कथन-प्रणाली पर ही आकर रुक जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि कोई ऐसा कथ्य उनकी अनुभूतियों को चीरता हुआ नहीं उभरता जो अपनी तीव्रता में अपने से सम्बद्ध बिम्ब के माध्यम से ध्वनित हो उठे, बल्कि वे सतह पर फैले हुए तथ्यों को बटोरते हैं।

अज्ञेय : इनका जन्म (१९११-८७) कसया (देवरिया) में हुआ था। बी.एस-सी. तक शिक्षा पाने के बाद इन्होंने अंगरेज़ी तथा हिन्दी-साहित्य का स्वाध्याय किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। अज्ञेय का जीवन यायावरी और क्रान्तिकारी रहा है। इसीलिए ये किसी व्यवस्था से बंधकर नहीं रह सके। १९४३ से १९४६ तक इन्होंने सेना में नौकरी की। कई बार ये सांस्कृतिक कार्यों के लिए अमेरिका गये। कुछ दिनों तक ये जोधपुर विश्वविद्यालय में भी कार्यरत रहे। कवि के साथ-साथ ये प्रख्यात कथाकार, समीक्षक और चिन्तक-विचारक भी हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्हें 'दिनमान' और 'प्रतीक' के सम्पादक रूप में ख्याति प्राप्त हुई है। 'तार सप्तक', 'दूसरा

unacademy

सप्तक', 'तीसरा सप्तक' और 'रूपाम्बरा' इनके द्वारा सम्पादित काव्य-संकलन हैं। 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' की छायावादी कविताओं से अपनी काव्य-यात्रा आरम्भ करनेवाले अज्ञेय प्रयोगवाद और नयी कविता के विशिष्ट कवि हैं। इस धारा के कवियों में उनका स्वर सबसे अधिक वैविध्यपूर्ण है। उनका स्वर अहं से लेकर समाज तक, प्रेम से लेकर दर्शन तक, आदिम गन्ध से लेकर विज्ञान की चेतना तक, यन्त्र-सभ्यता से लेकर लोक-परिवेश तक, यातना-बोध से लेकर विद्रोह की ललकार तक, प्रकृति-सौन्दर्य से लेकर मानव-सौन्दर्य तक फैला हुआ है। यह बात और है कि इस व्याप्ति में सर्वत्र संवेदनशीलता या अनुभूति साथ नहीं देती, कहीं-कहीं कोरी बौद्धिकता या शुष्क बोध उभर आता है।

'तार सप्तक' की कविताओं के साथ अज्ञेय की नयी काव्य-यात्रा प्रारम्भ होती है, जो बाद में 'इत्यलम' में संगृहीत दिखायी पड़ती है। अज्ञेय में संवेदना के साथ एक सजग बौद्धिकता है। यह बौद्धिकता उनकी संवेदना को नियन्त्रित तो करती ही है; साथ ही कभी नवीन सूक्तियों के रूप में (जैसे 'दु:ख सब को मांजता है' या 'अच्छा खण्डित सत्य सुघर नीरन्ध्र मृषा से' आदि कविताओं में), कभी व्यंग्य के रूप में (जैसे 'सांप'), कभी युग-चिन्तन और बोध के बिम्ब-विधान के रूप में व्यक्त होती है जो संवेदना या अनुभूति से अन्तरंग भाव से जुड़ी न होने के कारण बिम्ब-रचना के बावजूद बहुत दूर तक प्रभावहीन हो जाती है। अज्ञेय की कविताओं में जो स्वर-वैविध्य दिखायी पड़ता है उसका कारण बहुत-कुछ उनकी बौद्धिकता है। संवेदना और बौद्धिकता की यह सहयात्रा जहां रूमानी परम्परा को तोड़कर नये सौन्दर्यबोध से सम्पन्न स्वस्थ काव्य की सृष्टि करती है वहीं बौद्धिकता का अतिरेक शुष्क, दुरूह और नव रहस्यवादी कविता को जन्म देता है। अज्ञेय की छोटी-छोटी कविताएं सौन्दर्य और प्रभाव की सृष्टि की दृष्टि से विशिष्ट और सक्षम हैं—वे चाहे व्यंग्य करती हों, चाहे कोई सौन्दर्य या अनुभव जगाती हों, चाहे रूप की अभिव्यक्ति करती हों। दो कविताएं देखें :

(अ) उड़ गयी चिड़िया
काँपी फिर
थिर
हो गयी पत्ती।

(आ) बह चुकीं बहकी हवाएं चैत की
कट गयीं फूलें हमारे खेत की
कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप की
गिन रहा होगा महाजन सेंत की।

गिरिजाकुमार माथुर : इनका जन्म मध्यप्रदेश में सन् १९१९ में हुआ। एम.ए. (अंगरेजी), एल-एल.बी. तक शिक्षा पाने के बाद इन्होंने प्रारम्भ में वकालत और फिर दिल्ली सेक्रेटेरिएट में नौकरी की। उसके बाद ये आकाशवाणी तथा दूरदर्शन में उपमहानिदेशक रहे। सम्प्रति 'गगनांचल' के सम्पादक हैं। माथुर में प्रयोग और संवेदना का बहुत सुन्दर सामंजस्य है अर्थात् प्रयोग कहीं भी बौद्धिक भंगिमा या फैशन के वशीभूत होकर नहीं आया है, वह उनकी अनुभूतियों और संवेदनाओं के सूक्ष्म कोणों, रंगों और प्रभावों को व्यक्त करने की आकुलता से जुड़ा हुआ है। कवि ने छन्द, भाषा और बिम्ब-विधान सभी में प्रयोग किये हैं। छन्द तो प्राय: सर्वत्र लययुक्त है, नवीनत

unacademy

इसमें है कि कवि ने कहीं-कहीं सवैया को तोड़कर नया छन्द-रूप दिया है। उनके काव्य के दो स्वरूप है—'मंजीर' और 'तार सप्तक' में उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियां किन्तु 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान' तथा 'शिलापंख चमकीले' में सामाजिक जीवन की अनुभूतियां और यथार्थ उभरते गये है। 'तार सप्तक' में जीवन-यथार्थ के नये आयाम उद्‌घाटित नहीं किये गये है। वे अपने परिवेश के जीवन-सत्यों से भी जुड़े नहीं प्रतीत होते, उनकी संवेदना अत्यन्त रूमानी प्रतीत होती है। प्रकृति की रंगमयता, उसकी उदासी, सौन्दर्य-प्यास, प्रेम-प्रसंगों की स्मृतियों का दंश, सुन्दर वातावरण में साथी-विहीन अकेलेपन का बोध आदि इनके अनुभव और संवेदना के अंग है। इनके रचना-लोक में विभिन्न रूप-रंगों में, ध्वनियों, गन्धों और स्पर्शों में इन्हीं के दर्शन होते है।

सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में
रूखे पतझर भरे जंगल के टीलों पर
कांप कर चलती समीर हेमंत की
लम्बी लहर-सी।

(तार सप्तक) ।

इन सीमित जीवन-अनुभवों को लेकर भी माथुर एक विशिष्ट कवि है, क्योंकि वे इन अनुभवों की बहुत गहरी और सूक्ष्म छायाओं को पहचानते है।

'नाश और निर्माण' में 'तार सप्तक' वाली कविताएं तो संगृहीत है ही, साथ ही ऐसी कविताएं भी है जो सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। इन तथा अन्य परवर्ती कविताओं में शक्ति, उल्लास और सामाजिक जीवन का स्पन्दन है, पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के रूप और विषम परिणामों का तीव्र अहसास तथा उनके विरुद्ध समाजवादी चेतना का प्रसार है।

गजानन माधव मुक्तिबोध : मुक्तिबोध (१९१७-१९६४) का जन्म ग्वालियर के एक कस्बे में हुआ था। इन्होंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की और ये अध्यापक, पत्रकार, विशिष्ट विचारक, कवि, कथाकार और समीक्षक के रूप में समादृत रहे। अपनी पूरी पीढ़ी में मुक्तिबोध का व्यक्तित्व विशिष्ट है। इस पीढ़ी और इसी से लगी हुई परवर्ती पीढ़ी के लगभग सारे महत्त्वपूर्ण कवि (अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, भारती आदि) रूमानी कविता से अलग हटकर नया प्रयोग करने का प्रयत्न करते हुए भी रूमानी संवेदना और भाषा से मुक्त नहीं हो सके, किन्तु मुक्तिबोध एक ऐसे कवि है जिनका अनुभव-जगत् बहुत व्यापक है, जो अपने परिवेश के जीवन से बहुत गहन भाव से जुड़े हुए है। उनकी प्रगतिवादी दृष्टि परिवेश-बोध, सामाजिक चिन्तन और अनुभव-वैविध्य को और बल देती है। अतः कहा जा सकता है कि बाद में जीवन की बहुविध छवि को लेकर विकसित होनेवाली नयी कविता के अग्रज कवि सच्चे अर्थों में मुक्तिबोध ही है। उनकी सबसे बड़ी शक्ति है—लोक-परिवेश से गहरी सम्पृक्ति तथा जन-जीवन में विश्वास :

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है

unacademy

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है
पल भर में सबसे गुज़रना चाहता हूं
इस तरह खुद ही को दिये फिरता हूं
अजीब है जिन्दगी : *(चांद का मुंह टेढ़ा है)*

किन्तु शिल्प के प्रति असावधानता उनके अनुभव-खण्डों को एक में बांध नहीं पाती और समग्रत: बिम्बों की रचना में संश्लिष्टता तथा सघनता नहीं भर पाती। मुक्तिबोध में फैंटेसी है अर्थात एक जादुई कथा में आधुनिक जीवन-अनुभवों की अभिव्यक्ति है। 'अंधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस' कविताएं इस दृष्टि से अत्यधिक उल्लेखनीय हैं। उनकी अनुभूति केवल व्यक्तिगत संवेदन के स्तर की नहीं है, वह अपने परिवेश से गहरे जुड़ी है और अनेक आवर्तों से लिपटी है तथा कवि की आलोचक दृष्टि रचनात्मक सन्दर्भ में लक्षित होनेवाली इनकी सार्थकता और निरर्थकता की जांच करती चलती है।

भवानीप्रसाद मिश्र (१९१४-१९८५) : बी.ए. तक शिक्षा पाने के बाद ये पहले 'कल्पना' में सम्पादक थे, फिर ऑल इंडिया रेडियो में नौकरी की और अवकाश प्राप्त करने तक सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय के सम्पादक-मण्डल में रहे। ये सहज संवेदना के कवि हैं। कवि की संवेदना कहीं तो बहुत सूक्ष्म और आत्मगत है, जैसे—'कमल के फूल', 'वाणी की दीनता', 'टूटने का सुख' आदि में; कहीं बहुत प्रत्यक्ष और परिवेश-सम्पृक्त है, जैसे—'सतपुड़ा के जंगल', 'सन्नाटा', 'गीतफरोश' आदि कविताओं में। कवि की सहजता सघन अनुभूति तथा संयत अभिव्यक्ति के क्षणों में जहां अत्यन्त सुन्दर काव्य की सृष्टि करती है, वहीं फार्मूलाबद्ध आदर्शवादिता अनुभूति के सतहीपन तथा अभिव्यक्ति के तुकान्तवादी विस्तार की अवस्था में सामान्य काव्य की 'असाधारण' और 'स्नेह शपथ' जैसी उनकी काफ़ी कविताएं हैं, जो सामान्य हैं। उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में भी लोक-जीवन का प्रभाव है।

प्रभाव है।

शमशेरबहादुर सिंह : इनका जन्म सन् १९११ में देहरादून में हुआ था। बी.ए. करने के बाद ये 'कहानी' और 'नया साहित्य' के सम्पादक-मण्डल में रहे, सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू-विभाग में कोश से सम्बन्धित कार्य कर रहे हैं। विचारों से मार्क्सवादी शमशेर संस्कारों से व्यक्तिवादी और अनुभवों से रूमानी हैं। उनकी अधिकांश कविताओं का स्वर कुण्ठित प्रेम का है। संवेदना और अभिव्यक्ति—दोनों में ये प्रयोगवाद की अतिशय व्यक्तिवादिता के प्रतीक हैं। इनकी अतिशय व्यक्तिवादिता केवल अपने प्रतिबद्ध होने के कारण पाठकों की समझ की उपेक्षा कर जाती है और ऐसे-ऐसे महीन जाल बुनती है तथा खण्डित बिम्बों की योजना करती है कि पूरी कविता अपने अभिप्रेत प्रभाव के साथ उभर नहीं पाती। शमशेर बहुत सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध के कवि माने जाते हैं, किन्तु कठिनाई यह है कि सौन्दर्य यहां-वहां की कुछ पंक्तियों में अलग-अलग ढंग से उभरकर रह जाता है। मुक्त प्रसंग, चेतना-प्रवाह, अमूर्त चित्रात्मकता, शब्द-संगीत आदि शमशेर के शिल्प को एक नया रूप अवश्य देते हैं, किन्तु वे अनुभव-लोक को मूर्त करने के स्थान पर उलझा देते हैं।

धर्मवीर भारती : भारती का जन्म सन् १९२६ में इलाहाबाद में हुआ। ये हिन्दी में एम.ए., पी-एच.डी. हैं। प्रारम्भ में ये इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक रहे, १९८७ तक

unacademy

'धर्मयुग' के सम्पादक रहे। कवि के साथ-साथ ये विशिष्ट कथाकार और समीक्षक भी हैं। भारती की काव्योपलब्धियां वास्तव में उनकी परवर्ती कृतियों—'अन्धा युग', 'कनुप्रिया' और 'सात गीत वर्ष' में दिखायी पड़ती हैं। आरम्भ की कविताएं बहुत-कुछ कैशोर भावुकता से युक्त हैं। भारती में आदिम गन्ध की तड़प और लोक-जीवन की रूमानी छवि की पकड़ है। इसलिए इनकी कविताएं मूलत. गीतात्मक हैं। इन कविताओं में लोक-परिवेश की मस्ती और उल्लास के स्थान पर उदासी और सूनापन ही अधिक उभरता है :

घास के रस्ते उस बंसवट से
इक पीली-सी चिड़िया
उसका कुछ अच्छा-सा नाम है
मुझे पुकारे ताना मारे
भर आयें आंखड़ियां
उन्मन यह फागुन की शाम है। *(ठण्डा लोहा)*

भारती के काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता है—उसकी मूर्तता और पारदर्शिता, जो उनके परवर्ती गम्भीर और चिन्तन-संवलित काव्यों में भी लक्षित होती है। 'सात गीत वर्ष' की कविताओं में कवि की रूमानी भावुकता ने यथार्थ की गहराई पा ली है, बहुत-सी कविताएं यहां भी प्रेममूलक हैं, किन्तु यहां प्रेम के बहुत सूक्ष्म संक्रान्त अनुभवों को उभारा गया है। इसमें कुछ व्यंग्यात्मक कविताएं भी हैं जो किसी सांस्कृतिक, सामाजिक या राजनीतिक विसंगति पर हलका-हलका आघात करती है। मूल्यों सम्बन्धी प्रश्न भी उभारे गये हैं, किन्तु मानव-संवेदना की आंच में।

unacademy

कुछ विशिष्ट प्रबन्धकाव्य

कहा जाता है कि आज का युग प्रबन्धकाव्यों का युग नहीं है। शायद इसका कारण यह है कि प्रबन्धकाव्य के पीछे जो मान्यताएं रही हैं, वे चुक गयी हैं अर्थात् प्रबन्धकाव्य का पूर्वमान्य स्वरूप आज के युग को रूपायित करने में असमर्थ है। आज के मनोवैज्ञानिक युग में मानव-व्यक्तित्व की धारणा बदल गयी है। पूर्वमान्य प्रबन्धों में जो पात्र गृहीत हुए हैं, वे कुछ स्वीकृत गुणों और दोषों या उनके मिश्रित रूपों के सम्पुंज प्रतीत होते हैं। दूसरी बात यह है कि वे पात्र समय के विस्तार में फैलते हैं; जहां कुछ हरियालियां हैं, कुछ शुष्क उपेक्षणीय ऊसर, कुछ मान्य महत्त्वपूर्ण घटनाएं हैं, प्रसंग हैं, मर्मस्पर्शी अवसर हैं और हैं—महत्त्वहीन घड़ियां और स्थल। पात्र एक महत्त्वपूर्ण से दूसरे महत्त्वपूर्ण तक दौड़ते हैं। शेष समय और स्थान तो केवल दूरी भरने के लिए होते हैं। अतः देश और काल के विस्तार में दौड़ते हुए भी पात्र पूर्व-स्वीकृत जीवन-तीर्थों की ही यात्रा करते हैं। वे अपने भीतर की तन्मयता से हर क्षण और हर स्थल को तीर्थ नहीं बना सकते। कहना न होगा कि विगत युगों की जीवन-दृष्टियां, आदर्शवादी मान्यताएं, रसवादी रुचियां और व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतीतियां प्रबन्धकाव्य के उपर्युक्त स्वरूप की रचना में सहायक होती रही हैं।

प्रबन्धकाव्य-रचना आज की सर्जक रुचि के अनुकूल नहीं पड़ती। यदि प्रबन्धकाव्य लिखा ही जाय तो उसे शिल्प और भावबोध में आज के अनुकूल होना पड़ेगा। यानी वह स्थूल मांसल कथा, सम्पूर्ण व्यक्तित्व और विराट् समय-प्रवाह की श्रृंखला में एकसूत्रित न होकर मनःसत्यों की सूक्ष्म

unacademy

रेखाओं, चिन्तन के द्वन्द्वों, विघटित व्यक्तित्वों और क्षणानुभूतियों की प्रतीति को लेकर मुक्त साहचर्य के सूत्रों से अनुस्यूत होगा। स्वभावतः ऐसा प्रबन्धकाव्य आकार से छोटा ही होगा। दूसरे, उसमें आज के मूल्यों, बोधों, संवेदनाओं, प्रश्नों और आकांक्षाओं की आंच होगी। इस प्रकार कथानक चाहे पुराण या इतिहास से लिया गया हो या वर्तमान से, उसकी सांस समकालीन होगी। इसीलिए आधुनिक काल में जितने अच्छे प्रबन्धकाव्य लिखे गये हैं उनमें अतीत में वर्तमान का प्रक्षेपण किया गया है। आधुनिक जीवन-मूल्यों की खोज अतीत में भी की गयी है और सर्जन के स्तर पर अतीत को अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए वर्तमान का प्रक्षेपण उसमें करना ही होगा। स्वाधीनता के बाद लिखे गये प्रबन्धकाव्यों में ये विशेषताएं कहीं कम और कहीं अधिक मात्रा में लक्षित होती हैं। वास्तव में परम्परावादी शिल्प और धारणाओं का अनुगमन कर प्रबन्ध लिख लेना बहुत आसान है और स्वाधीनता के बाद भी ऐसे प्राण-प्राण-रहित प्रबन्धकाव्यों की कमी नहीं है।

सन १९३८ के बाद जो महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध-कृतियां सामने आयी हैं, उनमें मैथिलीशरण गुप्त की 'जयभारत' और 'विष्णुप्रिया', गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की 'विक्रमादित्य', मोहनलाल महतो 'वियोगी' की 'आर्यावर्त', दिनकर की 'रश्मिरथी', 'कुरुक्षेत्र' तथा 'उर्वशी', सियारामशरण गुप्त की 'उन्मुक्त', सुमित्रानन्दन पन्त की 'लोकायतन', रामानन्द तिवारी (भारतीनन्दन) का 'पार्वती महाकाव्य', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की 'मृतम्बरा', धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' ठाकुरप्रसाद सिंह की 'महामानव', नरेन्द्र शर्मा की 'द्रोपदी' तथा 'उत्तर जय', कुंवरनारायण की 'आत्मजयी', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात' और डॉ. विनय की 'एक पुरुष और' उल्लेखनीय है।[1]

गुप्त जी और दिनकर जी दोनों ही पहले के मंजे हुए प्रबन्धकार हैं। दोनों ही आधुनिक चिन्तन की उष्मा का आरम्भ से ही अनुभव करते आये हैं। ये दोनों आधुनिकता को आधुनिक मानवतावाद के रूप में स्वीकार करते हैं—उस मानवतावाद के रूप में, जिसमें समस्त उपेक्षित लघु या सामान्य को एक नयी दृष्टि से देखा गया है, उसकी अदृष्ट तिरस्कृत पीड़ा, यातना, कामना, त्याग और संघर्ष का मूल्य आंका गया है और पूर्वमान्य समादृत आभिजात्य के खोखलेपन को उद्घाटित किया गया है (यह कार्य गुप्त जी की अपेक्षा दिनकर ने अधिक किया है) या उस आभिजात्य को नवीन जीवन-सन्दर्भों से जोड़कर एक नयी छवि दी गयी है। मानवतावादी दृष्टि ने उपेक्षित और आदर्शवादी पात्रों की ऊपरी लघुता और महानता को उघाड़-उघाड़ से फाड़कर भीतर उफनते मानवीय दर्दों को, संवेदनशील क्षणों को व्यंजित किया है, किन्तु अन्ततोगत्वा वे मनोविज्ञान की विघटित व्यक्तित्ववाली धारणा को न मानकर अखण्ड व्यक्तित्ववाली मानवता को ही लेकर चले हैं। अतः वे अपने चिन्तन-मनन में मानवीय सामाजिक प्रश्नों की पकड़ में नये होकर भी दूर तक परम्परावादी ही रहे हैं।

गुप्त जी के **जयभारत** की कथा 'महाभारत' की कथा का हिन्दी-रूपान्तर है और 'विष्णुप्रिया' में चैतन्य महाप्रभु की धर्मपत्नी विष्णुप्रिया का चरित्र-गान किया गया है। गुप्त जी मूलतः वैष्णव-संस्कार के कवि हैं। वास्तव में उन्होंने इस संस्कार के ही माध्यम से आधुनिक युग को देखा है। 'जयभारत' में 'साकेत', 'पंचवटी' और 'यशोधरा' के समान प्रबन्धत्व का नवीन उन्मेष लक्षित नहीं होता। इसमें कथा का नया आयोजन, भावभूतियों की नवीन सृष्टि और मूल्यों की नवीन कथा-संयोजना दिखायी नहीं पड़ती। गुप्त जी ने इतना ही किया है कि 'महाभारत' की व्यापक कथा को एक क्रम से सजा दिया है, कथा को आवश्यक स्फीति या संक्षिप्ति देकर अभिप्रेत प्रभाव व्यक्त किया है और जहां मार्मिक प्रसंग आये हैं ('महाभारत' में मार्मिक प्रसंगों की क्या कमी?), उन्हें अपनी ओर से

unacademy

और भी उभारकर भावमय कर दिया है। कहीं-कहीं स्वीकृत कथा के ही प्रसंग में कवि ने छोटी-छोटी भावोद्भावनाएं कर काव्य को चमका देने का प्रयत्न किया है।

विष्णुप्रिया को भी 'जयभारत' की भाँति गुप्त जी का गौरव-ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता—न तो प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से और न भाव-सौन्दर्य की गरिमा की ही दृष्टि से। हां, 'विष्णुप्रिया' में एक बात ऐसी अवश्य है, जो इसे आधुनिक संवेदना की गहनता प्रदान करती है और वह है—शची (चैतन्य की मां) और विष्णुप्रिया का आधुनिक नारी-सुलभ असन्तोष या ईषत् विद्रोही दृष्टि। मां और पत्नी दोनों अन्ततोगत्वा भारतीय मां और पत्नी ही हैं। अतः दोनों अपने पुत्र और पति की मंगल-कामना में ही अपना सुख मानती हैं, किन्तु दोनों (विशेषतया शची) मन से चैतन्य के गृह-त्याग के कार्य को न्यायसंगत नहीं मान पातीं। विष्णुप्रिया की यह उक्ति कितनी बड़ी चोट है हमारी व्यवस्था पर: "नारी निकले तो असती है, नर यती कहा कर चल निकले।"

गुप्त जी की भाषा में एक ऋजुता है। नयी भाषा की बिम्बात्मकता, सांकेतिकता और प्रयोगशीलता गुप्त जी की भाषा में नहीं है, फिर भी उनकी ऋजुता उसे लोकभाषा के समीप खींच लाती है।

विक्रमादित्य (१९४४) गुरुभक्तसिंह 'भक्त' (जन्म १८९३) का सुप्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य है, जो शिल्प की दृष्टि से उनकी पूर्ववर्ती कृति 'नूरजहां' (१९३५) से श्रेष्ठ है। इसका कथानक विशाखदत्त के 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक के उपलब्ध अंश पर आधारित है, जिसे महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करने के उद्देश्य से न केवल इतिहास का शोधपूर्वक अध्ययन किया गया है, अपितु उसे नवीन रूपान्तर देने के लिए विधायक कल्पना का आश्रय भी लिया गया है। परिवेश की यथार्थता, जीवन-दर्शन की सूक्ष्मता, प्रतिपाद्य की सरसता और छायावाद के शिल्प-वैभव का इस कृति में समन्वित रूप में संयोजन हुआ है; अतः इस युग के प्रबन्धकाव्यों में इसका विशिष्ट स्थान है।

रश्मिरथी दिनकर का कथानक महाभारत से लिया गया है, किन्तु इसमें 'जयभारत' की तरह सम्पूर्ण 'महाभारत' को गाने का मोह न होकर केवल कर्ण के चरित्र को आधुनिक मानवतावाद के प्रकाश में उद्घाटित किया गया है। कर्ण के जीवन में घटित प्रसंगों के सन्दर्भ में कवि ने आज के जीवन के अनेक प्रश्नों और संवेदनाओं को, दृष्टियों और चिन्तन-पद्धतियों को, मूल्यों और आकांक्षाओं को उद्घाटित किया है :

मैं उनका आदर्श जो व्यथा न खोल सकेंगे
पूछेगा जग किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा
श्रम से नहीं विमुख होंगे जो दुख से नहीं डरेंगे। **(रश्मिरथी)**

कवि ने कुछ अन्य पात्रों (जैसे परशुराम और कुन्ती) को भी नवीन मनःसंघर्षों के बीच उपस्थित कर—या यों कहिए कि सामाजिक व्यक्तिगत संवेदना, कर्त्तव्य और राग, आस्था और अनास्था के द्वन्द्व के भीतर से उभारकर—युगानुकूल नयी छवि दी है। 'रश्मिरथी' शिल्प की दृष्टि से परम्परागत वर्णनात्मक प्रबन्धकाव्य है। कवि ने पात्रों की सृष्टि में नवीन मानवतावादी दृष्टि का समावेश करते हुए भी अन्ततोगत्वा उन्हें व्यक्तित्व के प्राचीन अखण्डतावादी धरातल पर ही प्रतिष्ठित किया है। इसलिए इस काव्य में मानसिक द्वन्द्वों की मर्म-छवियों के बावजूद घटना का—वर्णन का—रस

unacademy

अधिक है। बिम्बों की सघनता के स्थान पर सीधे-सादे वर्णनों और सरल प्रवाहमयी भाषा का रूप ही इनमें अधिक दिखायी पड़ता है।

उर्वशी दिनकर जी की नवीनतम प्रबन्ध-कृति है, जो ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित है। इसमें कवि ने उर्वशी और पुरूरवा के प्राचीन आख्यान को एक नये अर्थ से जोड़ना चाहा है। पुरूरवा और उर्वशी अलग-अलग तरह की प्यास लेकर एक-दूसरे के करीब आये हैं। पुरूरवा धरती-पुत्र है और उर्वशी देवलोक से उतरी हुई नारी है। पुरूरवा के भीतर देवत्व की तृषा है और उर्वशी सहज निश्चित भाव से पृथ्वी का सुख भोगना चाहती है। 'उर्वशी' का दर्शन-पक्ष है—प्रेम और ईश्वर, दैव और आत्म-धरातल को परस्पर मिलाना। वैसे तो यह एक शाश्वत प्रश्न है जो इस युग के मूलभूत प्रश्नों से जुड़ता नहीं दीखता, किन्तु प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि धरती और स्वर्ग, स्वर्ग और धरती के मिलने का स्वर ऊंचा करना और उपेक्षित धरती की महत्ता स्थापित करना मुख्यत: आज की मानवता की प्रवृत्ति है। उर्वशी की चर्चा को दार्शनिक ऊहापोह से निकालकर काव्य के धरातल पर प्रतिष्ठित किया जाये तो निश्चय ही कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां लक्षित होंगी। 'उर्वशी' प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है। प्रेम और सौन्दर्य की मूल धारा में जीवन-दर्शन सम्बन्धी अन्य छोटी-छोटी धाराएं आकर मिल जाती है। प्रेम और सुन्दर का विधान कवि ने बहुत व्यापक धरातल पर किया है। समस्त परिवेश इससे अनुप्राणित हो उठा है। कवि ने प्रेम की छवियों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहचाना है। प्रेम भी निर्विकल्प की अवस्था नहीं है, उसमें भी अनेक स्फुलिंग उड़ा करते हैं और मन को शान्त करने के स्थान पर बेचैनी से भर देते हैं।

'उर्वशी' में प्रेम के ही मान्य स्वरूप के भीतर प्रविष्ट होकर उसकी आन्तरिकता और सूक्ष्म संवेदनाओं को उभारा गया है और कहीं-कहीं उसे एक आध्यात्मिक भंगिमा भी देने का प्रयत्न किया गया है। इन अनुभूतियों और संवेदनाओं की व्यंजना के लिए जिन बिम्बों का सहारा लिया गया है, वे कहीं तो बड़े ही पारम्परिक हैं जिन्हें सायास नयी खराद पर चढ़ाया गया है और कहीं बहुत नये और ताजे है—नयी कविता के अच्छे बिम्बों की श्रेणी के। यही बात रूप-सौन्दर्य व्यंजित करनेवाले बिम्बों के बारे में कही जा सकती है। दिनकर की भाषा में हमेशा एक प्रत्यक्षता और सादगी दिखी है, परन्तु 'उर्वशी' में भाषा की सादगी अलंकृति और आभिजात्य की चमक पहनकर आयी है—शायद यह इस कृति की वस्तु की मांग रही हो।

लोकायतन सुमित्रानन्दन पन्त की प्रबन्ध-कृति है जिसमें कवि ने भारतीय जीवन की, स्वाधीनता के पहले और बाद की, कथा गायी है। यह दो खण्डों में विभाजित है—बाह्य परिवेश और अन्तश्चैतन्य में। इस प्रबन्ध की पट-भूमि बहुत ही व्यापक है जिसमें स्वाधीनता के पहले से लेकर उत्तर-स्वप्न तक का विशाल भारतीय जीवन अन्तर्भुक्त हो उठा है। पन्त जी युग-जीवन के यथार्थ के हर पहलू को समझते हैं, देश-विदेश के समस्त परिवर्तनों को, बदले मूल्यों को, पुरातन और नवीन के संघर्षों को, भौतिकता और आध्यात्मिकता के द्वन्द्वों को उन्होंने परखा है। लेकिन ऐसा लगता है कि यथार्थ-दर्शन और आदर्श-कल्पना, ये दोनों अध्ययन और जानकारी के परिणाम के रूप में आये हैं; जीवन के संवेदनाओं के बीज नहीं उभर सके है। कथानक-रचना की शिथिलता अनुपातहीनता और विवरण की प्रवृत्ति से इस प्रबन्धकाव्य का प्रभाव आहत हुआ है। हां, प्रकृति-चित्रण में पन्त जी आज भी बहुत ताजे और आकर्षक हैं। 'लोकायतन' में जहां कहीं प्रकृति-चित्र आये हैं, कविता बिम्बात्मक और रस-सिक्त हो उठी है।

ऋतम्वरा (१९५७) के कवि केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का जन्म १९०७ ई. में आरा में हुआ था। 'कैकेयी' (प्रबन्धकाव्य), 'कर्ण' (खण्डकाव्य), 'शुभ्रा' (गीतिकाव्य) और 'बैठो मेरे पास' (चतुष्पदियां) उनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएं है। 'ऋतम्वरा' का आरम्भ प्रलय-वर्णन से हुआ है और 'कामायनी' की भांति इसमें भी मानवता के आदर्श और मानव-सृष्टि के भविष्य को सांस्कृतिक तथा दार्शनिक धरातल पर उपस्थित किया गया है। 'ऋग्वेद', 'श्रीमद्भागवत' और 'विष्णुपुराण' कवि के मुख्य उपजीव्य ग्रन्थ है। गरिमापूर्ण सोद्देश्यता, जीवन-दर्शन की गम्भीरता, विषय के अनुरूप तत्समप्रधान शब्दावली और उदात्त शिल्प-योजना इस काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। पन्द्रह सर्गों में विभक्त इस रचना में कथा-तत्त्व विरल है, कवि का बल विशेषत: आध्यात्मिक-सांस्कृतिक गौरव की स्थापना और शाश्वत सत्य की खोज पर ही रहा है।

कनुप्रिया (भारती) राधा के प्रेम-संवेदन के माध्यम से जीवन को समझाने का एक सफल प्रयत्न है। 'कनुप्रिया' पूर्णमान्य रूप में नहीं, एक नये अर्थ में प्रबन्धकाव्य है। इसमें कृष्ण के साथ बीते राधा के तन्मय क्षणों की विभिन्न स्थितियों को रूप देना ही कवि को अभिप्रेत है, कोई कथा कहना नहीं। राधा ने कृष्ण के साहचर्य को उसके अनेक क्षणों में पूरी तन्मयता के साथ जिया था और जीकर एक सत्य पाया था। इसलिए वह सत्य उसका अपना है, कहीं से उधार लिया हुआ नहीं। इस सत्य के प्रति राधा को आशंका नहीं होती; यहां तक कि जब कृष्ण सेनानायक, महाराज और दुनिया की नजरों में महान बन गये है तो भी राधा अपने सत्य को झुठलाती नहीं। उसे जिये हुए सत्य के अतिरिक्त ऐसा कोई सत्य नहीं दीखता जो उसके अपने लिए सार्थक हो।

यह एक ऐसा प्रबन्धकाव्य है जो आधुनिक शिल्प और भाव-बोध दोनों को आत्मसात् कर सका है। 'कनुप्रिया' की भी मूल संवेदना प्रेम है, किन्तु इस संवेदना को उसकी गहराइयों में उभारते हुए भी कवि मूल्यों से उसे असम्पृक्त नहीं कर सका है। कृष्ण का युद्ध सत्य है या राधा के साथ उनके तन्मयता में बीते प्रेम-क्षण? शायद प्रेम के क्षण ही सत्य है, क्योंकि वे दुविधाहीन मन की संकल्पनात्मक अनुभूति हैं और युद्ध दुविधा की उपज, अनजिये सत्य का आभास। 'कनुप्रिया' अपनी संवेदनात्मक गहराई और शिल्प की ताज़गी के कारण एक विशिष्ट उपलब्धि है।

ठाकुरप्रसाद सिंह का **महामानव** गांधी जी के जीवन पर आधारित प्रबन्धकाव्य है जिसमें गांधी-जीवन के माध्यम से भारतीय जन-जीवन के जागरण की गाथा गायी गयी है। यह काव्य प्रबन्धत्व की दृष्टि भले ही उपलब्ध न कर सका हो, किन्तु स्थान-स्थान पर भारतीय जन-मानस की विभिन्न स्थितियों तथा संघर्षों का चित्रण हुआ है, वह बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है।

नरेन्द्र शर्मा की **द्रोपदी** वैसे तो द्रोपदी को केन्द्रित कर उसे जीवन-शक्ति का प्रतीक मानकर, लिखी गयी है किन्तु लगता है कि इस संक्षिप्त कलेवर में 'महाभारत' की पूरी मूल कथा को भर देने का मोह कवि में जाग गया है। कवि किसी विशिष्ट कथा-प्रसंग और संवेदना पर बल न देकर आंधी के पत्ते के समान समय और स्थान के विस्तार में उड़ता फिरा है। अत: किसी प्रकार की प्रभावान्विति काव्य को प्राप्त नहीं हो सकी है। द्रोपदी का प्रतीकात्मक या भावात्मक पहलू इस भाग-दौड़ में उग नहीं पाया है और भाषा तो आज की भाषा लगती ही नहीं। **उत्तर जय** नरेन्द्र शर्मा का दूसरा प्रबन्धकाव्य है जिसे कवि ने गाथा-काव्य कहा है। इसमें युधिष्ठिर और अश्वत्थामा को खण्डित और पीड़ाभोगी बताया गया है और पीड़ाभोगी की नियति है—पीड़ा से बच भागने का प्रयत्न। अश्वत्थामा सर्वाधिक सामर्थ्यवान अतिरथी होकर भी पीड़ाभीरु थे। युधिष्ठिर अपने स्वभाव (आकाश-पुरुषता) और नियति (पृथ्वी से

unacademy

प्रतिबद्धता) के द्वन्द्व में बंटे हुए थे। यही द्वन्द्व उनकी पीड़ा का कारण था। 'उत्तर जय' में केन्द्रीभूत अर्थ का इतना बिखराव नहीं है, बिखराव है किन्तु इसमें वह अपनी सत्ता बनाये हुए है। इसके भी पात्र प्रतीकात्मक हैं, किन्तु यह छोटी-सी प्रबन्ध-कृति अनेक पात्रों के बिन्दुओं को एक रेखा में अनुस्यूत करने के प्रयत्न में किसी पात्र की मनोकथा या अन्तर्द्वन्द्व को उतनी गहनता से उभारने का अवकाश नहीं पा सकी है जितनी कि अपेक्षित थी। इसकी भाषा 'द्रोपदी' की भाषा की अपेक्षा अधिक जीवन्त है और यह पूरा काव्य 'द्रोपदी' की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है।

कुंवरनारायण का **आत्मजयी** 'कठोपनिषद्' के नचिकेता-प्रसंग पर आधारित प्रबन्धकाव्य है। 'आत्मजयी' में नचिकेता का अपना पौराणिक व्यक्तित्व नहीं उभरता, वह कवि के आधुनिक चिन्तन का प्रतीक-मात्र बनकर रह गया है अर्थात् 'आत्मजयी' विचार-काव्य है जिसमें आधुनिक सन्दर्भों में उभरे हुए जीवन-प्रश्नों को एक चिरन्तन जीवनधारा के प्रश्नों से जोड़ने तथा उनका उत्तर पाने की शाश्वत अकुलाहट है। वाजश्रवा एक प्रकार से ठहरे हुए मूल्य की वाहक पीढ़ी का प्रतीक है जो अपने सारे निर्णयों को आनेवाली पीढ़ियों पर लादना चाहती है। और नचिकेता? वह इस सारे ऋप्त सत्य के उत्तराधिकार और विवेकहीन निर्णय को अस्वीकार कर अपने विवेक और पीड़ा से सत्य को तलाश करनेवाली और उसके लिए मृत्यु तक को वरण करनेवाली प्रबुद्ध नयी चेतना का प्रतीक है। 'आत्मजयी' मूलतः आधुनिक चेतना का काव्य है। इसमें कथा स्वरूप है और इस स्वल्प कथा में भी कोई घटनात्मक सूत्र नहीं है, केवल चिन्तन है। ऐसा लगता है कि 'आत्मजयी' के भिन्न-भिन्न खण्ड आधुनिक चिन्तना के भिन्न-भिन्न आयाम हैं अर्थात् आधुनिक जीवन के कुछ सन्दर्भों को लेकर उन पर व्यक्त किये गये विचारों के अलग-अलग टुकड़े यहां से वहां तक बिखरे हैं। ये बातें नचिकेता की इस स्वल्प कथा के बिना भी हो सकती थीं। किन्तु ऐसा लगता है कि कवि नये चिन्तन से उद्दीप्त होकर भी जीवन को एक लम्बी परम्परा में देखना चाहता है। आज जिन प्रश्नों और उनसे सम्बद्ध विचारों को लोग पश्चिम से जोड़कर चुप हो जाते हैं उन्हें कवि भारतीय जीवन और उसके दर्शन से जोड़ना चाहता है। कवि के ही शब्दों में, 'आत्मजयी' में ली गयी समस्या नयी नहीं, उतनी ही पुरानी है (या फिर उतनी ही नयी) जितना जीवन और मृत्यु सम्बन्धी मनुष्य का अनुभव। कवि ने आधुनिक व्यक्ति की मानसिक अवस्थाओं के सन्दर्भ में ही उपनिषद्, यम, नचिकेता, आत्मा, मृत्यु, ब्रह्मा आदि रूढ़-से लगनेवाले शब्दों का प्रयोग करने का खतरा उठाया है और दूसरी ओर आधुनिक मानसिक अवस्थाओं को एक चिरन्तन चिन्तन-आकुलता से जोड़ना चाहा है। 'आत्मजयी' के बिम्ब मूलतः बौद्धिक हैं, वे जीवन से सीधे उठाये गये प्रतीत नहीं होते। जहां वे जीवन से लिये भी गये हैं वहां वे किसी व्यापार या प्रसंग से विच्छिन्न होने के कारण और नचिकेता की एक विशेष प्रकार की वैचारिक अकुलाहट मात्र से जुड़े होने के कारण हमारे भीतर कोई जीवन नहीं उभारते, जीवन का एक बोध उभारते हैं।

नरेश मेहता-कृत **संशय की एक रात** में राम के मन के संशय को चित्रित किया गया है। समुद्र में पुल बंध जाने पर राम का मन संशय से भर जाता है। वे सोचते हैं कि एक सीता के लिए इतना बड़ा नर-संहार क्यों किया जाय? फिर अपने सहयोगियों के साथ विचार-विमर्श करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि युद्ध किया जाय? युद्ध सीता के लिए नहीं, प्रजा के लिए हो।

प्रबन्धकाव्यों की शृंखला में **एक पुरुष और भी** उल्लेखनीय है। इसके लेखक युवा कवि डॉ. विनय हैं। इस प्रबन्धकाव्य में विश्वामित्र और उर्वशी से संबंधित पुरा कथा को एक नवीन अर्थ-सन्दर्भ

unacademy

दिया गया है। 'एक पुरुष और' वास्तव में एक ऐसी काव्य-कृति है जो आज के सामाजिक संदर्भों से टकराती हुई-सी मूलत: व्यक्ति के अस्तित्वमूलक संकट से जूझती है और किसी विकल्प की खोज करती है। इस प्रबन्ध-कृति में विश्वामित्र को अस्तित्व की सार्थकता की खोज में नियोजित किया गया है। कवि के अनुसार जीवन से प्रतिबद्ध होकर ही व्यक्ति जीवन से मुक्त होता है और सार्थकता प्राप्त करता है।

कुछ विशिष्ट युद्ध-प्रबन्ध

प्रस्तुत सन्दर्भ में विवेचनीय प्रबन्धकाव्य हैं—कुरुक्षेत्र, उन्मुक्त और आर्यावर्त। युद्ध की समस्या को लेकर लिखे गये प्रबन्धकाव्यों में कुरुक्षेत्र (दिनकर) का स्थान बहुत ऊंचा है। 'कुरुक्षेत्र' एक काव्यात्मक गीता है, जिसमें आध्यात्मिक चिन्तन के स्थान पर आधुनिक जीवन के प्रश्नों का चिन्तन है। कवि ने युद्ध को निन्द्य बताते हुए भी आधुनिक परिवेश में उसके जटिल रूप को, उसके संक्रान्त मूल्य को उभारा है। प्रश्न इतना ही नहीं है कि युद्ध निन्द्य है—उससे बड़ा प्रश्न यह है कि निन्द्य वस्तु बार-बार इतनी अनिवार्य क्यों हो उठती है और युद्ध के रूप में इतिहास की एक बहुत बड़ी चुनौती क्यों बार-बार शान्तिप्रिय लोगों को स्वीकार करनी पड़ती है? क्यों उन्हें ऐसा लगता है कि एक विशेष सामाजिक या मानवीय सन्दर्भ में युद्ध शान्ति की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हो जाता है? 'कुरुक्षेत्र' में भी वास्तव में कोई उत्तर नहीं है, जहां समाधान खोजने का प्रयास है वहां कवि केवल स्वप्नद्रष्टा बनकर रह गया है। किन्तु 'कुरुक्षेत्र' की शक्ति उत्तर के काल्पनिक नियोजन में नहीं है बल्कि वह द्वन्द्वग्रस्त प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है जो धर्मराज और भीष्म के माध्यम से उसके भीतर से गुजरता है। शान्ति काम्य है, युद्ध निषिद्ध है, किन्तु युद्ध के लिए अनिवार्य परिस्थितियां उत्तरदायी होती हैं। जब अनुनय हार जाता है तब प्रतिरोध आवश्यक होता है। इस अवस्था में विनय, शान्ति और क्षमा मूल्य न रहकर पाप बन जाते हैं—सामाजिक पाप। किन्तु, युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार कर लेने मात्र से प्रश्नों का अन्त नहीं होता। युद्ध शुरू होने पर मूल्य ऐसे उलझ जाते हैं कि रावण और कौरवों के असंख्य अधर्म-प्रहारों के साथ राम और पांडवों को भी कुछ-न-कुछ अधर्म-प्रहार करने ही पड़ते हैं। धर्म जहां थोड़ा-सा स्खलित हुआ, वह सरकता और उलझता हुआ चला जाता है और धर्मयुद्ध शुरू करनेवाला इस अधार्मिकता के लिए कहीं-न-कहीं विवश हो जाता है और अपनी इस विवशता और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न अधार्मिकता का बोध उसे निरन्तर पीड़ित करता है अर्थात् वह एक ही साथ एक युद्ध बाहर लड़ता है एक भीतर। एक ओर भीषण नर-संहार करता है, दूसरी ओर उसे लगता है कि वही अनेक लोगों के रूप में अनेक बार मर रहा है। युयुत्सा और मानवीय करुणा का एक भयानक द्वन्द्व उसे कसता चला जाता है और विजय के पश्चात् भी वह उल्लास नहीं पश्चात्ताप भोगता है, साम्राज्य नहीं, सामने बिछा हुआ श्मशान पाता है। 'कुरुक्षेत्र' के 'धर्मराज' इसी प्रकार के संवेदनशील योद्धा के मूर्त रूप हैं जो आत्मग्लानि के अतिरेक में अपने को ही युद्ध का उत्तरदायी मानकर भीष्म के सामने विलाप करते हैं। दूसरी ओर, भीष्म सामाजिक चेतना के प्रतीक हैं। उनमें भावुकता के स्थान पर तटस्थ चिन्तन है। इसलिए वे युद्ध की नियति के बारे में बात करते हैं और कहना चाहते हैं कि व्यक्ति के सन्दर्भ में जो मूल्य हैं, वे ही समाज के सन्दर्भ में दोष बन जाते हैं। भीष्म भी युद्ध के पक्षपाती नहीं हैं, किन्तु वे युद्ध की नियति की परीक्षा करते हुए कहना चाहते हैं कि समाज में जब तक विषमताएं हैं, जब तक दो वर्गों के सुखों और सुविधाओं में आकाश-पाताल का अन्तर है तब तक युद्ध की सम्भावना

unacademy

मिटायी नहीं जा सकती। भीष्म के माध्यम से कवि ने आज के समाज के वैषम्य, विसंगति और भयानक विरूपता को उद्‌घाटित किया है। 'कुरुक्षेत्र' केवल युद्ध-काव्य नहीं है, युद्ध के प्रश्न के बहाने भीष्म ने आज के सामाजिक जीवन के अनेक प्रश्नों को, अनेक सत्यों को छुआ है।

उन्मुक्त (सियारामशरण गुप्त) में अपने ढंग से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना-विभीषिका और मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। 'उन्मुक्त' में कुसुमद्वीप एक शान्तिप्रिय नगर है। वह शान्तभाव से कला, सौन्दर्य और शान्ति की उपासना करता है, किन्तु अत्याचारी लौहद्वीप के लोग उसे युद्ध करने पर मजबूर करते हैं। कवि की दृष्टि में यथार्थ और स्वप्न का बड़ा सुन्दर सामंजस्य है। यथार्थ यह कि कवि ने लौहद्वीप जैसे युद्धप्रिय शक्तिशाली नगर के आक्रमण के फलस्वरूप कुसुमद्वीप जैसे शान्त कोमल नगर की होनेवाली अनिवार्य परिणतियों को बड़ी सच्चाई से प्रस्तुत किया है, उसके शौर्य और पराजय को सही ढंग से आंका है, मानवीय घृणा और कुरूपता को उभारा है। किन्तु इस सारे कठोर यथार्थ के भीतर से मानवीय यातना और करुणा को उभारकर मनुष्य और समाज के प्रेम तथा अहिंसा को बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठित किया गया है। यथार्थ और स्वप्न दोनों के निरूपण के लिए कवि ने बहुत समर्थ और जीवन्त बिम्बों की रचना की है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी' (जन्म १८९९) का **आर्यावर्त** (१९४३) भी इस युग का श्रेष्ठ ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य है, जिसकी रचना पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी-सम्बन्धी आख्यान के आधार पर हुई है। इसमें तेरह सर्ग हैं जिनमें पृथ्वीराज और गोरी के युद्ध, पृथ्वीराज की बन्दी अवस्था, जयचन्द के परिताप, संयोगिता के पराक्रम और पृथ्वीराज द्वारा शब्द-बेधी बाण से गोरी के वध की कथा को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजित किया गया है। देशभक्ति की भावना इसमें सर्वोपरि रही है। वातावरण-चित्रण की सजगता, चरित्रांकन की यथार्थता, तत्सम शब्दों की प्रधानता और अतुकान्त-प्रवृत्ति इसकी अन्य उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

unacademy

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास

बच्चन सिंह

unacademy

मोहभंग की प्रक्रिया और नई दिशाएँ

'छठे दशक में नई कविता' का काव्यान्दोलन अपनी व्यक्तिगतता और आत्मस्थता के कारण अपनी मौत मर गया। सब मिलाकर उसमें आस्था का स्वर ही प्रधान था, यद्यपि अनास्था की कमी नहीं कही जा सकती। आस्था-अनास्था के द्वंद्व में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, उत्तरदायित्व आदि मूल्यों का अन्वेषण भी किया गया। किन्तु सामाजिक व्यवस्था ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और उत्तरदायित्व के बीच की खाई कभी पटने नहीं दी। कवियों के उगाए हुए सूरज में रोशनी नहीं आई—सूर्य का स्वागत व्यर्थ चला गया। अहं के विसर्जन की जगह कवि अहं में ही विसर्जित होते गए और फिलिस्टीनी मुद्रा के कारण कविता दीक्षा गम्य हो गई। राजनीतिज्ञों के वादों की तरह कवियों की आस्थाएँ भी झूठी सिद्ध हुई। इसलिए सातवें दशक के पहले दौर से अस्वीकार और नकार का स्वर अधिक मुखर होकर अ ात पर आगे चलकर आठवें दशक में एक व्यवस्था आई।

भारतीय संविधान में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और उसके दायित्व को रेखांकित किया गया। पर व्यक्ति स्वातन्त्र्य भ्रष्टाचार का दूसरा नाम हो गया। वर्तमान लोकतन्त्र अपनी विसंगतियों में प्रतिदिन धुँधलके की ओर बढ़ता रहा। पूँजीवादी और लोकतन्त्र की साठ-गाँठ के कारण मनुष्य की रही-सही आशा भी क्षीण हो गई। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वर्ग-भेद, जाति-भेद, भाई-भतीजावाद का बाजार गरमाता गया और राष्ट्रीय चरित्र गिरावट की सीमा पार कर

unacademy

गया। फलस्वरूप स्वतन्त्रता के पाले हुए सपने का मोहबन्ध टूट गया। मूल्यहीनता की आत्यंतिक स्थिति में व्यक्ति की अपनी पहचान खो गई और समाज अँधेरे की पर्तों में खो गया।

ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी के पास दो विकल्प थे—एक तो यह कि वह व्यवस्था में अपने को ढाल ले, दूसरा यह कि बदलाव के लिए संघर्षरत हो। व्यवस्था में अपने को ढाल लेने पर बुद्धिजीवी बुद्धिजीवी नहीं रह जाता। अतः बदलाव ही एकमात्र विकल्प बचता है। इस बदलाव के प्रति दो दृष्टिकोण दिखाई पड़ते हैं—हताशा की नियति और बदलाव की गत्यात्मकता। इस दशक की मूल प्रवृत्तियाँ ये ही हैं। दोनों ही को अगर एक नाम देना हो तो आधुनिकता कहा जा सकता है।

इस दशक की अगुआई की **राजकमल चौधरी** ने। उसमें आधुनिकता अपनी समग्रता में दिखाई पड़ती है। इस समय की अधिकांश रचनाओं पर चौधरी की छाप देखी जा सकती है। चौधरी बिहार के पूर्वांचल के निवासी थे। बंगाल की भूखी पीढ़ी के साथ उनका गहरा सम्पर्क था। बंगाल के बसाक, मलय राय आदि ने ईश्वर, धर्म और औरत पर खुला हमला किया। उनका मैनिफेस्टो था : 'गॉड इज शिट। रेलिजन इज मर्डर रेप, सूसाइड प्वाइजन, फकिंग।' ये सभी लोग अमरीकी कवि एलेनगीन्सबर्ग से प्रभावित थे—'हाउल' रचना से भी, उसकी दिनचर्या से भी। चौधरी को भी इसी वर्ग में रखना चाहिए।

ये गुस्से के कवि थे। अपनी आक्रोशपूर्ण वाणी में ये अपना गुस्सा उतारते रहे। पूर्ववर्ती समस्त मूल्यों और परम्पराओं को नकार कर वे अपनी चीखों, जख्मों और यौन-विद्रूपताओं को कविता में व्यक्त करते रहे। व्यवस्था जिन मूल्यों को अपना कवच बनाए हुए थी उसे भेदना जरूरी था। लेकिन नकार जब स्वयं कवच बन जाता है तो आक्रोश व्यर्थता की खोल ओढ़ लेता है।

राजकमल चौधरी के 'कंकावती' और [illegible]

की नब्ज पकड़ी जा सकती है। पर स्वयं कवियों ने राजकमल की मृत्यु को शहादत घोषित कर मूल्यांकन में बाधा पहुँचाई है। चौधरी काव्य के अलबम में वेश्या, बीमार शहर, सड़े गोश्तों वाली औरतों के सम्भोग के फूहड़ चित्रों की कमी नहीं है। इसे आभिजात्य विरोधी कह कर चौधरी का समर्थन नहीं किया जा सकता क्योंकि वे हमें गिरावट की ओर ले जाते हैं। जब नकार स्वयं मूल्य बन जाता है तो वह अश्लील हो उठता है। पर जहाँ मूल्य रूप से गृहीत सेक्स की पवित्रता का पर्दाफाश किया गया है वहाँ पवित्रता-विरोधी रुख मूल्य हो जाता है।

'कंकावती' की भूमिका में वह लिखता है—"कंका से विवेकहीन घृणा, आसक्ति, हिंसा, सम्भोग, ईर्ष्या, क्षमा, विरति, हिंसा, सम्भोग, आक्रमण, घृणा, ईर्ष्या, पशुत्व, संभोग करते हुए मैंने प्रतिक्षण अपने अहं और अस्तित्व को प्रमाणित किया है। इस कृति के अधिकांश अनुभव और प्रभाव आत्मस्वीकृतियाँ (केवल 'कनफेशन' नहीं 'रिअलिजेशन' भी) हैं।" ये प्रवृत्तियाँ केवल कंकावती की नहीं हैं—पूरे दशक की हैं। 'संभोग' को तीन बार दुहराया गया है। जाहिर है इसमें संभोगात्मक नोट्स अधिक हैं। किन्तु इसके साथ आक्रमण-पशुत्व

आदि भी हैं। इसके माध्यम से वह अपने अस्तित्व की पहचान कराता है। मूल्यहीनता के शून्य में अपनी पहचान कराने का यह एक बीहड़ मार्ग है। चौधरी को इस बीहड़ मार्ग से गुजरना पड़ा है, कविताएँ यात्रा के अनुभव हैं। इस अनुभव में जहाँ का व्यंग्य सटीक बैठता है वहाँ की मार भी गहरी होती है।

राजकमल एक बिन्दु पर ठहरता नहीं, अछोर यात्रा करता रहता है। याद रखना चाहिए, उसकी यात्रा स्थापित मूल्यों के विपरीत होती है। इसमें वह अराजक भी हो जाता है। कथ्य और रचना दोनों स्तर पर।

'मुक्ति-प्रसंग' एक लम्बी कविता है जो सर्जिकल वार्ड में लिखी गई है। इसमें वह अनस्तित्व से मुक्त होकर अस्तित्व पाना चाहता है—'क्यों नहीं है मेरे लिए कोई नाम कोई नदी कोई / चिड़िया कोई फूल कोई सिद्धान्त / कोई दरख्त कोई राजनीतिक दल कोई जंगल कोई साँप कोई गाँव / कोई स्त्री कोई सड़क कोई संगीत कोई नशा / कोई प्रेम कोई घृणा / कोई घर कोई आँगन कोई छाँव /' नीले रंगों में खोया हुआ, मृत्यु के मध्य वह सम्भोगात्मक स्थितियों से भी मुक्त होना चाहता है। इसमें गहरे अवसाद के बिन्दु हैं—'सबके लिए, सबके हित में अस्पताल चला गया है / राजकमल चौधरी / लिखने-पढ़ने, गाँजा-अफीम-सिगरेट पीने / मरने का अपना एकमात्र कमरा बन्द / करके / दोपहर दिन के पसीने, पेशाब, वीर्यपात / मटमैले अँधेरे में लेटे हुए—/ धुँआ क्रोध दुर्गंधियाँ पीते रहने के सिवा / जिसने को बड़ा काम नहीं किया अपनी देह / अथवा अपनी चेतना में / इस उम्र तक /' इस दशक का यह अकेला कवि है जो मुखौटा नहीं लगाता। किन्तु मुखौटा न लगाने का अर्थ नंगा होना नहीं है। वह नंगापन उसकी कविता में इतना उभर कर आया है कि वह मूल्यहीनता और अराजकता का स्रष्टा हो जाता है।

कैलाश वाजपेयी के 'संक्रान्त' में समूची पीढ़ी की अनास्था अभिव्यक्त है। कम से कम वह 'हिपोक्रेट' नहीं है। अपनी अनास्था के प्रति वह पूरा ईमानदार है। इस विशेषता के कारण ही लोगों का ध्यान इस संग्रह की ओर आकृष्ट हुआ। परास्त बुद्धिजीवी के वक्तव्य में वह कहता है—'चिल्लाती धूप में / बदहवास रात में / कहीं किसी गटर पर / हम खुली पलकें सो जायेंगे / हमें अब किसी व्यवस्था में डाल दो / (जी जायेंगे)।' व्यवस्था से उसे लड़ना नहीं है, वह परास्त हो चुका है। फिर भी उसमें एक क्रियात्मक पीड़ा है—'रक्त और बादल / सर्प और तितलियाँ / यज्ञ और वेश्या / सब को एक साथ जोड़ जाता हूँ / मुझे कोई और नाम / और नाम दे दो!' प्यार, ईश्वर, इतिहास के अर्थ खो गए हैं। स्वतन्त्रता के बारे में वह कहता है 'एक सिल की तरह गिरी है स्वतन्त्रता / और पिचक गया है पूरा देश।' व्यर्थता के बोध का ऐसा स्वर पहले-पहले संक्रान्त में मिलता है। दूसरा संग्रह है—'देहान्त से हट कर।' इसमें पहले संग्रह की प्रत्यग्रता नहीं है। फिर भी इसमें पैना व्यंग्य अवश्य है—'मैं देखता हूँ / कुछ लकड़बग्घे / संसद् से निकल कर / पहुँच गए हैं घर रखैल के / और उधर कोई मुकरात रोज—/ अंधा हो जाता है सींखचे खिजते हुए जेल के।' राजीव सक्सेना में व्यर्थता-बोध के साथ सक्रियता, एक तथाकथित सदिच्छा भी है—'लोग भीड़ क्यों है / जलूस क्यों नहीं बन पाते / किन्तु इस तरह की सदिच्छाएँ भावनामयता के अतिरिक्त और कुछ नहीं

unacademy

हैं।

जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्रमोहन, आदि 'अकवितावादी' कवि हैं जो राजकमल चौधरी की परम्परा में पड़ते हैं। जगदीश चतुर्वेदी का एक काव्य-संग्रह 'इतिहास हंता' प्रकाशित हो चुका है। भय, अजनबियत, भदेसपन, सेक्स आदि उनकी परिणतियाँ हैं। प्रतिबद्धता उसके लिए गुनाह है। सुन्दर लड़कियों को रस्से में बाँधकर कोलतार की तपती सड़क पर घसीटने देखने में उसे सुख मिलता है, स्तनों को दाँतों से काटकर थूक देने में आनन्द प्राप्त होता है। वह अपने में सादे की क्रूरता और विध्वंस ले आना चाहता है। पर सादे में एक दार्शनिक विजन है जब कि अकवितावादियों में अराजकता का अन्धापन है। **अशोक वाजपेयी** का संग्रह 'शहर अब भी सम्भावना है' की भाषा पर छायावादी रंग और आस्था पर बीते दिनों की छाया है। संग्रह की स्थापना ही में सचाई के साथ कह दिया गया है—'मेरे प्रारम्भ में ही मेरा अंत है।' इधर सौमित्र मोहन का 'लुकमान अली और अन्य कविताएँ' (१६८०) काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें 'लुकमान अली' लम्बी कविता है जो अकविता और कविता का निष्कर्षहीन कोलाज बन कर रह गई है।

यौन और सम्भोग कक्ष से हट कर कुछ कवियों ने समकालीनता का अधिक वास्तविक साक्षात्कार किया। यह साक्षात्कार 'नई कविता' के आत्मसाक्षात्कार से भिन्न कार्य-व्यापार प्रधान है। इन रचनाओं में अपने को ही संबोधित न करके जन से सीधे संवाद किया गया है। इसलिए इनमें बातचीत के टुकड़े अधिक मिलेंगे। इन रचनाओं में पहले के व्यर्थ के आक्रोश को अर्थ मिल गया है। ऐसे कवियों में धूमिल की रचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक संरचनात्मक अर्थवान हैं।

धूमिल (१६३६-७५) का असली नाम सुदामा पाण्डेय और उपनाम 'धूमिल' है। हाई-स्कूल की मामूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे कभी लोहा ढोने वाले मजदूरों के साथ काम करते रहे तो कभी व्यावसायिक फर्म में। अन्त में वे आई० टी० आई० वाराणसी में नौकरी कर ली। इन सारे अनुभवों में उन्हें 'हत्यारे' का आतंक बराबर भयभीत करता रहा। वाराणसी के पास के उनके गाँव में भी वे हत्यारे मौजूद थे। वे कहाँ नहीं हैं ? उनकी कविता हत्यारों के खिलाफ एक लड़ाई है। उनके दोनों काव्य-संग्रहों—'संसद् से सड़क तक' (१६७२) और 'कल सुनना मुझे' (१६७७)—में हत्यारों को अनेक रूप रंगों में देखा जा सकता है।

अपने दूसरे संग्रह की भूमिका 'भाषा की रात' में उसने लिखा है—'युवा लेखन के लिए राजनीतिक समझदारी जरूरी है। बिना इस राजनीतिक समझदारी के आज का लेखन सम्भव नहीं। ....क्या बराबरी का दर्जा और आत्महीनता से मुक्ति का रास्ता एक नहीं है? यह आता कहाँ से है? आर्थिक मुक्ति से। और इसी को सब टुकड़खोर और हरामखोर शब्दों के कुहासे से ढकने की व्यर्थ कोशिश करते रहे हैं।....ऐसे में टुकड़खोर भाषाई गुलाम फिर बहकावे में एक जुट हो रहे हैं और अपने भड़वे अन्दाज में भटक रहे हैं।' साठोत्तरी कवियों के बारे में उसका विश्वास है कि वे 'शब्दों को खोलकर रखते हैं।' लेकिन खेद है कि कवि पुनः शब्दों को गोल करने लगे हैं।

इस राजनीतिक समझदारी के अतिरिक्त धूमिल को अकवितावादी सिद्धों नाथों की

युगनद्ध, मुद्रा से कविता को मुक्त करना था। मुक्ति के इस अभियान में तांत्रिक आकर्षणों और शवसाधनाओं से सर्वथा असंपृक्त रहना सम्भव नहीं था। 'राजकमल चौधरी के लिए' कविता में, यदा-कदा उसके बाहर भी, शवसाधकों को मन्त्रपाठ सुनाई पड़ता है। पर इसी कविता में वह शव का मुँह शिव की ओर घुमा देता है—शिव के रुद्र रूप की ओर। सच पूछा जाय तो उसकी अवधारणा 'एक सही कविता- / पहले / एक सार्थक वक्तव्य होती है।/ बीट-पीढ़ी की गलाजत से उसे मुक्त करने में मदद करती है।

उसे कविताओं की चिंता है। 'मुझे अपनी कविताओं के लिए / दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।' इसलिए उसका अधिक जोर इसके बदलाव पर है। 'अपने यहाँ संसद-/ तेली की वह घानी है / जिसमें आधा तेल है / और आधा पानी है।' चुनाव की पद्धति में वह एक जगह खड़ा कर दिया गया है कि अचानक उसकी चीख निकल पड़ती है—'हत्यारा ! हत्यारा !! हत्यारा !!!' किन्तु इसका समाधान ढूँढ़ते हुए वह कहता है—'सुनो ! तुम चाहे जिसे चुनो ! मगर इसे नहीं / इसे बदलो।' पर क्या भरोसा कि दूसरा भेड़िये का भाई नहीं निकलेगा। इस बदलाव को भी देश भोग चुका है। इसे देखते हुए प्रायः लोग धूमिल पर अराजकतावादी होने का आरोप करने लगते हैं। पर सारी कविताओं को दृष्टि में रखने से जाहिर है कि वह बायें हाथ का समर्थन करता है। इसी को वह 'मुनासिब कार्रवाही' के अन्तर्गत 'भाषा में/ आदमी होने की तमीज है' कहता है।

दूसरे संग्रह में भी वह 'प्रजातन्त्र के विरुद्ध' है। इसमें भी 'किस्सा जनतन्त्र' है, 'रोटी और संसद' है। इसी में 'कविता श्री काकुलम' भी है। इससे लगता है अभी भी उसे प्रजातन्त्र के विकल्प की तलाश है। पर इस संग्रह में पहले संग्रह का आवेग और तेवर नहीं है।

वस्तु के बदलाव के साथ धूमिल ने कविता को नई भाषा और नए मुहावरे दिये हैं जो विपक्ष का पक्ष प्रस्तुत करने में पूर्णतः समर्थ है। 'क्योंकि बनिया की भाषा तो सहमति की भाषा है।' बनिया भाषा के निषेध के साथ लोरियों की गंधवती भाषा भी उसे ग्राह्य नहीं है और न रूमान की हरी-भरी शब्दावली—'लहलहाती हुई फसलें..../ बहती हुए नदी..../ उड़ती हुए चिड़ियाँ..../ यह सब, सिर्फ, तुम्हें गूँगा करने की चाल है।/' धूमिल की भाषा में सचेतता है, बदलाव का उपक्रम है और कर्म की प्रेरणा है।

इसलिए वह शब्दों का चुनाव अपने गाँव के खेत-खलिहानों के सख्त चेहरों, तनी हुई मुट्ठियों, छोटी जातियों के घुटते हुए जीवन, राजनीतिक विसंगतियों, फुटपाथों, मोचियों-भंगियों का चुनता है। उसके शब्दों के चुनाव में विरुद्धों का सामंजस्य नहीं संतुलन मिलता है जैसे, रामनामी और रंडियों की दलाली, मैकमोहन रेखा और शव, क्रांति और असंग लोग आदि। बिंबों का उपस्थापन भी इसी आधार पर किया है। एक अनाघ्रात बिंब का उदाहरण लीजिए—कमरे के अपने एकान्त में / जूते से निकाले गये पाँव-सा / महकता हूँ।' यह अनाघ्रातता शब्दों को नाम देने में भी दिखाई पड़ती है—

भूख से सिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'गया' है /
और भूख में / तनी हुए मुट्ठी का नाम

unacademy

नक्सलवाड़ी है।

'गया' संज्ञा क्रिया होकर और अर्थवान हो जाती है। आन्तरिक तुकों और चौंकाने वाले लटकों के बावजूद भाषा कर्म की एक कठोरता सर्वत्र दिखाई पड़ेगी।

लीलाधर जगूड़ी को धूमिल से अलग करके नहीं समझा जा सकता। उनके चार कविता संग्रह—नाटक जारी है, इस यात्रा में, रात अब भी मौजूद है, बची हुई पृथ्वी—प्रकाशित हो चुके हैं। पर धूमिल की छाया से बचकर मौलिक हो पाना उनके लिए सम्भव नहीं हो सका है। प्रजातन्त्र के प्रतिपक्ष में कविता लिखना एक रूढ़ि हो गई है। इसकी शुरुआत रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, राजकमल की रचनाओं में ही हो जाती है। धूमिल ने इसे अत्यन्त सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया। जगूड़ी लिखते हैं—'यहाँ से वहाँ तक चुनाव का संकट लेकर/ पेट और प्रजातन्त्र के बीच / आदमी दरार की तरह खड़ा है / और बवंडर / हर दरवाजे पर/ पर्दे की तरह पड़ा है /' यदि जगूड़ी के स्थान पर 'धूमिल कहते हैं' लिख दीजिए तो कोई फर्क नहीं पड़ता। धूमिल ने भाषा और शब्दों की शक्ति और छल के बारे में बहुत कुछ कहा है पर जगूड़ी की तरह शब्दों को बुलेट कह कर कागजी क्रान्ति ले आने की चेष्टा नहीं की है। जगूड़ी को अपनी जगूड़ी से मुक्त होना है। आखिर संग्रह इस तरह का संकेत देता है।

लीलाधर जगूड़ी का संग्रह है—'नाटक जारी है।' इसमें भी लोकतंत्रीय नाटक को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। धूमिल के किंचित् प्रभावित होते हुए भी जगूड़ी के पास मीठी मार करने वाली भाषा है, यद्यपि इसमें चुस्ती की कमी है। जगूड़ी में विषय तथा उनके प्रस्तुतीकरण में अपेक्षाकृत अधिक वैविध्य है। विकल कमलेश, चन्द्रकांत देवताले, विष्णुचन्द्र शर्मा, मणिमधुकर, वेणुगोपाल, आलोकधन्वा, विनोद शुक्ल आदि इसी पीढ़ी के कवि हैं।

के लिए नवगीत का

नवगीत

नई कविता की तरह गीतकारों ने अपनी पहचान बनाने के लिए नवगीत का आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन में मुख्य रूप से वे लोग शरीक हुए जो नई कविता नहीं लिख पाते थे या नई कविता में विफलता प्राप्त करने के उपरान्त पुराने गीत-लोक में लौटने के लिए बाध्य थे। ग्राम गीतों के कुछ टुकड़े, गाँव की भाषा, गीतों की लय आदि को पकड़ने के साथ आधुनिकता का रंग भर कर इसे नवगीत कहा जाने लगा। किन्तु नवगीतों की आन्तरिकता या नवरोमान का तालमेल नवगीत के साथ नहीं बैठ पाता। नई कविता ने जिस तरह या जिस सीमा तक अपनी पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा से अपने को अलगा कर नए कथ्य, नए रूप-विन्यास को अपनाया है उस सीमा तक नवगीत अपनी पूर्ववर्ती गीत-परम्परा से नहीं अलगा सका है। अतः प्रयास करने पर भी इसका स्वर आधुनिक नहीं बन पाता। यह प्रेम और प्रकृति के दो छोरों तक सीमित रह कर स्थगित हो गया है।

यों तो कहना चाहिए कि हिन्दी काव्य-परम्परा का प्रवर्तन ही गीतों से हुआ। कबीर, विद्यापति हिन्दी के प्रारम्भिक गीत-कवि हैं। भक्त कवियों में प्रायः प्रत्येक ने पदों की रचना की। पुनर्जागरण काल में भारतेन्दु के गीतों में लोक तत्त्व का नया सम्मिश्रण मिलने

लगता है। स्वच्छन्दतावाद-काल में प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी ने गीतों की प्रचुर रचना की। निराला के परवर्ती गीतों में लोक धुन का पर्याप्त समावेश है।

इस शताब्दी के चौथे दशक में बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल और केदारनाथ अग्रवाल ने प्रसाद, पंत महादेवी आदि से अलग बोलचाल की भाषा में गीत-सृष्टि की। किन्तु भाषाई सादगी के बावजूद इनमें कैशोर भावुकता का प्राधान्य था। नवगीत का आरम्भ कुछ लोग '२० से ही मानते हैं, कुछ लोग '५० के बाद से। वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद-काल के गीतों में जो आभिजात्य और परिनिष्ठता देखी जाती है वह बाद के गीतों में नहीं मिलती। निराला के परवर्ती गीतों में यह आभिजात्य परम्परा टूटती है। तार सप्तक के कवियों में अज्ञेय ने प्रारम्भ में बहुत से गीत लिखे हैं। गिरिजाकुमार माथुर तो समग्रतः गीतकार हैं।

जैसा पहले की कहा जा चुका है नई कविता के वजन पर गीतों को 'नवगीत' की संज्ञा मिली। दूसरे और तीसरे सप्तक के कवियों में नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास, कुँवरनारायण, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, विजय देव नारायण साही आदि ने गीतों से ही कविता लिखना प्रारम्भ किया। पर इन्हें गीतकार के रूप में नहीं स्मरण किया जाता क्योंकि मूलतः ये लोग नई कविता के कवि हैं। इनकी परम्परा से अपने को जोड़ते हुए नवगीतकारों ने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के निर्माण का दावा किया है।

शंभुनाथ सिंह, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, जगदीश गुप्त, रामदरश मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, शलभ श्री रामसिंह, सोमठाकुर, हरीश मादानी, नरेश सक्सेना, दिनकर सोनवलकर आदि नवगीतकार हैं।

शंभुनाथ सिंह की काव्य-यात्रा काफी लम्बी है। छायावादी संस्कारों से चल कर ये नए संस्कारों को समेटे हुए पुनः नवगीतों की सीमा तक जा पहुँचते हैं। वे मूलतः गीतकार हैं। उनके प्रारम्भिक गीत संग्रहों—रूपरश्मि, छायालोक—में रूमानी रूपासक्ति और तरल प्रणयोद्गार हैं। 'उदयाचल' में वे उपरले स्तर की प्रगतिशील चेतना से आक्रान्त हैं। 'दिवालोक' में वे दिन की ऊष्मा का अनुभव करते हुए लोक चेतना के निकट पहुँचना चाहते हैं। इधर हाल में उन्होंने कुछ व्यंग्य-दर्दपूर्ण गीतों की रचना की है जिनमें अनुभूति का तीखापन काफी गहरा हो उठा है।

शंभुनाथ सिंह की भाषा में अद्भुत लोच और मादल लय, लोकधुन, आंचलिक शब्दावली, विरोधाभास एक दूसरे में रच-पच कर उनके गीतों को संश्लिष्ट बना देते हैं। उनके स्वर का पारस स्पर्श पाकर गीतों की प्रभान्विति और भी बढ़ जाती है।

नवें दशक की कविताएँ

इस दशक के मुख्य कवि हैं—राजेश जोशी, अरुण कमल, मंगलेश डबराल और असद जैदी। इन कवियों में जोशी और अरुण कमल प्रतिबद्ध कवि हैं। डबराल में पहाड़ी परिवेश जीवन की त्रासदी है, जैदी में करुणा की टीस है। इन कवियों के प्रथम काव्य-संग्रह—एक दिन बोलेंगे पेड़, अपनी केवल धार, पहाड़ पर लालटेन और बटनें में भावी कविता की सशक्त सम्भावनाएँ दिखाई पड़ीं। वे सभी कवियों का दूसरा काव्य-संग्रह उनकी संभावनाओं को पीछे ठेल देते हैं।

unacademy

पाण्डेय & पाण्डेय

साठोत्तरी कविता आन्दोलन

- सातवें दशक के आरम्भ में सात कवियों का एक काव्य संग्रह इलाहाबाद से 'विद्रोही पीढ़ी' नाम से प्रकाशित हुआ।
- सन् 1963 ई० में जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में 14 कवियों का काव्य-संग्रह 'प्रारम्भ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसमें 'अभिनव काव्य' की स्थापना का दावा किया गया।
- 'प्रारम्भ' में संकलित 14 कवि निम्न हैं—

1. जगदीश चतुर्वेदी
2. कैलाश वाजपेयी
3. नरेन्द्र धीर
4. राजकमल चौधरी
5. केशु
6. ममता अग्रवाल
7. श्याम परमार
8. विष्णु चन्द्र शर्मा
9. श्याम मोहन श्रीवास्तव
10. मनमोहिनी
11. रमेश गौड़
12. राजीव सक्सेना
13. स्नेहमयी चौधरी
14. नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी

- जगदीश चतुर्वेदी ने सन् 1964 ई० में डॉ० इन्द्रनाथ मदान एवं रमेश कुन्तल 'मेघ' द्वारा सम्पादित 'अभिव्यक्ति' में 'अभिनव काव्य' को एक नया नाम 'एंटी पोइट्री' या 'अकविता' दिया।
- सन् 1965 ई० में श्याम परमार ने 'अकविता' पत्रिका का प्रवर्तन किया। श्याम परमार ही 'अकविता' आन्दोलन के प्रवर्तक हैं।
- श्याम परमार ने अकविता को निषेध काव्य से अलग मानते हुए लिखा है, "यह अन्तर्विरोधों की अन्वेषक, विभाजित व्यक्तित्व की शोधक और परिपक्व निर्वैयक्तिकता की द्योतक है।"
- सन् 1973 ई० में जगदीश चतुर्वेदी ने 11 कवियों का एक नया काव्य-संकलन 'निषेध' शीर्षक से प्रकाशित करवाया।
- **'अस्वीकृत कविता'** की स्थापना श्रीराम शुक्ल ने 'उत्कर्ष' (जुलाई, 1969) के माध्यम से की।
- **'बीट जैनरेशन'** की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1952 ई० में अमेरिका में हुई। इसके प्रवर्तक जैक कैरूआक एवं एलेन गिंसबर्ग हैं।
- गिंसबर्ग की महत्वपूर्ण काव्य कृति 'हाउल' का प्रकाशन सन् 1954 में हुआ।
- हिन्दी में 'बीट पीढ़ी' बंगाल की 'भूखी पीढ़ी' के माध्यम से आया। हिन्दी में 'बीट पीढ़ी' का प्रवर्तक राजकमल चौधरी को माना जाता है।
- **'युयुत्सावादी कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन शलभ श्री रामसिंह ने सन् 1965 में कलकत्ता से प्रकाशित 'युयुत्सा' पत्रिका से किया।
- **'नव प्रगतिशील'** काव्यान्दोलन का प्रवर्तन नवल किशोर ने किया।

unacademy

- सन् 1968 ई० में डॉ० रणजीत ने आठ कवियों की रचनाओं का संकलन 'प्रतिश्रुत पीढ़ी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया।
- **'आज की कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन हरीश मादानी ने किया।
- **'वाम कविता'** या **'प्रतिबद्ध कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव ने किया।
- **'सनातन सूर्योदयी'** आन्दोलन का प्रवर्तन वीरेन्द्र कुमार जैन ने 'भारती पत्रिका' के माध्यम से मार्च 1962 में किया।
- सन् 1967 में डॉ० रवीन्द्र भ्रमर द्वारा **'सहज कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन किया गया।
- 'संचेतना' पत्रिका के जून 1973 के 'विचार कविता विशेषांक' के माध्यम से **'विचार कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ। 'संचेतना' के तत्कालीन सम्पादक डॉ० महीप सिंह और डॉ० नरेन्द्र मोहन थे।
- **'साम्प्रतिक कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन श्याम नारायण ने किया।
- **'निर्दिशायामी कविता'** का प्रवर्तन सत्यदेव राजहंस ने किया।
- **'ताजी कविता'** का प्रवर्तन लक्ष्मीकांत वर्मा ने किया।
- **'टटकी कविता'** का प्रवर्तन रामवचन राय ने किया।
- **'समकालीन कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन डॉ० विशम्भरनाथ उपाध्याय ने सन् 1976 में अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता की भूमिका' के माध्यम से किया।
- **'कैप्सूल या सूत्र कविता'** आन्दोलन का प्रवर्तन डॉ० ओंकारनाथ त्रिपाठी ने किया।

समकालीन कवि और काव्य संग्रह

कवि	काव्य-संग्रह
जगदीश गुप्त	(1) नाव के पाँव, (2) शब्द-दंश, (3) हिम बिद्ध, (4) युग्म, (5) छंदशती, (6) आदिम एकांत।
दुष्यंत कुमार	(1) सूर्य का स्वागत (1957), (2) आवाजों के घेरे (1963), (3) जलते हुए वन का वसंत, (4) साये में धूप (1975)।
श्रीकांत वर्मा	(1) दिनारंभ (1967), (2) माया-दर्पण (1967), (3) जलसा घर (1973), मगध।
राजकमल चौधरी	(1) कंकावती, (2) मुक्ति प्रसंग, (3) स्वर गंधा।
रामदरश मिश्र	(1) बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, (2) पक गयी है धूप, (3) कंधे पर सूरज, (4) दिन एक नदी बन गया, (5) शब्द सेतु, (6) बारिश में भीगते हुए बच्चे।
सुदामा पाण्डे धूमिल	(1) संसद से सड़क तक (1972), (2) कल सुनना मुझे (1976), (3) सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र (1984)।
चंद्रकांत देवताले	(1) हड्डियों में छिपा ज्वर (1973), (2) दीवारों पर खून से (1975), (3) लकड़बग्घा हँस रहा है (1980), (4) रोशनी के मैदान की तरफ (1982), (5) भूखण्ड तप रहा है (1982), (6) आग हर चीज में बताई गई थी (1987), (7) पत्थर की बेंच (1996), (8) इतनी पत्थर रोशनी (2002), (9) बदला बेहद महँगा सौदा (1995), (10) उजाड़ में संग्रहालय (2003), (11)

unacademy

जहाँ थोड़ा-सा सूर्योदय होगा (2008), (12) पत्थर फेंक रहा हूँ (2010)।

विनोद कुमार शुक्ल—(1) लगभग जयहिन्द, (2) वह आदमी चला गया गरम कोट पहिनकर विचार की तरह, (3) सब कुछ होना बचा रहेगा, (4) अतिरिक्त नहीं, (5) कविता से लम्बी कविता, (6) आकाश धरती को खटखटाता है।

भगवत रावत—(1) समुद्र के बारे में (1977), (2) दी हुई दुनिया (1981), (3) हुआ कुछ इस तरह (1988), (4) सुनो हीरामन (1991), (5) अथ रघु कुमार कथा (1992), (6) सच पूछो तो (1996), (7) विथा कथा (1997), (8) हमने उनके घर देखे (2001), (9) ऐसी कैसी नींद (2004), (10) निर्वाचित कविताएँ (2004), (11) कहते हैं कि दिल्ली की है कुछ आबोहवा और (2007), (12) अम्मा से बातें (2008), (13) देश एक राग है (2009)।

लक्ष्मीकांत वर्मा—(1) अतुकान्त, (2) तीसरा पक्ष।

लीलाधर जगूड़ी—(1) शंखमुखी शिखरों पर, (2) नाटक जारी है, (3) इस यात्रा में, (4) रात अब भी मौजूद है, (5) बची हुई पृथ्वी, (6) घबराए हुए शब्द, (7) भय भी शक्ति देता है, (8) अनुभव के आकाश में चाँद, (9) महाकाव्य के बिना, (10) ईश्वर की अध्यक्षता में, (11) खबर का मुँह विज्ञापन से ढँका है।

अशोक वाजपेयी—(1) शहर अब भी संभावना है (1966), (2) एक पतंग अनंत में (1984), (3) इतने से (1986), (4) तत्पुरुष (1989), (5) कहीं नहीं वहीं (1991), (6) बहुरि अकेला (1992), (7) थोड़ी-सी जगह (1994), (8) घास में दुबका आकाश (1994), (9) आविन्यों (1995), (10) जो नहीं है (1996), (11) अभी कुछ और (1998)।

इब्बार रब्बी—(1) खाँसती हुई नदी (1969), (2) घोषणा पत्र (1981), (3) लोग बाग (1985), (4) वर्षा में भींगकर (2000)।

लीलाधर मंडलोई—(1) घर-घर घूमा, (2) रात विरात, (3) मगर एक आवाज़, (4) काल बाँका तिरछा, (5) देखा-अदेखो, (6) क्षमा याचना, (7) उपस्थित है समुद्र, (8) ये बदमस्ती तो होगी, (9) मन बेपरवाह, (10) लिक्खे में दुःख, (11) एक बहुत कोमल तान।

मलयज—(1) जख्म पर धूल।

कुमार विमल—(1) एक छोटी-सी लड़ाई (1980), (2) रंग खतरे में है (1982)।

विमल कुमार—(1) सपने में एक औरत से बातचीत, (2) यह मुखौटा किसका है, (3) पानी का दुखड़ा।

कैलाश वाजपेयी—(1) संक्रांत, (2) देहान्त से हटकर, (3) तीसरा अँधेरा, (4) महास्वप्न का मध्यान्तर, (5) हवा में हस्ताक्षर।

सौमित्र मोहन—(1) लुकमन अली, (2) निषेध, (3) पहचान, (4) वाकू से खेलते हुए।

वीरेन डंगवाल—(1) इसी दुनिया में (1991)।

राजेश जोशी—(1) समरगाथा (लंबी कविता), (2) एक दिन बोलेंगे पेड़, (3) मिट्टी का चेहरा, (4) नेपथ्य में हँसी, (5) दो पंक्तियों के बीच, (6) चाँद की वर्तनी।

मंगलेश डबराल—(1) पहाड़ पर लालटेन, (2) घर का रास्ता, (3) हम जो देखते हैं, (4) आवाज भी एक जगह है, (5) मुझे दिखा एक मनुष्य।

नरेन्द्र जैन—(1) दरवाजा खुलता है, (2) तीता के लिए कविताएँ, (3) यह मैं हूँ पत्थर, (4) उदाहरण के लिए, (5) सराय में कुछ दिन, (6) काला सफेद में प्रविष्ट होता है, (7) चौराहे पर लोहार।

ऋतुराज—(1) एक मरणधर्मा और अन्य।

मदन कश्यप—(1) लेकिन उदास है पृथ्वी (1992), (2) नीम रोशनी में (2000), (3) कुरूज (2006)।

अरुण कमल—(1) अपनी केवल धार (1980), (2) सबूत (1989), (3) नये इलाके में (1996), (4) पुतली में संसार (2001)।

ज्ञानेन्द्रपति—(1) आँख हाथ बनते हुए (1970), (2) शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है (1981), (3) गंगा तट (2000), (4) संशयात्मा (2004), (5) भिनसार (2006)।

कुमार अम्बुज—(1) किवाड़ (1992), (2) क्रूरता (1996), (3) अनंतिम (1998), (4) अतिक्रमण (2002), (5) अमीरी रेखा (2011)।

स्वपनिल श्रीवास्तव—(1) ईश्वर एक लाठी है, (2) ताख पर दियासलाई, (3) मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए।

बद्रीनारायण—(1) सच सुने कई दिन हुए, (2) शब्द पदीयम, (3) खुदाई में हिंसा।

निलय उपाध्याय—(1) अकेला घर हुसैन का, (2) कटौती।

एकांत श्रीवास्तव—(1) मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, (2) नागरिक व्यथा, (3) अन्न हैं मेरे शब्द।

बोधिसत्व—(1) सिर्फ कवि नहीं (1991), (2) हम जो नदियों का संगम है (2000), (3) दुःख तन्त्र (2004), (4) खत्म नहीं होती बात (2010)।

उदय प्रकाश—(1) सुनो कारीगर (1980), (2) अबूतर कबूतर (1984), (3) रात में हारमोनियम, (4) 'क' से कबूतर।

प्रयाग शुक्ल—(1) यह लिखता हूँ, (2) बीते कितने बरस, (3) कविता 93

रमेशचन्द्र शाह—(1) कछुए की पीठ पर, (2) हरिश्चन्द्र आओ, (3) नदी भागती आयी, (4) प्यारे मुचकुन्द, (5) देखते हैं शब्द भी अपना समय

बलदेव वंशी—(1) अँधेरे के बावजूद, (2) बच्चे की दुनिया, (3) कोई आवाज नहीं, (4) उपनगर में वापसी, (5) वाक गंगा।

आलोक धन्वा—(1) दुनिया रोज बनती है।

श्रीराम वर्मा—(1) कालपात्र।

प्रमुख समकालीन महिला कवयित्री

कवयित्री	काव्य-संग्रह
कात्यायनी	(1) चेहरों पर आँच, (2) सात भाइयों के बीच चंपा, (3) इस

unacademy

पौरूष पूर्ण समय में, (4) जादू नहीं कविता, (5) राख अँधेरे की बारिश में, (6) फुटपाथ पर कुर्सी।

अनामिका—(1) गलते पत्तों की चिट्ठी, (2) बीजाक्षर, (3) समय के शहर में, (4) अनुष्टुप, (5) कविता में औरत, (6) खुरदरी हथेलियाँ।

नीलेश रघुवंशी—(1) घर निकासी (1997), (2) पानी का स्वाद।

इंदु जैन—(1) आँख से भी छोटी चिड़िया, (2) हमसे पहले भी लोग यहाँ थे, (3) हवा की मोहताज क्यूँ रहूँ?, (4) कौन तेरा कौन-सा, (5) कुछ न कुछ टकराएगा जरूर।

मैत्रेयी पुष्पा—(1) लकीरें।

गगन गिल—(1) एक दिन लौटेगी लड़की, (2) अँधेरे में बुड्ढा, (3) यह आकांक्षा समय नहीं, (4) थपक-थपक दिल थपक-थपक।

अर्चना वर्मा—(1) कुछ दूर तक, (2) लौटा है विजेता।

पद्मा सचदेव—(1) मेरी कविता मेरे गीत।

जया जादवानी—(1) मैं शब्द हूँ, (2) अनन्त सम्भावनाओं के बाद भी।

गीताश्री—(1) कविता जितना हक।

नीरजा माधव—(1) प्रथम छंद से स्वप्न, (2) प्यार लौटाना चाहेगा, (3) प्रस्थानत्रयी।

वर्तिका नंदा—(1) मरजानी।

unacademy

राष्ट्रीय काव्य धारा

प्रमुख कवि एवं पंक्तियाँ

unacademy

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

- माखन लाल चतुर्वेदी- 1889-1968
  - प्रभाव- सय्यद अमीर आली मीर, स्वामी रामतीर्थ, माधव राव सप्रे
  - सम्पादन- प्रभा, प्रताप, कर्मवीर
  - उपनाम- एक भारतीय आत्मा
  - विचारधारा- पहले क्रांति के दर्शन से प्रभावित थे बाद में गांधीवाद पर चले
  - रचनाएँ- हिमकिरीटीनी(1943), हिमतरंगिनी(1949), माता(1951) समर्पण(1956)

unacademy

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

- **सियारामशरण गुप्त-** 1895-1963
  - मैथिली शरण गुप्त के अनुज थे।
  - विचारधारा- गांधीवादी
  - भाषा- सरल, मुक्त छंद
  - रचनाएँ- मौर्य विजय(1914), अनाथ(1917), दुर्वादल(1924), विषाद(1925), आर्द्रा(1927), आत्मोत्सर्ग(1931), पाथेय(1933), मृण्यमयी(1936), बापू(1937), उन्मुक्त(1940), दैनिकी(1942), नकुल(1946)

unacademy

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

- **बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-** 1897-1960
  - विचारधारा- गांधीवादी
  - गांधी के आह्वान 1920 में ये सक्रीय राजनीति में आ गए
  - स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ये पाले राज्यसभा और फिर लोकसभा के सदस्य रहे
  - रचनाएँ- कुमकुम(प्रथम रचना- 1939), उर्मिला, रश्मिरेख, अपलक, क्वासी, हम विषपाई जनम के, विनोबा स्तवन
  - उर्मिला इन्होने 1934 में ही पूरा कर लिया था किन्तु प्रकाशन 1975 मे हुआ।

unacademy

- **सुभद्रा कुमारी चौहान** 1905-1948
  - रचनाएँ- त्रिधारा, मुकुल
  - झाँसी की रानी

unacademy

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के अन्य कवि

- रामनरेश त्रिपाठी-1889-1960- राष्ट्रीयता से प्रभावित तीन खंडकाव्य-
  1. मानसी(1927)
  2. पथिक(1920)
  3. स्वप्न(1929)
- उदयशंकर भट्ट- 1898-1966
  1. तक्षशिला(1929), आख्यान काव्य
- जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद- 1907-1986
  1. जीवन-संगीत
- दिनकर- रेणुका(1935)
- कुछ अन्य- मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'स्वदेश संगीत', त्रिशूल(सनेही) की 'राष्ट्रीय मंत्र',

unacademy

भारतेन्दु-

- हाय वहै भारत भुव भारी सब ही विधि जो रहई दुखारी।
- निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
- कहाँ करुणानिधि केशव सोए
  जागत नाहीं अनेक जतन करी भारतवासी रोए
- जाहीर बातन मे अति तेज, ए सखि साजन नाहीं अंग्रेज़
- रोवहु सब मिली आवहु भारत भाई...

unacademy

प्रेमघन-

- निरधन दिन दिन होत है भारत भुव एसबी भाँति
- अचरज होत तुमहूँ सम गोरे बाजात कारे
- भयो भूमि भारत में महाभयंकर भारत॥
- धन्य भूमि भारत सब रतनन की उपजावानी

unacademy

प्रताप नारायण मिश्र-

- जपो निरंतर एक ज़बान हिन्दी हिन्दू हिंदुस्तान
- तबही लख्यों जंह रह्यो एक दिन कंचन बरसत
तह चौथाई जन सूखी रोटी को तरसत
- पढ़ी कमाए किन्हों कहा, हर्यों न देस कलेस

unacademy

श्रीधर पाठक-

- निज भाषा बोलहू लिखहु पढ़हु गुनहू सब लोग
- वंदनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों॥

- **महावीर प्रसाद द्विवेदी-**
  - तुम्हीं अन्नदाता भारत के सचमुच बैलराज महाराज
  - सारी प्रजा निपढ़ दीन दुखी जहाँ है/ कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है

unacademy

- ***मैथिली शरण गुप्त-***
  - उसका की जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारत वर्ष है।
  - हम कौन थे क्या हो गए क्या होंगे अभी...
- ***नाथूराम-***
  - देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा
- **राम नरेश त्रिपाठी-**
  - पराधीन रह कर अपना सुख शोक न सह सकता है/ यह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है...

unacademy

- ***बाल कृष्ण शर्मा नवीन***
  - ओ भिखमंगे अरे पराजित, अरे मलमूल, अरे चीर द्रोही/ तू अखंड भंडार शक्ति का जाग अरे निद्रा सम्मोहित
  - कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए
- ***माखनलाल चतुर्वेदी-***
  - मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पाठ पर तुम देना फेंक...
- ***पंत-***
  - तेरी आभा को पाकर माँ जग का तिमिर त्रास हर दूँ...